॥ ओ३म्॥

ऋग्वेदभाष्य

श्रीमद्दयानन्दसरस्वती के ऋग्वेदभाष्यम् से
अन्वय के आधार पर किया गया सुबोध अनुवाद

प्रथम मण्डल

(ऋग्वेद १.१ - ०१.४० सूक्त तक)

अनुवादकः
डा० कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री

प्रथम भाग

प्रकाशक :
विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द
4408, नई सड़क, दिल्ली-110006

वर्ष २०२३

नवयुग प्रवर्तक वेदोद्धारक



महर्षि दयानन्द सरस्वती के
200वें जन्म जयन्ती वर्ष के पावन अवसर पर

॥ ओ३म्॥

ऋग्वेदभाष्य

श्रीमद्दयानन्दसरस्वती के ऋग्वेदभाष्यम् से
अन्वय के आधार पर किया गया सुबोध अनुवाद

प्रथमं मण्डलम्

(ऋग्वेद १.१ - ०१.४० सूक्त तक)

अनुवादकः
डा० कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री

प्रथम भाग

प्रकाशक :
विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द
4408, नई सड़क, दिल्ली-110006

वर्ष २०२३

प्रकाशक :

विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द

4408, नई सड़क, दिल्ली-110006

दूरभाष : 23977216, 65360255

e-mail : ajayarya16@gmail.com

Website : www.vedicbooks.com

वैदिक-ज्ञान-प्रकाश का गरिमापूर्ण 98वाँ वर्ष (1925-2023)

महर्षि दयानन्द सरस्वती की 200वीं जन्मजयन्ती वर्ष के अवसर पर प्रकाशित

संस्करण: 2023

प्रकाशकीय

\

महर्षि दयानन्द सरस्वतीकृत ऋग्वेद के संस्कृतभाष्यम् का हिन्दी अनुवाद पं० भीमसेनजी तथा पं० ज्वालादत्तजी प्रभृति विद्वानों ने किया है। वैदिक विद्वान् श्री शिवपूजनसिंह कुशवाहा ने अपने पुस्तक महर्षि दयानन्द कृत वेद भाष्यानुशीलन में कहा है कि संस्कृत भाष्य के प्रकाशन और मुद्रण की देखरेख प्रायः पण्डितों ने की है। अतः ऋषि के भाष्यों में कहीं कोई त्रुटि प्रतीत हो तो आश्चर्य नहीं करना चाहिये? परन्तु अत्यन्त हर्ष के साथ लिखना पड़ता है कि इधर आर्य विद्वानों का ध्यान आकर्षित हुआ है। इस विषय में पण्डित युधिष्ठर मीमांसक की पुस्तक ऋषि दयानन्द सरस्वती के ग्रन्थों का इतिहास के पृष्ठ 155 पर यह अधोलिखित टिप्पणी द्रष्टव्य है-

वेदभाष्य का मूल संस्कृत भाग ही ऋषि दयानन्द विरचित है, भाषानुवाद पण्डितों से कराया हुआ है। इसलिये कई स्थानों में भाषा संस्कृत के अनुकूल नहीं हैं। वेदभाष्य के सम्बन्ध में ऋषि दयानन्द ने अपने पत्रों में इस प्रकार लिखा है-
"जो कहीं पद का छूट जाना है यह भाषा बनाने वाले और शुद्ध लिखने वाले की भूल है।"....
समग्र रूप से भाषानुवाद को देखने पर ज्ञात होता है कि ये अनुवाद महर्षिकृत संस्कृतभाष्य का सही-सही रूप पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने में पूर्णरूप से समर्थ नहीं हैं।"

ऐसे में वैदिक विद्वानों के द्वारा इस विषय पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने के बाद वाँछित शुद्ध भाषानुवाद किये जाने की नितान्त आवश्यकता थी। इस कार्य हेतु स्वाध्यायशील वैदिक विद्वान् डॉ कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री प्रवृत्त हुए हैं। उनके द्वारा महर्षिकृत अन्वय के आधार पर मन्त्रों के अर्थ किये गये हैं और पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या टिप्पणी में दी गई है, जिससे पाठकों को भाष्य को समझने में सुगमता होगी। इस दिशा में कार्य करते हुए ४० सूक्तों का यह प्रथम खण्ड प्रस्तुत है। महर्षि ने ऋग्वेद के सप्तम मण्डल के इकसठवें सूक्त के द्वितीय मन्त्र तक कुल 502 सूक्तों का भाष्य किया है। इनका अनुवाद कार्य दस खण्डों में क्रमानुसार प्रकाशित किया जायेगा। ऋग्वेदभाष्यम् भाषानुवाद सहित और सुबोध भाष्य दो पुस्तकों की अभी कतिपय प्रतियां ही मुद्रित की जा रही हैं और दोनों पुस्तको को प्रकाशन संस्था की वैबसाइट पर भी अपलोड किया जा रहा है। सुधी पाठक वहाँ पर पुस्तक का स्वाध्याय कर सकते हैं। महर्षिकृत् समग्र भाष्य का अनुवाद कार्य पूर्ण होने के बाद समस्त खण्डों का सैट उपलब्ध कराया जायेगा। अनुवादक डॉ कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री को मैं इस अप्रतिम कार्य के लिए साधुवाद देता हूँ। यह भी आशा करता हूँ कि उनकी अनवरत साधना से सम्पूर्ण अनुवाद कार्य का सैट शीघ्र ही पाठकों के हाथों में पहुँच सकेगा।

चैत्र शुक्ल ०१, प्रतिपदा विक्रमी संवत् २०८०

बुधवार, दि० २२.०३.२०२३

अजय आर्य

विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द,

4408, नई सड़क, नई दिल्ली-110006

उपक्रमणिका

क्या महर्षि दयानन्द सरस्वती के ऋग्वेद संस्कृतभाष्य का हिन्दी अनुवाद पुनः किये जाने की आवश्यकता है? प्रकृत विषय पर विचार किये जाने से पहले भाष्य और अनुवाद क्या हैं, यह जान लेना आवश्यक है।

संस्कृत साहित्य की परम्परा में भाष्य की परिभाषा

वामन शिवराम आप्टे के संस्कृत-हिन्दी कोश में भाष्य का अर्थ, व्याख्या, वृत्ति, टीका जैसा कि 'वेदभाष्य' में लिखा गया है। संस्कृत साहित्य की परम्परा में उन ग्रन्थों को भाष्य (शाब्दिक अर्थ व्याख्या के योग्य) कहते हैं, जो दूसरे ग्रन्थों के अर्थ कर बृहद् व्याख्या या टीका प्रस्तुत करते है। मुख्य रूप से सूत्र ग्रन्थों पर भाष्य लिखे गए है। पाणिनि के अष्टायायी पर पतंजलि का व्याकरण महाभाष्य और ब्रह्मसूत्रों पर शांकर भाष्य आदि कुछ प्रसिद्ध भाष्य है।

पराशर पुराण में भाष्यकार के पांच कार्य गिनाये गये है-

पदच्छेद: पदार्थोग्तिर्विग्रहो वाक्ययोजना।

आक्षेपेषु समाधानं व्याख्यानं पंचलक्षणम्॥

अर्थात् मन्त्रों या श्लोकों का पदपाठ और विग्रह आदि करके उनको संस्कृत या अन्य भाषा में वाक्य के रूप में प्रस्तुत करना होता है। उनकी व्याख्या करके विषय को स्पष्ट किया जाता है और यदि कोई शंका हो तो उसका समाधान किया जाना चाहिए। भाष्य के ये पाँच लक्षण बताये गये हैं।

भाष्य कई प्रकार के होते हैं- प्राथमिक, द्वितीयक, तृतीयक। जो भाष्य मूल ग्रन्थों की टीका करते हैं, उन्हें प्राथमिक भाष्य कहते हैं। किसी ग्रन्थ का भाष्य लिखना एक विद्वतापूर्ण कार्य माना जाता है। अपेक्षित छोटी टीकाओं को वाक्य या वृत्ति कहते हैं। जो रचनायें भाष्यों का अर्थ स्पष्ट करने के लिये रची गयीं हों, उन्हें वार्तिक कहते हैं।

भाष्यः- वेदों का सर्वप्रथम भाष्य ब्राह्मण ग्रंथों में मिलता है जिनमें वेद मंत्रों की व्याख्या मूलतः यज्ञ संबंधी विभिन्न विधियों को लक्ष्य में रखकर की गई है। इनके साथ-साथ, यास्क के कथनानुसार वेद मंत्रों की व्याख्या निम्नोक्त नौ पद्धतियों से होती रही है: (1) नैरक्त, (2) वैयाकरण, (3) ऐतिहासिक, (4) परिव्राजक, (5) नैदान, (6) पूर्वयाजिक, (7) याज्ञिक, (8) आत्मप्रवाद (अधिदैवत पद्धति) तथा (9) अध्यात्म-पद्धति।

यास्क के पश्चात् सातवीं शती तक न जाने कितने भाष्यकारों ने वेदों का भाष्य किया होगा, किंतु ये भाष्य आज उपलब्ध नहीं हैं। सातवीं शती में स्कन्दस्वामी, नारायण और उद्गीथ ने, इनके बाद माधव भट्ट, वेंकटमाधव, धानुष्कयज्वा, आन्दतीर्थ, आत्मानन्द आदि ने ऋग्वेद का संपूर्णतः अथवा अंशतः भाष्य किया। इन सबके पश्चात ऋग्वेद के प्रसिद्ध

व्याख्याता सायणाचार्य का नाम उल्लेख्य है, जो कि चौदहवीं शती में विद्यमान थे। मुद्गल ने सायणाचार्य के वेदभाष्य पर वृत्ति प्रस्तुत की है। आधुनिक युग में वेद के व्याख्याकारों में श्रीमद्दयानंद सरस्वती (19वीं शती) का नाम विशेषतः उल्लेख्य है, जिन्होंने वेद मंत्रों की अपनी व्याख्या में पदों का अर्थ प्राचीन पद्धति के अनुसार निरुक्तियों के माध्यम से किया। श्री अरविन्द, पण्डित जयदेव शर्मा, पण्डित हरिशरण सिद्धान्तालंकार, श्रीपाद दामोदर सातवलेकर और आचार्य श्रीराम शर्मा आदि वेद के अन्य भाष्यकार हैं।

वेद का अर्थ समझने के लिये वैदिक वाङ्मय में अर्थबोध की पद्धतियों पर विचार करना आवश्यक है।

वेदों में भाषा-चिन्तन के साथ अर्थ के सम्बन्ध में भी विविध रूप में पर्याप्त चिन्तन हुआ है, जिस प्रकार समस्त भाषा चिन्तन का मूल आधार तत्त्व वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है उसी प्रकार अर्थ चिन्तन के भी मूलसिद्धान्त वैदिक साहित्य में प्राप्त होते हैं। वास्तव में अर्थविचार की विशाल परम्परा ऋग्वेद काल से ही प्रारम्भ होकर अन्य संहिताओं ब्राह्मण, ग्रन्थों, आरण्यकों, उपनिषदों और वेदांगों से अत्यन्त विकसित हुई है, इन ग्रन्थों में अर्थपरक कई विषयों पर यत्र-तत्र संकेतों के रूप में अथवा स्पष्ट रूप में प्रकाश डाला गया है। इससे वैदिक अर्थचिन्तन का स्वरूप भी स्पष्ट होता है। अर्थबोध की कई पद्धतियों का निर्देश वैदिक वाङ्मय में संकेतत: अथवा स्पष्ट प्राप्त होता है। बाद में वे ही पद्धतियाँ भारतीय अर्थविज्ञान के अन्तर्गत अर्थबोध की विविध विधियों के रूप में क्रमबद्ध और अधिक वैज्ञानिक रूप में विकसित हुई है।

भाषा की आत्मा अर्थ है। शब्द का प्रयोग अर्थ के लिए ही किया जाता है। अर्थात् अर्थ के अभाव में भाषा का कोई महत्त्व नहीं है। शब्द तो अर्थ की अभिव्यक्ति का ही माध्यम है। अर्थ की प्रतीति कराने के लिए ही व्यवहार में शब्द का प्रयोग किया जाता है।' अथवा यह कह सकते हैं कि भाषा का शब्द शरीर है तो अर्थ उसकी आत्मा। जिस प्रकार शरीर की सहायता से ही आत्मा का प्रत्यक्षीकरण होता है, उसी प्रकार शब्द की सहायता से अर्थ का बोध होता है। भाषा के द्वारा प्रकाशित अर्थ के महत्त्व के विषय में मानव प्राचीन काल से ही विचार करता चला आ रहा है। वेदों में भाषा-चिन्तन के साथ अर्थ के सम्बन्ध में भी विविध रूप में पर्याप्त चिन्तन हुआ है, जिस प्रकार समस्त भाषा चिन्तन का मूल आधार तत्त्व वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है उसी प्रकार अर्थ चिन्तन के भी मूलसिद्धान्त वैदिक साहित्य में प्राप्त होते हैं। वास्तव में अर्थविचार की विशाल परम्परा ऋग्वेद काल से ही प्रारम्भ होकर अन्य संहिताओं, ब्राह्मण ग्रन्थों, आरण्यकों, उपनिषदों और वेदांगों से होकर अत्यन्त विकसित हुई है, इन ग्रन्थों में अर्थपरक कई विषयों पर यत्र-तत्र संकेतों के रूप में अथवा स्पष्ट रूप में प्रकाश डाला गया है। अर्थ सम्बन्धी इन विचारों के आलोचनात्मक विवेचन द्वारा एक ओर भारतीय अर्थ चिन्तन का प्रारम्भिक और मूल रूप प्रकाश में आता है तो दूसरी ओर इससे वैदिक अर्थचिन्तन का स्वरूप भी स्पष्ट होता है। इस सन्दर्भ में यास्क रचित निरुक्त अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यास्क ने शब्दार्थ के क्रमबद्ध चिन्तन की प्राचीन परम्परा को प्रस्तुत किया है। निरुक्त में अर्थातिशय, अर्थविकास, अर्थभेद, पदार्थ, वाक्यार्थ, नामार्थ, आख्यातार्थ, अर्थबोध आदि विषयों पर विस्तृत विचार किया गया है। अर्थ एक गम्भीर तत्त्व है क्योंकि इसका सम्बन्ध मनुष्य के मस्तिष्क से है क्योंकि अर्थतत्त्व का अभिप्राय

भाषा के उन अंशों से है जो अर्थ अथवा विचार का बोध कराते हैं। शब्द का प्रतीकात्मक मूल्य अर्थ है जो सर्वध मानसिक बिम्ब के रूप में ही होता है। कोई भी शब्द जिस बोध के प्रयोजन से उच्चारित किया जाता है वही उसक अर्थ होता है। वैदिक वाङ्मय में शब्द की अपेक्षा अर्थ को अधिक महत्त्व दिया गया है।

ऋग्वेद के दशम मण्डल के 71वें सूक्त में भाषा-तत्त्व और अर्थ-तत्त्व का महत्त्वपूर्ण विवेचन प्राप्त होता है। इस सूक्त में शब्द के अन्तर्निहित तत्त्व अर्थ, उनके जानने वालों की प्रशंसा तथा न जानने वालों की हीनता प्रतिपादित है। इसके दो मन्त्रों को महर्षि पतंजलि ने भी अपने महाभाष्य में उद्धृत किया है। ऋग्वेद के ही प्रथम मण्डल में यह मन्त्र वाणी के सम्बन्ध में कहा गया है-

चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः।

गुहा त्रीणि निहिता नेंगयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥'

उपर्युक्त श्लोक को पतंजलि ने वाक्तत्त्व के विषय में महाभाष्य में उद्धृत किया है तथा नागेशभट्ट जैसे वैयाकरणों ने उसको व्याख्या करते हुए वाणी की चार अवस्थाओं परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी पर प्रकाश डाला है। अर्थ तत्त्व का जैसा सूक्ष्म विवेचन इन मन्त्रों में प्राप्त होता है, उससे यह तथ्य प्रकट होता है कि ऋग्वैदिक काल में भी भारतीय अर्थचिन्तन कितना विकसित था।

शब्दों के अनेकार्थक होने से वेद का अर्थबोध हमेशा ही कठिन रहा है। वेद के किस मन्त्र या किस शब्द से क्या अर्थ मूलतः अभिप्रेत रहा है, यह कहना आज भी सरल नहीं है। जब हम वेदों में प्राप्त अर्थविषयक चिन्तन की समीक्षा करते हैं तो हम देखते हैं कि वेद में अपने अर्थ के स्पष्टीकरण के लिए कुछ विधियों का यथास्थान ग्रहण किया गया है। अर्थबोध की कई पद्धतियों का निर्देश वैदिक वाङ्मय में संकेत रूप में अथवा स्पष्ट प्राप्त होता है। यही तो वेद की विशेषता है कि वह केवल अर्थज्ञान की उपयोगिता का ही विचार नहीं करता अपितु वेदार्थ के स्पष्टीकरण में भी योगदान देता है बाद में वे ही पद्धतियाँ भारतीय अर्थविज्ञान के अन्तर्गत अर्थबोध की विविध विधियों के रूप में क्रमबद्ध और अपेक्षाकृत अधिक वैज्ञानिक रूप में विकसित हुई है।

वैदिक संहिताओं में अधिकतर अर्थ-चिन्तन तीन प्रकार के मिलते हैं- 1. व्याकृति, अर्थात् निरुक्ति द्वारा शब्दों के धातुगत अर्थ का सहज संकेत। 2. कोश 3. पर्याय योजना अर्थात् एक ही अर्थ के लिए अनेक पर्यायों का प्रयोग। ब्राह्मण ग्रन्थों में इसके अतिरिक्त गुण कथन और उपमा को भी अर्थबोध के लिए अपनाया गया है, उपनिषदों में विशेषरूप से अर्थचिन्तनार्थक उपमा, निषेध और प्रतीकों का प्रयोग किया गया है, वेदांग ग्रन्थों में अर्थबोध के आधार के रूप में कोश और व्युत्पत्ति का प्रधानतया निर्देश है, इनमें से कोष का संकेत ब्राह्मणों में ही दिखाई दे जाता है। व्युत्पत्ति का सूत्रपात संहिताओं में सर्वप्रथम दिखाई देता है तथा बाद में विस्तार के साथ अन्य वैदिक ग्रन्थ तथा वेदांगों में दिखाई देता है।

व्युत्पत्ति-अर्थ-निर्देश का प्रारम्भ प्राचीनतम ग्रंथ' ऋग्वेद' से ही दिखाई देता है। यह सत्य है कि वैदिक मंत्रों का मूल उद्देश्य

व्युत्पत्ति देना नहीं है, तथापि प्रकारान्तर से जो भी व्युत्पत्तियाँ आ गयी हैं, वे व्याकरण का मूल रूप वेदों में है सिद्ध कर देती है। युधिष्ठिर मीमांसक ने इस विषय में चिंतन करते हुए कतिपय ऐसे मंत्रों को उद्धृत किया हैं, जिनमें व्युत्पत्ति या निरुक्ति का ही निर्देश ध्वनित होता है-

1. **यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः।"** ('यज्ञ' की निरुक्ति यज् धातु से है)

2. **ये सहांसि सहसा सहन्ते।"** ('सहस्' की निरुक्ति सह धातु से है)

इस प्रकार सभी संहिताओं के पदों की व्युत्पत्ति की जा सकती है।

महर्षि दयानन्द सरस्वतीकृत वेद भाष्य की विशेषताएँ- महर्षि द्वारा सम्पूर्ण यजुर्वेद, ऋग्वेद के 7 वें मणडल के 62 वें सूक्त के द्वितीय मन्त्र तक और अपने अन्य ग्रन्थों, जैसे ऋग्वेदादिभाष्भूमिका, संस्कारविधि, पञ्चमहायज्ञविधि, आर्य्याभिविनय आदि में वेद के विभिन्न मन्त्रों का भाष्य किया गया है। आर्यजगत् के प्रसिद्ध वेदविद्वान् स्मृतिशेष पं० रामनाथ वेदालङ्कार द्वारा अपने पुस्तक आर्ष-ज्योति के वेद-व्याख्या के प्रयास (पृष्ठ 33 से 39) शीर्षक लेख के अनुसार महर्षि दयानन्द सरस्वतीकृत वेद भाष्य की विशेषताएँ संक्षिप्त रूप से इस प्रकार हैं-

स्वामी दयानन्द के वेदभाष्य की विशेषताएँ-

महर्षि दयानन्द सरस्वती का वेदभाष्य पूर्ववर्ती भाष्यों की अपेक्षा अनेक नवीन विशेषताएं रखता है, जिनमें से कुछ का यहां दिग्दर्शन यहाँ किया जा रहा है।

१. वैदिक देवों का अर्थानुसन्धान-

वेदों में अग्नि, वायु, इन्द्र, अश्विनौ, मित्र, वरुण, अर्यमा, रुद्र, सविता आदि पुंलिंगी का तथा अदिति, उषस्, सरस्वती, पृथिवी आदि स्त्रीलिंगी देवताओं का पुनः-पुनः वर्णन आता है। उवट, सायण, महीधर आदि पूर्ववर्ती भाष्यकारों ने इन्हें पृथक् स्वतन्त्र देव-देवियां स्वीकार किया था तथा यह माना था कि वेदवर्णित प्रत्येक प्राकृतिक देवता उषा, सूर्य, पृथिवी, आपः, नदी, ओषधि आदि का एक-एक स्वतन्त्र चेतन अभिमानी-देवता है, उसी चेतन देवता की इन नामों से वेद में स्तुति की गयी है। जिन देवताओं का प्राकृतिक स्वरूप निश्चित नहीं है, वे भी स्वतन्त्र देवता हैं। यज्ञों में आवाहन करने पर ये देवता हवि से प्रसन्न होकर यजमान को पुत्र, पौत्र, पशु, धन आदि प्रदान करते हैं। परन्तु स्वामी दयानन्द ने प्रमाणपुरस्सर यह घोषणा की कि वेद अनेकेश्वरवादी नहीं है, अपितु वेदों के विभिन्न पुंलिंगी और स्त्रीलिंगी देवता पिता और माता के रूप में एक परमेश्वर के ही गुणकर्म-बोधक विभिन्न नाम हैं। वेद की वर्णन-शैली की यह अद्भुतता है कि साथ ही वे देवता शरीर में आत्मा, मन, बुद्धि, प्राण, अपान, उदान, चक्षु, श्रोत्र आदि के; राष्ट्र में राजा, सेनापति, न्यायाधीश, गृहपति, आचार्य आदि के; और भौतिक जगत् में प्रकृति, सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, जल आदि के भी वाचक होते हैं। जहां जैसा प्रकरण हो वहां वैसे अर्थ करने चाहिएं। इसी दृष्टि को ध्यान में रखकर दयानन्दभाष्य में प्रसंग या औचित्य के अनुसार 'अग्नि' के अग्रणी, विज्ञानस्वरूप, सर्वविद्योपदेष्टा, स्वयं प्रकाशमान, प्रकाशक परमेश्वर, विद्वान् अध्यापक, उपदेशक, नायक राजा, वीर

सेनापति, यज्ञाग्नि, शिल्प में प्रयोक्तव्य भौतिक अग्नि आदि अर्थ किये गये हैं। 'इन्द्र' को ऐश्वर्यशाली परमेश्वर, शत्रुविदारक राजा, सभाशालासेनान्यायाधीश, विद्यार्थियों की जड़ता का विच्छेदक गुरु, वायु, विद्युत्, सूर्य आदि अर्थों में ग्रहण किया गया है। 'रुद्र' को दुष्टरोदक परमात्मा, जीवात्मा, वैद्य, वायु, प्राण, शत्रुसंहारक सेनापति, ब्रह्मचारी आदि अर्थों में व्याख्यात किया गया है। 'अश्विनी' के राजा अमात्य, प्राण-अपान, जल-अग्नि, वायु-विद्युत्, सूर्य-चन्द्र, अध्यापक उपदेशक, सभेश-सेनेश आदि अर्थ किये गये हैं।

वैदिक देवियों को भी स्वामी दयानन्द ने भौतिक जगत् एवं शरीर में घटाने के साथ-साथ समाज में भी घटाया है। तदनुसार उनके भाष्य में 'उषा' का अर्थ प्रभातवेला या सन्ध्या के अतिरिक्त उषा के समान ज्ञान से समस्त रूपों की प्रकाशिका विदुषी स्त्री भी किया गया है। इसी प्रकार 'सरस्वती' का अर्थ वाणी एवं वेगवती नदी के अतिरिक्त विदुषी कन्या, प्रशस्त ज्ञानवती विदुषी स्त्री, प्रशस्तविज्ञानयुक्ता पत्नी, शिक्षिता माता एवं वेदादिशास्त्रविज्ञानयुक्ता अध्यापिका भी किया है।" प्रचुरता के साथ वैदिक देवताओं को सामाजिक या राष्ट्रिय अर्थों में लेकर सम्पूर्ण मन्त्र को सामाजिक या राष्ट्रपरक अर्थ की रंगत देना स्वामी दयानन्द की ही महत्त्वपूर्ण देन है। इससे पूर्व ब्राह्मणग्रन्थों में ऐसे अर्थों के क्वचित् संकेतमात्र दिये गये थे। स्वामी दयानन्द के द्वारा किये गये अर्थ वेदों ब्राह्मणग्रन्थों, आरण्यक आदि साहित्य से समर्थित हैं।

2-वेदमन्त्रों की अनेकार्थता-

मन्त्रों के अध्यात्म, अधिदैवत, अधियज्ञ आदि अर्थ करने की पहले से ही प्रवृत्ति थी। यास्क ने अपने निरक्त में कई स्थलों पर इस प्रकार की मंत्र व्याख्याएं प्रस्तुत की हैं। स्वामी दयानन्द ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया। उन्होंने मन्त्रार्थों को दो भागों में विभक्त किया है पारमार्थिक अर्थ और व्यावहारिक अर्थ।" इन्हीं दो में पूर्व आचार्यों से निर्धारित अध्यात्म, अधिदैवत, अधियज्ञ, अधिभूत आदि सकल अर्थ प्रक्रियाएं समाविष्ट हो जाती हैं। परमेश्वर तथा परमेश्वर-प्राप्ति सम्बन्धी अर्थ पारमार्थिक प्रक्रिया में और शेष सब अर्थ व्यावहारिक प्रक्रिया के अन्तर्गत होते हैं। स्वामी दयानन्द ने अपने वेदभाष्य में वेदमन्त्रों की अनेकार्थक योजना अनेक स्थलों पर की है। ऋग्वेद के प्रथम पांच अग्निदेवताक मन्त्रों की व्याख्या उन्होंने परमेश्वरपरक तथा शिल्पाग्निपरक की है। 'धूरसि धूर्व धूर्वन्तम्' यद० १.८ में भी अग्नि के अर्थ परमेश्वर तथा शिल्पसाधक अग्नि दोनो लिये हैं। वायुदेवताक ऋ० १.२.१ ३ इन तीनों मन्त्रों की व्याख्या परमेश्वर तथा भौतिक वायु दोनो पक्षों में की है। इसी प्रकार इन्द्र देवता, सूर्य देवता और सोमासि सत्पति ऋ० १.९१.५ आदि मन्त्र श्लेष से परमेश्वर, शालाध्यक्ष तथा सोम ओषधी तीन पक्षों में व्याख्यात किया गया है।

३. ऐतिहासिक अर्थों की उपेक्षा-

वेदमन्त्रों में प्रयुक्त नामों को किन्हीं ऐतिहासिक ऋषियों, ऋषिकाओं, राजाओं, रानियों, नदियों, नगरों आदि के नाम मान लेने की प्रवृत्ति वेदभाष्यकारों में पायी जाती है। वेदार्थ का ऐतिहासिक सम्प्रदाय यास्काचार्य (७०० ई० पू०) से भी पहले विद्यमान था, क्योंकि उन्होंने अपने निरुक्त ग्रन्थ में कई प्रसंगों में इस सम्प्रदाय का उल्लेख किया है। पर अपनी

सम्मति उन्होंने इसके विरोध में ही दी है।" विदेशों के विद्वान् वेदों में लौकिक इतिहास भले ही मानें, पर आश्चर्य तो तब होता है जब वेदों को सृष्टि के आदि में प्रकट हुआ ईश्वरीय ज्ञान मानने वाले स्कन्दस्वामी, उवट, सायण, महीधर आदि भारतीय भाष्यकार भी अनेके स्थलों पर वेदमन्त्रों की इतिहासपरक व्याख्याएं करते हैं। स्वामी दयानन्द ने अपने सुदीर्घ वेदभाष्य में एक स्थल पर भी इतिहास नहीं माना है। ऋ० भा०भू० में वे स्पष्ट घोषणा करते हैं कि वेदमन्त्रों में इतिहास का लेश भी नहीं है, अतः सायणाचार्य आदि ने जहां-कहीं इतिहास का वर्णन किया है वह भ्रममूलक ही है।"

वेदों में लौकिक इतिहास न होने की स्थापना तो अपने ऋग्वेदभाष्य के उपोद्धात में सायण ने भी की थी," पर वेदभाष्य में वे उसका निर्वाह नहीं कर पाये। किन्तु महर्षि दयानन्द ने अपनी प्रतिज्ञा का अपने वेदभाष्य में सर्वत्र निर्वाह किया है। वे अगस्त्य, अत्रि, अम्बरीष, कुत्स, कुशिक, त्रसदस्यु, दिवोदास, वसिष्ठ, वामदेव, विश्वामित्र, शुनःशेप प्रभृति समस्त ऐतिहासिक प्रतीत होने वाले नामों की नैरुक्त पद्धति से व्याख्या करते हैं। सचमुच वेद में लौकिक इतिहास की कल्पना वेद को जर्जर कर देने वाली है। वेदों में इतिहास न मान कर योगार्थ के बल से जो अर्थ करने की पद्धति है उसी से वेद का रहस्यार्थ हृदयंगम किया जा सकता है।

४. पूर्व विनियोगों से स्वतन्त्र वेदार्थ-

पूर्वकाल में दर्श, पौर्णमास, वाजपेय, राजसूय, अश्वमेघ, पुरुषमेघ, सोमयाग आदि विविध श्रौत यागों में ब्रह्मयज्ञादि पञ्च यज्ञों में, जातकर्मादि विभिन्न संस्कारों में तथा अन्य अनेक विधि-विधानों में वेदमन्त्रों का विनियोग किया गया था। उन विनियोगों की परीक्षा करने से ज्ञात होता है कि उनमें कुछ विनियोग रूपसमृद्ध अर्थात् मन्त्रार्थ से अनुमोदित हैं और कुछ अरूपसमृद्ध हैं अर्थात् या तो मन्त्रार्थ से विरुद्ध हैं या मन्त्रार्थ से असम्बद्ध हैं। ब्राह्मणग्रन्थकारों ने रूपसमृद्ध विनियोगों से ही यज्ञ की परिपूर्णता मानी थी। " तथापि अरूपसमृद्ध विनियोग भी चलते रहे और उन्हें प्रामाणिक भी माना जाता रहा। स्वामी दयानन्द ने यह स्पष्ट घोषणा की कि पूर्वकृत विनियोगों में जो युक्तिसिद्ध, वेदादि प्रमाणों के अनुकूल और मन्त्रार्थ का अनुसरण करने वाले विनियोग हैं, वे ही ग्राह्य हो सकते हैं।" साथ ही यह भी माना कि वेदव्याख्या के लिए रूपसमृद्ध विनियोगों का भी अनुसरण करना अनिवार्य नहीं है, उन विनियोगों से स्वतन्त्र होकर भी वेद के व्याख्यान किये जा सकते हैं। अतएव उन्होंने ऋग्वेद एवं यजुर्वेद का अपना भाष्य पूर्व विनियोगों का अनुसरण किये बिना ही लिखा है और भूमिका में यह निर्देश कर दिया है कि मैं तो शब्दार्थतः ही मन्त्रों की व्याख्या करूंगा, जिन्हें अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेघपर्यन्त कर्मकाण्ड का परिचय पाना हो वे ऐतरेय, शतपथ, पूर्वमीमांसा, श्रौतसूत्रादि को देख सकते हैं, किन्तु उनमें जो वेदविरुद्ध विनियोग हैं उन्हें न मानें।

५. वेदों में विविध विद्याओं का आविष्कार-

महर्षि से पूर्व के भाष्यकारों में से अधिकांश ने वेदों में कर्मकाण्ड के अतिरिक्त अन्य किसी विद्या का आविष्कार नहीं किया था। परन्तु स्वामी दयानन्द 'वेदों में सब विद्याएं हैं' यह घोषणा करते हैं।" उन्होंने अपने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका

ग्रन्थ में ब्रह्मविद्या, सृष्टिविद्या, पृथिव्यादिलोकभ्रमणविद्या, आकर्षणानुकर्षणविद्या, प्रकाश्यप्रकाशकविद्या, गणितविद्या, उपासनाविद्या, मुक्तिविद्या, नौविमानादि निर्माणचालनविद्या, तारयन्त्रविद्या, वैद्यकविद्या, राजविद्या, यज्ञविद्या, कृषि बिद्या, शिल्पविद्या, वर्णाश्रमविद्या आदि विविध विद्याओं का वैदिक प्रमाणों सहित प्रतिपादन किया है तथा स्वकीय वेदभाष्य में भी इनका प्रकाश किया है।

६. कतिपय अन्य विशेषताएं-

स्वामी दयानन्द के वेदभाष्य में कुछ अन्य विशेषताएं भी पायी जाती हैं, जो अन्य वेदभाष्यकारों के भाष्यों में उपलब्ध नहीं होतीं। उदाहरणार्थ, कतिपय विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

(1) दयानन्द सरस्वती वेदमन्त्रों के अश्लील, परमात्मा के स्वभाव एवं सृष्टिनियम के विरुद्ध और लोकविद्वेषकारी अर्थ कहीं नहीं करते।

(2) वे वेदों में मांसभक्षण, पशुबलि, जड़पूजा, मृतकश्राद्ध, जादू टोना, असंभव चमत्कार आदि नहीं मानते। जिन भाष्यकारों ने इस पक्ष के अर्थ अपने वेदभाष्यों में किये है उन्हें वे भ्रान्त ठहराते हैं।

(3) निर्वचनशास्त्र को भी उनका विशेष योगदान है, यतः अपने वेदभाष्य में तथा उणादिकोष की व्याख्या में उन्होंने अनेक नवीन निर्वाचन प्रस्तुत किये हैं।

(4) वे वैदिक शब्दों को व्यापक अर्थों में लेते हैं। यथा देव शब्द से परमेश्वर, विद्वान्, माता, पिता, आचार्य, अतिथि, ज्ञानेन्द्रिय आदि का ग्रहण करते है। " यज्ञ में केवल अग्निहोत्र को ही नहीं, प्रत्युत देवपूजा, संगतिकरण, शिल्प, दान आदि को भी संमिलित करते हैं। इसी प्रकार विभिन्न वैदिक शब्दों की व्याख्या की गई है।

(5) उनका वेदभाष्य मानव को अभ्युदय तथा निःश्रेयस दोनों की प्राप्ति के लिये उद्बोधन देता है। लौकिक उत्कर्ष में वे समग्र भूमण्डल के धर्मपूर्ण चक्रवर्ती राज्य तक पहुंचाते हैं, तो दिव्य उत्कर्ष में मोक्ष के परमानन्द तक ले जाते हैं।

वस्तुतः वेद 'विश्ववारा प्रथमा संस्कृति एवं भारतीय विचारधारा के आधारभूत स्तम्भ हैं। वेदों की रचना-शैली बड़ी अद्भुत है। एक-एक ऋचा अनेक अर्थों का प्रतिपादन करती है। जिस प्रकार उससे आध्यात्मिक रहस्यों का ज्ञान प्राप्त होता है, उसी प्रकार उससे आधिभौतिक तथा आधिदैविक सत्य भी प्राप्त होता है। ऋषि दयानन्द ने वेदों की इस अद्भुत और अनन्त रत्नगर्भा निधि को उसपर पड़ी हुई धूलि और गर्द-गुबार को झाड़-पोंछकर विशुद्ध रूप में हमारे सामने प्रस्तुत किया। वर्त्तमान काल के सुप्रसिद्ध दाक्षिणात्य विद्वान् और योगी श्री माधव पुण्डलीक पण्डित ने 'Mystic Approach to the Veda and Upanishad' में वेदों के सम्बन्ध में ऋषि दयानन्द के दृष्टिकोण तथा उनके वेदभाष्य के महत्त्व की चर्चा करते हुए लिखा है- 'गत शताब्दी के मध्य में वेदों को पुनः भारत के राष्ट्रिय जीवन में सर्वोत्कृष्ट रूप से प्रतिष्ठापित करने के लिए भारतीय संस्कृति के प्रवल पोषक स्वामी दयानन्द सरस्वती के रूप में प्राप्त हुए। उन्होंने ज्योतिर्मय वेदों के सम्बन्ध में प्रान्तियों और पक्षपातपूर्ण पाश्चात्य विचारधारा का प्रत्यायन करके प्रत्येक भारतीय को प्रेरणा की कि वह सत्य को सीधा

देखने का प्रयत्न करे और इस बात को पहचाने कि वेद वस्तुतः ईश्वरीय ज्ञान है। उसने अकाटप प्रमाणों से इस बात को सिद्ध किया कि वेदों में एक ईश्वर का विचार अत्यन्त स्पष्ट रूप में प्रतिपादित किया गया है। अन्य देव तो उसके गुणों तथा शक्ति के सूचक नाममात्र है।'

स्वामी दयानन्द के वेदों में विज्ञानविषयक मन्तव्य का विवेचन करते हुए श्री अरविन्द ने अपने निबन्ध 'Dayanand and the Veda' में लिखा है-

‘'दयानन्द की इस धारणा में कि वेद में धर्म और विज्ञान दोनों की सचाइयां पाई जाती हैं, कोई उपहासास्पद या कल्पनामूलक बात नहीं है। मैं इसके साथ अपनी भी धारणा जोड़ देना चाहता हूँ कि वेदों में विज्ञान की वे सचाइयाँ भी हैं जिन्हें आधुनिक विज्ञान अभी तक नहीं जान पाया है। ऐसी अवस्था में स्वामी दयानन्द ने वैदिक ज्ञान की गहराई के सम्बन्ध में अतिशयोक्ति से नहीं, अपितु न्यूनोक्ति से ही काम लिया है। श्री अरविन्द का यह भी कहना है- कि 'वेदों का अन्तिम तथा सम्पूर्ण भाष्य चाहे कुछ भी हो, ऋषि दयानन्द वेदों के यथार्थस्वरूप के प्रथम अन्वेषक के रूप में सदा प्रतिष्ठित रहेंगे। समय ने जिनको बन्द कर रक्खा था, ऐसे द्वारों की चाबी को उन्होंने पा लिया और उनमें बन्द स्रोत की सील (मुहर) को तोड़कर फेंक दिया।“

इस प्रकार अनेक नवीनताओं एवं विशेषताओं के कारण स्वामी दयानन्द का वेदभाष्य अत्यन्त उपादेय है।

अब हम अनुवाद शब्द पर विचार करते हैं। डा० नगेन्द्र के अनुसार 'अनुवाद' शब्द से आज अभिप्रेत है- किसी एक भाषा में प्रस्तुत अर्थ को अन्य भाषा में प्रस्तुत करना। यह शब्द अंग्रेजी शब्द 'ट्रान्सलेशन' के लिए रूढ़ हो गया है। 'ट्रान्सलेशन' शब्द एक अन्य अर्थ में भी प्रयुक्त होता है, जैसे किसी के व्यवहार आदि को समझना। आपने अनुवाद का वास्तविक अर्थ कहा है- किसी भाषा के प्रत्येक वाक्य को प्रायः सभी पदों का अर्थ देते हुए अन्य भाषा में प्रस्तुत करना 'अनुवाद' है।

शब्दकल्पद्रुम कोश में अनुवाद शब्द का एक अर्थ है अवधारित (किसी निश्चित अर्थ) को फिर कहना–चाहे वह उसी भाषा में ही क्यों न हो जिसमें मूल पाठ है। इस दृष्टि से भाष्य तथा टीका को भी 'अनुवाद' कहा जा सकता है। इन दोनों का रूप समान होता है, पर आर्ष ग्रंथों की व्याख्या को 'भाष्य' कहते हैं, और क्लासिकल संस्कृत के ग्रंथों की व्याख्या को टीका। इन दोनों का मूल स्रोत हम पद-पाठ और निरुक्ति-पद्धति को मान सकते हैं। पद-पाठ से तात्पर्य है संहिताबद्ध वेद मंत्रों के पदों को पृथक्-पृथक् करना, जिसके अंतर्गत संधिविच्छेद, उपसर्ग तथा उदात्तादि स्वरों पर भी प्रकाश डाला जाता है। इन पद पाठों का सुपरिणाम यह हुआ कि ब्राह्मण ग्रंथों में और आगे चलकर निरुक्त-ग्रंथों में शब्दों की निरुक्तियों का एक आधार पद-पाठ भी रहा । उदाहरणार्थ, यास्क के अनुसार 'मित्रः' की यास्क प्रस्तुत निरुक्ति है – मित्रः प्रमीतेस्त्रायते (निरुक्त 10.21.2), (जो मरण से त्राण करता है, अर्थात् सूर्य और इस निरुक्ति का आधार है 'मित्रम्' पद का गार्ग्य प्रस्तुत 'मित्र' पदपाठ।

निर्वचन अथवा निरुक्ति से तात्पर्य है किसी शब्द का एक धातु अथवा अनेक धातुओं के साथ संबंध स्थापित करके उसका अर्थ निर्धारित करना। वेदों के मंत्रों का अर्थ स्पष्ट करने के लिए ब्राह्मण ग्रंथों तथा आरण्यकों में कई स्थलों पर इस प्रक्रिया का आधार ग्रहण किया गया है। निरुक्त ग्रंथों में उपलब्ध और प्रख्यात यास्क प्रणीत निरुक्त में तो इसी प्रक्रिया का सांगोपांग विवेचन करते हुए वेदों के मंत्रों की व्याख्या की गई है, तथा आगे चलकर वेदों के प्रख्यात भाष्यकर्ता स्कन्द, सायण आदि ने भी इसी पद्धति को अपनाया है। इतना ही नहीं, स्वयं ऋग्वेद में निर्वचन पद्धति के संकेत अनेक स्थलों पर मिल जाते हैं। जैसे कि (1) गायन्ति त्वा गायत्रिणो....। (ऋ० 1. 10. 1) (2) अर्चन्तोऽर्क मदिरस्य पीतये। (ऋ० 1. 116. 7)। उक्त दोनों स्थलों में व्युत्पत्तिपरक संकेत स्पष्टतः उपलब्ध होते हैं कि 'गायत्रिन्' शब्द गै (गाना, स्तुति करना) से निष्पन्न होता है, और अर्क शब्द अर्च् (पूजा करना) से। इसी प्रकार से अन्य तीनों वेदों के अतिरिक्त ब्राह्मण ग्रंथों में भी निरुक्तियों के स्पष्ट उल्लेख मिलते हैं। इसके बाद मास्क का प्रख्यात ग्रंथ निरुक्त (निर्वाचन शास्त्र अथवा व्युत्पत्तिशास्त्र) का उल्लेख है। परवर्ती और टीकाकारों ने अनेकानेक स्थलों पर निरुक्ति का आधार करते हुए अर्थ-निर्धारण किया है।

जैसाकि उपरोक्त रूप से वर्णित किया गया है कि अनुवाद का वास्तविक अर्थ कहा है- किसी भाषा के प्रत्येक वाक्य को प्रायः सभी पदों का अर्थ देते हुए अन्य भाषा में प्रस्तुत करना 'अनुवाद' है।

जब हम इस मापदण्ड के आधार पर महर्षिकृत ऋग्वेद के संस्कृतभाष्य के हिन्दी भाषा में किये गये अनुवाद पर विचार करते हैं तो हमें ज्ञात होता है-

(1) हिन्दी भाष्य में कोई पद-पाठ नहीं दिया गया है।

(2) महर्षि ने अपने संस्कृतभाष्य में प्रत्येक मन्त्र का अन्वय लिखा है परन्तु अन्वय के आधार पर अनुवाद नहीं किया गया है, अपितु अनेक पदों का सम्मिलित रूप से सार रूप में अर्थ कर दिया गया है।

(3) यदि कोई पाठक इस भाषानुवाद के आधार पर मन्त्र में लिखे गये पदों का अर्थ जानना चाहता है तो यह उसके लिये सम्भव प्रतीत नहीं होता है।

(4) अनेक मन्त्रों के महर्षिकृत संस्कृतभाष्य और उसके हिन्दी में किये गये अनुवाद में भिन्नता पायी जाती है।

(5) महर्षि ने कुछ मन्त्रों के ही संस्कृत भावार्थ का हिन्दी में अर्थ किया था। अन्य विद्वानों द्वारा किये गये गये अनुवाद में भिन्नता पायी जाती है। अनेक विद्वानों के मत इस विषय पर भिन्न हैं।

महर्षिकृत संस्कृतभाष्य और उसके हिन्दी में किये गये अनुवाद के विषय में पण्डित युधिष्ठर मीमांसक की पुस्तक ऋषि दयानन्द सरस्वती के ग्रन्थों का इतिहास के पृष्ठ 155 पर यह अधोलिखित टिप्पणी द्रष्टव्य है-

वेदभाष्यों का भाषानुवाद-

वेदभाष्य का मूल संस्कृत भाग ही ऋषि दयानन्द विरचित है, भाषानुवाद पण्डितों से कराया हुआ है। इसलिये कई स्थानों में भाषा संस्कृत के अनुकूल नहीं हैं। वेदभाष्य के सम्बन्ध में ऋषि दयानन्द ने अपने पत्रों में इस प्रकार लिखा है-

१ – ''जो कहीं पद का छूट जाना है यह भाषा बनाने वाले और शुद्ध लिखने वाले की भूल है।"....

समग्र रूप से भाषानुवाद को देखने पर ज्ञात होता है कि ये अनुवाद महर्षिकृत संस्कृतभाष्य का सही-सही रूप पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने में पूर्णरूप से समर्थ नहीं हैं। महर्षिकृत ऋग्वेदभाष्य का मुद्रण सम्भवतः श्रावण संवत् १९३५ में मासिक अंक रूप में प्रारम्भ हुआ था। सम्पूर्ण भाष्य के छपने में लगभग २२ वर्ष लगे। इस प्रकार सम्पूर्ण भाष्य संवत् १९५६ तक प्रकाशित हो चुका था। प्रमाणस्वरूप पण्डित युधिष्ठर मीमांसक की पुस्तक ऋषि दयानन्द सरस्वती के ग्रन्थों का इतिहास के पृष्ठ १४२ पर यह अधोलिखित टिप्पणी द्रष्टव्य है-

''ऋग्वेदभाष्य के मुद्रण का आरम्भ तथा समाप्ति-

ऋग्वेदभाष्य का मुद्रण सम्भवतः श्रावण संवत् १९३५ में मासिक अंक रूप में प्रारम्भ हुआ था। उनके जीवन काल में इस भाष्य के केवल ५१ अङ्क ही प्रकाशित हुए थे। जिन में प्रथम मण्डल के ८६ वें सूक्त के ५वें मन्त्र तक का भाष्य छपा था'। शेष समस्त भाष्य पूर्ववत् मासिक अङ्कों में सं १९५६ के आषाढ़ कृष्णा ५ तक छपता रहा। अर्थात् सम्पूर्ण भाष्य के छपने में लगभग २२ वर्ष लगे। भाष्य कितने अङ्कों में छपा था, यह हमें ज्ञात नहीं हो सका।''

इस प्रकार ऋग्वेदभाष्य संवत् १९५६ तक प्रकाशित हो चुका था। उसके बाद पं० जयदेव शर्मा शर्मा विद्यालंकार, पं०, हरिशरण सिद्धान्तालंकार और पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर आदि ने हिन्दी भाषा में ऋग्वेद के सम्पूर्ण भाष्य किये। वेद का प्रचार और प्रसार करना हम आर्यों का परम कर्त्तव्य हे, परन्तु हम एक सौ दो तेईस (१२३) वर्षों की दीर्घ अवधि व्यतीत होने के बाद भी महर्षिकृत संस्कृतभाष्य, जिस पर हम गर्व करते हैं, को आर्यभाषा में शुद्ध और सही रूप में प्रस्तुत करने में असफल रहे हैं। ऐसे में वैदिक विद्वानों के द्वारा इस विषय पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने के बाद वाँछित शुद्ध भाषानुवाद किये जाने की नितान्त आवश्यकता है। महर्षि दयानन्द सरस्वती के २०० वें जन्म जयन्ती वर्ष के अवसर पर इस दिशा में कार्य करते हुए महर्षि दयानन्द सरस्वतीकृत ऋग्वेदभाष्यम् में दिये गये अन्वय के आधार पर हिन्दी भाषा में अनुवाद कार्य करते हुए ४० सूक्तों का यह प्रथम खण्ड प्रस्तुत है। संस्कृत भाषा में विस्तृत अनुवाद साथ ही प्रकाशित ऋग्वेदभाष्यम् पुस्तक में उपलब्ध है। सुधी पाठक आवश्यकता पड़ने पर उस पुस्तक में देख सकते हैं। आशा है इस सम्बन्ध में यह लघु प्रयास पाठकों को पसन्द आयेगा।

इस पुस्तक के लेखन में मेरे पूजनीय गुरुजी **डा० यज्ञवीर राणा, आचार्य गुरुकुल पौंधा** का अमूल्य योगदान और आशीर्वाद रहा है। आपने मुझे व्याकरण और निरुक्त के जटिल विषयों की न केवल शिक्षा दी, अपितु इस पुस्तक के लेखन के समय आनेवाली व्याकरण और अनुवाद की समस्याओं का निराकण भी किया। साथ ही इस पुस्तक को आद्योपान्त पढ़कर इसमें पायी गई कमियों का भी निराकरण किया है। मैं आपका आजीवन आभारी रहूँगा।

पूजनीय स्वामी प्रणवानन्द का मेरी अध्ययन यात्रा में विशेष सहयोग और आशीर्वाद रहा है। इसके लिये मैं उनके प्रति हृदय से आभार प्रकट करता हूँ।

मैं डॉ ज्ञान प्रकाश शास्त्री, पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष श्रद्धानन्द वैदिक शोध-संस्थान, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार का हृदय से आभारी हूँ। आपने समय-समय पर अपना अमूल्य समय देकर अपने विस्तृत अनुभव के आधार पर मुझे सुझाव दिये। आपने इस अनुवाद कार्य के प्रति अपनी सम्मति और शुभकामनाएँ प्रदान की हैं, एतदर्थ मैं उनके प्रति सविनय आभारी हूँ।

इस पुस्तक के प्रकाशक विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, नई दिल्ली के स्वामी **यशस्वी श्री अजय आर्य** ने इस पुस्तक का सारगर्भित प्रकाशकीय लिखा है, एतदर्थ मैं उनके प्रति सविनय आभारी हूँ।

साथ ही में मैं श्रद्धानन्द अनुसन्धान प्रकाशन केन्द्र, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार और प्रकाशक वैदिक पुस्तकालय, दयानन्द आश्रम, केसरगंज, अजमेर का आभारी हूँ, जिनकी पुस्तकों के आधार पर यह अनुवाद कार्य किया गया है।

इस कार्य के लिये मैं डिजिटल वैदिकस्किरिपचर्स (VedicScriptures) वेबसाइट के प्रबन्धक **श्री वीरेन्द्र अग्रवाल और समस्त दस सदस्यों** का भी आभारी हूँ। यदि यह डिजिटल वेबसाइट उपलब्ध न होती तो मुझे 70 प्रतिशत टंकण कार्य अधिक करना पड़ता और मेरे लिये यह कार्य अत्यन्त कठिन हो जाता।

इसी प्रकार मैं पुस्तक के कमप्यूटर-संयोजक **अनुज श्री पंकज कण्डवाल** भी साधुवाद के पात्र हैं और मैं उनके उत्कृष्ट कार्य के लिये आभारी हूँ।

करुणानिधान परमपिता परमेश्वर की अनुकम्पा से मैं इस कार्य में प्रवृत्त हुआ हूँ। यदि परमेश्वर की कृपा से मुझे स्वस्थ जीवन और पर्याप्त आयु मिलती है तो मैं महर्षिकृत ऋग्वेद भाष्य का हिन्दी और आँग्ल भाषा में अनुवाद कार्य पूर्ण करने में सफल हो सकूँगा।

चैत्र शुक्ल ०१, प्रतिपदा विक्रमी संवत् २०८०
बुधवार, दि० २२.०३.२०२३

भवतां स्नेहिलाशीर्वादाकांक्षी
डॉ कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री
'वेदभवनम्'
166 ओल्ड नेहरू कालोनी,
देहरादून, उत्तराखण्ड 248001

प्रोचना

अनादिनिधना वेदवाक् आदिकालतः ज्ञानाधिष्ठात्री एवं प्राणिमात्र की पथ-प्रदर्शिका रही है, जिसको विभिन्न युगों में विभिन्न भाषागत अध्ययन-चिन्तन-भाष्य-अर्थ प्रदर्शन का प्रवर्तन रहा है। उसी शृंखला में गुरुकुल काङ्गड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार से एम. ए. (वेद और वैदिक साहित्य) में स्वर्ण पदक प्राप्त यशस्वी डॉ० कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री जी का वेद और स्वाधायाय प्रेम श्लाघनीय है। आपने महर्षि दयानन्द सरस्वती के ऋग्वेद भाष्य का हिन्दी भाषा में अनुवाद किया है, जिसका मैंने आद्योपान्त अध्ययन कर आवश्यक सुधार किये हैं। आपके अनुवाद कार्य में निम्न विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं-

(1) समस्त मन्त्रों का पद-पाठ दिया गया है।

(2) महर्षि ने अपने संस्कृतभाष्य में प्रत्येक मन्त्र का अन्वय लिखा है। अनुवादक द्वारा अन्वय का सन्धिविच्छेद करते हुए इसके आधार पर अनुवाद किया गया है।

(3) पाठक इस भाषानुवाद के आधार पर मन्त्रों में लिखे गये पदों का अर्थ सुगमता से जान सकते हैं।

(4) अनुवादक ने पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या टिप्पणी में दी है जिससे पाठकों को भाष्य को समझने में सरलता होगी।

श्री वैदिक का वैदुष्य, स्वाध्यायशीलता, धर्मपरायणता, संस्कृति, सभ्यता और वेद के प्रति निष्ठा श्लाघनीय है। वेदमाता की आराधना में प्रवृत्त साधकों को सहज ही दीर्घ आयु, प्राण, बल, प्रजा, कीर्ति, ऐश्वर्य, ब्रह्मवर्चस् की प्राप्ति उसी वेदवाक् का परात्मक प्रतिफलन है। मैं अपने शिष्य श्री कृष्ण कान्त वैदिक को शुभ आशीर्वाद देते हुए उनके उज्ज्वल भविष्य और दीर्घायु की कामना करता हूँ। यह कामना भी करता हूँ कि वे होकर अनुवाद के शेष कार्य को भी सफलता से पूर्ण कर सकेंगे।

मङ्गलाभिलाषी
(डॉ यज्ञवीर सिहं राणा)
पूर्व प्रधानाध्यापक राजकीय वरिष्ठ
माध्यमिक विद्यालय बवाना, दिल्ली-39
आचार्य, श्रीमद्दयानन्दार्ष-ज्योतिर्मठ-गुरुकुलम्
पौंधा, देहरादूनम् (उत्तराखण्डम्)

शुभाशंसा

प्राचीन काल से ही वेद को समझने के प्रयास होते रहे हैं, कभी यह प्रयास संहिताकरण के रूप में, कभी पदपाठपद्धति के रूप में, कभी ब्राह्मणग्रन्थों के रूप में, कभी निघण्टु और निरुक्त परम्परा की प्रतिष्ठा के रूप में और कभी भाष्य नाम से प्रचलित व्याख्यान पद्धति के रूप में होते रहे हैं। इस परम्परा में मानव के कदम कालक्रम से सूक्ष्मता से स्थूलता की ओर बढ़ते रहे हैं। हम यह कह सकते हैं कि जब-जब पूर्ववर्ती पीढ़ियों को यह लगा कि आगे आने वाले समय में लोग वेद को समझ नहीं पायेंगे, तब-तब पहले की अपेक्षा अधिक विस्तृत और सुस्पष्ट वेदव्याख्या पद्धति का गठन करने का प्रयास किया जाता रहा है। इसी सोपान में अनुवाद कार्य भी है। महर्षि दयानन्द सरस्वती के ऋग्वेदभाष्य का अनुवाद आज से लगभग एक सौ तेईस पूर्व हुआ था। वेद का भाष्य ही नहीं अपितु अनुवाद कार्य भी अत्यन्त दुरूह है। 'अनुवाद विज्ञान' पुस्तक के प्रणेता डॉक्टर नगेन्द्र का अनुवाद के सम्बन्ध में कहना है- "अनुवादक मूल पाठ के अर्थ को लक्षित भाषा में अंतरित करता है- वह अनुवाद पर्याय का निर्धारण करता है, दोनों भाषाओं के शब्दों, वाक्यों और अर्थों को तोलता है और संप्रेष्य अर्थ को केंद्र में रखते हुए दोनों भाषाओं की इकाइयों में तालमेल बिठाता है। इसी सोपान में अनुवादक को यह महत्त्वपूर्ण निर्णय लेना होता है कि वह किसी शब्द या अभिव्यक्ति के लिए उपलब्ध एकाधिक पर्यायों में से संदर्भ और संप्रेषण स्थिति की अपेक्षाओं के अनुसार कौन सा विकल्प चुने।" श्री कृष्ण कान्त ने महर्षि के संस्कृत भाष्य का हिन्दी में अनुवाद कार्य करने में अत्यन्त परिश्रम किया है। हम सुधी पाठकों पर ही छोड़ते हैं कि वे ही निर्णय करें कि अनुवादक महर्षि द्वारा प्रस्तुत अर्थों को उन तक संम्प्रेषित करने में कितना सफल रहे हैं। इस कार्य के लिये श्री कृष्ण कान्त का अभिनन्दन और हार्दिक शुभकामनाएँ।

(डॉ ज्ञान प्रकाश शास्त्री)
पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
श्रद्धानन्द वैदिक शोध-संस्थान,
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

प्रथममण्डलम्-प्रथमसूक्तम्

(१) अथादिमस्य नवर्चस्य सूक्तस्य मधुच्छन्दाऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः।

अ॒ग्निमी॑ळे पु॒रोहि॑तं य॒ज्ञस्य॑ दे॒वमृ॒त्विज॑म्।

होता॑रं रत्न॒धात॑मम्॥

स्वर सहित पद पाठ

अ॒ग्निम्। ई॒ळे॒। पु॒रः॒ऽहि॑तम्। य॒ज्ञस्य॑। दे॒वम्। ऋ॒त्विज॑म्। होता॑रम्। र॒त्न॒ऽधात॑मम्॥

विषय(भाषा)- यहाँ प्रथम मन्त्र में अग्नि शब्द करके ईश्वर ने अपना और भौतिक अर्थ का उपदेश किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः-अहम् यज्ञस्य पुरोहितम् ऋत्विजम् होतारम् रत्नधातमम् देवम् अग्निम् ईळे॥१॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)-अहम्) मैं **(यज्ञस्य)** विद्वान् लोगों के सत्कार सङ्गम, महिमा और कर्म के देने वाले (पुरोहितम्) जो जगत् की उत्पत्ति से पहले उसे धारण करता है **(ऋत्विजम्)** जो बारम्बार उत्पत्ति के समय में स्थूल सृष्टि के रचनेवाले तथा ऋतु-ऋतु में उपासना करने योग्य है **(होतारम्)** देने और ग्रहण करनेवाले, **(रत्नधातमम्)** मनोहर पृथिव्यादि वा सुवर्ण आदि रत्नों के धारण करने वाले, **(देवम्)** और सब पदार्थों को प्रकाशित करनेवाले **(अग्निम्)** परमेश्वर की **(ईळे)** हम स्तुति अथवा प्रार्थना करते हैं।

भावार्थः(महर्षिकृतः)- इतोऽग्रे यत्र-यत्र मन्त्रभूमिकायामुपदिश्यत इति क्रियापदं प्रयुज्यतेऽस्य सर्वत्र कर्त्तेश्वर एव बोध्यः। कुतः, वेदानां तेनैवोक्तत्वात्। पितृवत्कृपायमाण ईश्वरः सर्वविद्याप्राप्तये सर्वजीवहितार्थं वेदोपदेशं चकार। यथा पिताऽध्यापको वा स्वपुत्रं शिष्यं च प्रति त्वमेवं वदैवं कुरु सत्यं वद पितरमाचार्य्यं च सेवस्वानृतं मा कुर्वित्युपदिशति, तथैवात्र बोध्यम्। वेदश्च सर्वजीवकल्याणार्थमाविर्भूतः। वेदोपदेशस्य परोपकारार्थत्वात्। एवमर्थोऽत्रोत्तमपुरुषप्रयोगः। अत्राग्निशब्देन परमार्थव्यवहारविद्यासिद्धये परमेश्वरभौतिकौ द्वावर्थौ गृह्येते। पुरा आर्य्यैर्याऽश्वविद्यानाम्ना शीघ्रगमनहेतुः शिल्पविद्या सम्पादितेति श्रूयते, साग्निविद्यैवासीत्। परमेश्वरस्य स्वयंप्रकाशत्वसर्वप्रकाशक-त्वाभ्यामनन्तज्ञानवत्त्वात् भौतिकस्य रूपदाहप्रकाशवेगछेदनादिगुणवत्त्वाच्छिल्पविद्यायां मुख्यहेतुत्वाच्च प्रथमं ग्रहणं कृतमस्तीति वेदितव्यम्॥१॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार से दो अर्थों का ग्रहण होता है। पिता के समान कृपा करनेवाला परमेश्वर सब जीवों के हित और सब विद्याओं की प्राप्ति के लिये कल्प-कल्प के आदि में वेद का उपदेश करता

है। जैसे पिता वा अध्यापक अपने शिष्य या पुत्र को शिक्षा करता है कि वह ऐसा करे या ऐसा वचन कहकर, सत्य वचन बोले, इत्यादि शिक्षा को सुनकर बालक वा शिष्य भी कहता है कि वह सत्य बोलेगा, पिता और आचार्य्य की सेवा करेगा, झूठ नहीं कहेगा। इस प्रकार जैसे परस्पर शिक्षक लोग शिष्य या लड़कों को उपदेश करते हैं, वैसे ही अग्निमीळे० इत्यादि वेदमन्त्रों में भी जानना चाहिये। क्योंकि ईश्वर ने वेद सब जीवों के उत्तम सुख के लिये प्रकट किया है। इसी वेद के उपदेश का परोपकार फल होने से अग्निमीळे० इस मन्त्र में ईडे यह उत्तम पुरुष का प्रयोग भी है। **(अग्निमीळे०)** इस मन्त्र में परमार्थ और व्यवहार विद्या की सिद्धि के लिये अग्नि शब्द करके परमेश्वर और भौतिक ये दोनों अर्थ लिये जाते हैं। जो पहिले समय में आर्य लोगों ने अश्वविद्या के नाम से शीघ्र गमन का हेतु शिल्पविद्या आविष्कृत की थी। वह अग्निविद्या की ही उन्नति थी। परमेश्वर के आप ही आप प्रकाशमान सब का प्रकाशक और अनन्त ज्ञानवान् होने से और भौतिक अग्नि के रूप में दाह, प्रकाश, वेग, छेदन आदि गुण और शिल्पविद्या के मुख्य साधक होने से अग्नि शब्द का प्रथम ग्रहण किया है॥१॥

(ऋग्वेद ०१.०१.०१)

ऋषिः- मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रः देवता-अग्निः छन्दः- पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्रीस्वरः- षड्जः।

अ॒ग्निः पूर्वे॑भि॒र्ऋषि॑भि॒रीड्यो॒ नूत॑नैरु॒त।

स दे॒वाँ एह व॑क्षति॥

स्वर सहित पद पाठ

अ॒ग्निः। पूर्वे॑भिः। ऋषि॑ऽभिः। ईड्यः॑। नूत॑नैः। उ॒त। सः। दे॒वान्। आ। इ॒ह। व॒क्ष॒ति॒॥

विषय(भाषा) - उक्त अग्नि किन से स्तुति करने वा खोजने योग्य है, इसका उपदेश इस मन्त्र में किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः-यो अयम् अग्निः पूर्वेभिःउत नूतनैः ऋषिभिः ईड्यः अस्ति, स एह देवान् वक्षति समन्तात् प्रापयतु॥२॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.) –**(यो)** जो **(अयम्)** यह **(अग्नि)** परमेश्वर या भौतिक अग्नि **(पूर्वेभिः)** पूर्व वर्तमान या पूर्व समय के विद्वान् **(उत)** भी **(नूतनैः)** वेदार्थ के पढ़नेवाले ब्रह्मचारी तथा नवीन तर्क और कार्यों में ठहरने वाले प्राणी **(ऋषिभिः)** मन्त्रों के अर्थो को समझने वाले विद्वान् द्वारा **(ईड्यः)** स्तुति करने योग्य **(अस्ति)** है **(सः)** वह परमेश्वर या भौतिक अग्नि **(आ)** चारों ओर से **(इह)** इस वर्तमान संसार या जन्म में **(देवान्)** दिव्य इन्द्रियों और विद्या आदि गुणों वाले देवों या दिव्य ऋतुओं के भोगवालों को **(वक्षति)** प्राप्त होता है॥२॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- ये सर्वा विद्याः पठित्वा सत्योपदेशेन सर्वोपकारका अध्यापका वर्त्तन्ते पूर्वभूताश्च ते पूर्व इति शब्देन, ये चाध्येतारो विद्याग्रहणायाभ्यासं कुर्वन्ति ते नूतनैरिति पदेन गृह्यन्ते। ये मन्त्रार्थान् विदितवन्तो धर्मविद्ययोः प्रचारस्यैवानुष्ठातारः सत्योपदेशेन सर्वाननुग्रहीतारो निश्छलाः पुरुषार्थिनो मोक्षधर्मसिध्यर्थमीश्वरस्यैवोपासकाः कामार्थसिध्यर्थं भौतिकाग्नेर्गुणज्ञानेन कार्य्यसिद्धिं सम्पादयन्तो मनुष्यास्ते ऋषिशब्देन गृह्यन्ते। पूर्वेषां नूतनानां च ये युक्तिप्रमाणसिद्धास्तत्त्वज्ञानार्थास्तर्काः, ये च जगत्कारणस्थाः कार्य्यजगत्स्थाश्च प्राणाः सन्ति, तैः सह योगाभ्यासेनेश्वरो भौतिकश्चाग्निर्वन्द्योऽध्यन्वेष्टव्यगुणश्चास्ति। सर्वज्ञेनेश्वरेण स्वकीयज्ञानान्मनुष्यज्ञानापेक्षया-ऽतीतान् वर्त्तमानांश्चर्षीन् विदित्वाऽस्मिन् मन्त्र उपदिष्टे सति नैव कश्चिद्दोषो भवितुमर्हति, वेदस्य सर्वज्ञवाक्यत्वात्। सोऽयमेवमुपासितो व्यवहारकार्य्येषु संयोजितः सन् सर्वोत्तमान् गुणान् भोगांश्च प्रापयति। अत्र प्राचीनापेक्षया नवीनत्वं नवीनापेक्षया प्राचीनत्वं च विज्ञायत इति। अयमेवार्थो निरुक्तकारेणोक्तः। यस्तु खलु प्राकृतजनैः पाककरणादिषु प्रसिद्धः प्रयोज्यते, सोऽस्मिन् मन्त्रे नैव ग्राह्यः, किन्तु सर्वप्रकाशकः परमेश्वरः सर्वविद्याहेतुर्विद्युदाख्योऽर्थश्चाऽग्निशब्देनात्रोच्यत इति। एतन्मन्त्रार्थः सायणाचार्य्यादिभिरन्यथोक्तः। तद्यथा–पुरातनैर्भृग्वङ्गिरःप्रभृतिभिर्नूतनैरुतेदानींतनैरस्माभिरपि स्तुत्यः। देवान् हविर्भुज आवक्षतीत्यन्यथेदं व्याख्यानमस्ति। तद्वद्यूरोपखण्डस्थैरत्रस्थैश्च कृतमिंगलैण्डभाषायां वेदार्थयत्नादिषु च व्याख्यानमप्यसमञ्जसम्। कुतः, ईश्वरोक्तस्यानादिभूतस्य वेदस्येदृशं व्याख्यानं क्षुद्राशयं निरुक्तशतपथादिग्रन्थविरुद्धं चास्त्यत इति॥२॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद-जो मनुष्य सब विद्याओं को पढ़ के अन्यों को पढ़ाते हैं तथा अपने उपदेश से सब का उपकार करनेवाले हैं या हुए हैं वे पूर्व शब्द से, और जो कि अब पढ़नेवाले विद्या ग्रहण के लिये अभ्यास करते हैं, वे नूतन शब्द से ग्रहण किये जाते हैं, क्योंकि जो मन्त्रों के अर्थों को जाने हुए धर्म और विद्या के प्रचार, अपने सत्य उपदेश से सब पर कृपा करनेवाले, निष्कपट पुरुषार्थी, धर्म की सिद्धि के लिये ईश्वर की उपासना करनेवाले और कार्यों की सिद्धि के लिये भौतिक अग्नि के गुणों को जानकर अपने कर्मों के सिद्ध करनेवाले होते हैं, वे सब पूर्ण विद्वान् शुभ गुण सहित होने पर ऋषि कहाते हैं, तथा प्राचीन और नवीन विद्वानों के तत्त्व जानने के लिये युक्ति प्रमाणों से सिद्ध तर्क और कारण वा कार्य जगत् में रहनेवाले जो प्राण हैं, वे भी ऋषि शब्द से गृहीत होते हैं। इन सब से ईश्वर स्तुति करने योग्य और भौतिक अग्नि अपने-अपने गुणों के साथ खोज करने योग्य है। और जो सर्वज्ञ परमेश्वर ने पूर्व और वर्त्तमान अर्थात् त्रिकालस्थ ऋषियों को अपने सर्वज्ञपन से जान के इस मन्त्र में परमार्थ और व्यवहार ये दो विद्या दिखलाई हैं, इससे इसमें भूत वा भविष्य काल की बातों के कहने में कोई भी दोष नहीं आ सकता है, क्योंकि वेद सर्वज्ञ परमेश्वर का वचन है। वह परमेश्वर उत्तम गुणों को तथा भौतिक अग्नि व्यवहार-कार्यों में संयुक्त किया हुआ उत्तम-उत्तम भोग के पदार्थों का देनेवाला होता है। पुराने की अपेक्षा एक पदार्थ से दूसरा नवीन और नवीन की अपेक्षा पहला पुराना होता है। देखो, यही अर्थ इस मन्त्र का निरुक्तकार ने भी किया है कि जो प्राकृत जन अर्थात् अज्ञानी लोगों ने प्रसिद्ध भौतिक अग्नि पाक बनाने आदि कार्य्यों में लिया है, वह इस मन्त्र में नहीं लेना,

किन्तु सब का प्रकाश करनेहारा परमेश्वर और सब विद्याओं का हेतु, जिसका नाम विद्युत् है, वही भौतिक अग्नि यहाँ अग्नि शब्द से कहा गया है। **(अग्निः पूर्वे०)** इस मन्त्र का अर्थ नवीन भाष्यकारों ने कुछ का कुछ ही कर दिया है, जैसे सायणाचार्य ने लिखा है कि-**(पुरातनैः)** प्राचीन भृगु, अङ्गिरा आदियों और नवीन अर्थात् हम लोगों को अग्नि की स्तुति करना उचित है। वह देवों को हवि अर्थात् होम में चढ़े हुए पदार्थ उनके खाने के लिये पहुँचाता है। सो यह बड़े आश्चर्य की बात है, जो ईश्वर के प्रकाशित अनादि वेद का ऐसा व्याख्यान का क्षुद्र आशय और निरुक्त शतपथ आदि सत्य ग्रन्थों से विरुद्ध होवे, वह सत्य कैसे हो सकता है॥२॥

(ऋग्वेद ०१.०१.०२)

ऋषिः - मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रःदेवता - अग्निःछन्दः - गायत्रीस्वरः -षड्जः।

अ॒ग्निना॑ र॒यिम॑श्नव॒त्पोष॑मे॒व दि॒वेदि॑वे।

य॒शस॑ वी॒रव॑त्तमम्॥

स्वर सहित पद पाठ

अ॒ग्निना॑। र॒यिम्। अ॒श्न॒व॒त्। पोष॑म्। ए॒व। दि॒वेऽदि॑वे। य॒शस॑म्। वी॒रव॑त्ऽतमम्॥

विषय(भाषा)- अब परमेश्वर की उपासना और भौतिक अग्नि के उपकार से क्या-क्या फल प्राप्त होता है, सो इस मन्त्र से उपदेश किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः-मनुष्यः अग्निना एव दिवेदिवे पोषम् यशसम् वीरवत्तमम् रयिम् अश्नवत् प्राप्नोति॥३॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)-(मनुष्यः) यह मनुष्य **(अग्निना)** परमेश्वर या भौतिक अग्नि के द्वारा **(एव)** ही **(दिवेदिवे)** प्रतिदिन **(पोषम्)** आत्मा और शरीर को पुष्ट करते हुए सुख प्रदान करता है। यह **(यशसम्)** सर्वोत्तम कीर्त्ति की वृद्धि करने वाला है और **(वीरवत्तमम्)** जिसमें वीर, विद्वान् और शूर विद्यमान् हों ऐसा **(रयिम्)** विद्या सुवर्ण आदि उत्तम धन **(अश्नवत्)** प्राप्त करता है॥३॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)-अत्र श्लेषालङ्कारेणोभयार्थस्य ग्रहणम्। ईश्वराज्ञायां वर्त्तमानेन शिल्पविद्यादिकार्य्यसिध्यर्थमग्निं साधितवता मनुष्येणाक्षयं धनं प्राप्यते, येन नित्यं कीर्त्तिवृद्धिर्वीरपुरुषाश्च भवन्ति॥३॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार से दो अर्थों का ग्रहण है। ईश्वर की आज्ञा में रहने तथा शिल्प विद्या सम्बन्धी कार्यों की सिद्धि के लिये भौतिक अग्नि को सिद्ध करने वाले मनुष्यों को कभी नष्ट न होने वाले धन प्राप्त

की प्राप्ति होती है, तथा मनुष्य लोग जिस धन से कीर्त्ति की वृद्धि करते हैं और जिस धन को पाकर के वीर पुरुष होते हैं॥३॥

(ऋग्वेद ०१.०१.०३)

ऋषिः - मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रःदेवता - अग्निःछन्दः -गायत्री स्वरः - षड्जः।

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि।

स इद्देवेषु गच्छति॥

स्वर सहित पद पाठ

अग्ने। यम्। यज्ञम्। अध्वरम्। विश्वतः। परिऽभूः। असि। सः। इत्। देवेषु। गच्छति॥

विषय(भाषा)- उक्त भौतिक अग्नि और परमेश्वर किस प्रकार के हैं, यह भेद इस मन्त्र में जनाया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः-हे अग्ने! त्वम् यम् अध्वरम् यज्ञम् विश्वतः परिभूः असि व्याप्य पालकःअसि, तथा अयम् अग्निः अपि सम्पादयिता अस्ति, स इत् देवेषु गच्छति॥४॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)-हे **(अग्ने)** परमेश्वर या भौतिक अग्नि ! **(त्वम्)** आप **(यम्)** जिस **(यज्ञम्)** जिसमें विद्वान् लोगों के सत्कार, सङ्गम. महिमा और कर्म हैं, **(अध्वरम्)** हिंसा आदि दोषरहित, ऐसे **(यज्ञम्)** यज्ञ को, **(विश्वतः)** सर्वत्र व्याप्त होकर **(परिभूः)** सब प्रकार के पदार्थों में व्याप्त होकर सिद्ध करनेवाले **(असि)** हो, आप **(व्याप्य)** व्याप्य और **(पालकः)** पालक **(असि)** हो। **(तथा)** वैसे ही, **(अयम्)** यह, **(अग्निः)** भौतक अग्नि **(अपि)** भी **(सम्पादयिता)** सम्पादित किया गया **(अस्ति)** है। **(सः)** यज्ञ **(इत्)** ही, **(देवेषु)** विद्वानों के बीच में, **(प्राप्नोति)** प्राप्त होता है॥४॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- अत्र श्लेषालङ्कारः। यतोऽयं व्यापकः परमेश्वरः स्वसत्तया पूर्वोक्तं यज्ञं सर्वतः सततं रक्षति, अत एव स यज्ञो दिव्यगुणप्राप्तिहेतुर्भवति। एवमेव परमेश्वरेण यतो दिव्यगुणसहितोऽग्नी रचितोऽस्ति तस्मादेवायं दिव्यशिल्पविद्यासम्पादकोऽस्ति। यो धार्मिक उद्योगी विद्वान् मनुष्योऽस्ति, स एवैतान् गुणान् प्राप्तुमर्हति॥४॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जिस कारण व्यापक परमेश्वर अपनी सत्ता से पूर्वोक्त यज्ञ की निरन्तर रक्षा करता है, इसी से वह अच्छे-अच्छे गुणों को देने का हेतु होता है। इसी प्रकार ईश्वर ने दिव्य गुणयुक्त अग्नि भी रचा है कि जो उत्तम शिल्प विद्या को उत्पन्न करने वाला है। उन गुणों को केवल धार्मिक कार्यों में प्रयत्न करने वाला और विद्वान् मनुष्य ही प्राप्त होने के योग्य होता है॥४॥

(ऋग्वेद ०१.०१.०४)

ऋषिः - मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रःदेवता - अग्निःछन्दः – गायत्रीस्वरः- षड्जः।

अ॒ग्निर्होता॑ क॒विक्र॑तुः स॒त्यश्चि॒त्रश्र॑वस्तमः।

दे॒वो दे॒वेभि॒रा ग॑मत्॥

स्वर सहित पद पाठ

अ॒ग्निः। होता॑। क॒विऽक्र॑तुः। स॒त्यः। चि॒त्रश्र॑वःऽतमः। दे॒वः। दे॒वेभिः॑। आ। ग॒म॒त्॥

विषय(भाषा)-फिर भी परमेश्वर और भौतिक अग्नि किस प्रकार के हैं, सो इस मन्त्र में उपदेश किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः-यः सत्यः चित्रश्रवस्तमः कविक्रतुः होता देवःअग्निः परमेश्वरः भौतिकः च अस्ति, स देवेभिः सह आगमत्॥५॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- (यः) जो **(सत्यः)** अविनाशी **(चित्रश्रवस्तमः)** जिसका अति आश्चर्यरूपी श्रवण है, वह परमेश्वर, **(कविक्रतुः)** जिसने परमाणु आदि पदार्थ और उनके उत्तम-उत्तम गुण रचके दिखलाये हैं, जो सब विद्यायुक्त वेद का उपदेश करता है, वही कवि अर्थात् सर्वज्ञ ईश्वर है, **(होता)** देने वाला, ग्रहण करने वाला और प्रेरक, **(देवः)** आप से प्रकाशमान **(अग्निः)** भौतिक अग्नि **(अस्ति)** है। **(सः)** वह परमेश्वर **(देवेभिः)** विद्वानों के साथ समागम करने से **(आ)** अच्छी तरह से **(गमत्)** जाना जाता है॥५॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- अत्र श्लेषालङ्कारः। अग्निशब्देन परमेश्वरस्य सर्वाधारसर्वज्ञसर्वरचकविनाशरहितानन्तशक्तिमत्त्वादिगुणैः सर्वप्रकाशकत्वात्, तथा भौतिकस्याकर्षणगुणादिभिर्मूर्त्तद्रव्याधारकत्वाच्च ग्रहणमस्तीति। सायणाचार्य्येण गमदिति लोडन्तं व्याख्यातम्, तदेतदस्य भ्रान्तिमूलमेव। कुतः? गमदित्यत्र 'छन्दसि लुङ्लङ्लिटः' इति सामान्यकालविधायकस्य सूत्रस्य विद्यमानत्वात्॥५॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। सब का आधार, सर्वज्ञ, सब का रचनेवाला, विनाशरहित, अनन्त शक्तिमान् और सब का प्रकाशक आदि गुण हेतुओं के पाये जाने से अग्नि शब्द करके परमेश्वर और आकर्षणादि गुणों से मूर्त्तिमान् पदार्थों का धारण करनेवाला आदि गुणों के होने से भौतिक अग्नि का भी ग्रहण होता है। सिवाय इसके मनुष्यों को यह भी जानना उचित है कि विद्वानों के समागम और संसारी पदार्थों को उनके गुणसहित विचारने से परम दयालु परमेश्वर अनन्त सुखदाता और भौतिक अग्नि शिल्प विद्या का सिद्ध करने वाला होता है॥५॥

अनुवादक की टिप्पणी- सायणाचार्य्य ने गमत् इस प्रयोग को लोट् लकार का माना है, सो यह उनका व्याख्यान अशुद्ध है, क्योंकि इस प्रयोग में (छन्दसि लुङ्०) यह सामान्यकाल बतानेवाला सूत्र वर्त्तमान है॥५॥

(ऋग्वेद ०१.०१.०५)

ऋषिः-मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रःदेवता- अग्निःछन्दः-निचृद्गायत्रीस्वरः षड्जः।

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि।

तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः॥

स्वर सहित पद पाठ

यत्। अङ्ग। दाशुषे। त्वम्। अग्ने। भद्रम्। करिष्यसि। तव। इत्। तत्। सत्यम्। अङ्गिरः॥

विषय(भाषा)- अब अग्नि शब्द से ईश्वर का उपदेश इस मन्त्र में किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- हे अङ्गिरः अङ्ग अग्ने! त्वम् यस्मात् दाशुषे भद्रम् करिष्यसि करोषि, तस्मात् तव इत् एव इदम् सत्यम् व्रतम् अस्ति॥६॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- (हे) हे **(अङ्गिरः)** ब्रह्माण्ड के अङ्ग पृथिवी आदि पदार्थों को प्राणरूप और शरीर के अङ्गों को अन्तर्यामीरूप से रसरूप होकर रक्षा करनेवाले, **(अङ्ग)** सब के मित्र **(अग्ने)** परमेश्वर! **(त्वम्)** तुम मङ्गलमय हो **(यस्मात्)** जिस से, **(दाशुषे)** समस्त पदार्थों को दान करनेवाले मनुष्य **(भद्रम्)** कल्याण, जो कि शिष्ट विद्वानों के योग्य है, **(करिष्यसि)** को करते हो। **(तस्मात्)** उस से **(एव)** ही **(इदम्)** यह **(सत्यम्)** सत्य पदार्थों में सुखों का विस्तार करने वाला और शील गुण उत्पन्न करने वाला **(व्रतम्)** संकल्प **(अस्ति)** है।

भावार्थः(महर्षिकृतः)- यो न्यायकारी सर्वस्य दयालुः सुहृत्सन् कल्याणकर्त्ता सर्वस्य सुखमिच्छुः परमेश्वरोऽस्ति, तस्योपासनेन जीव ऐहिकपारमार्थिकं सुखं प्राप्नोति, नेतरस्य। कुतः, परमेश्वरस्यैवैतच्छीलवत्त्वेन समर्थत्वात्। योऽभिव्याप्याङ्गान्यङ्गीव सर्वं विश्वं धारयति, येनैवेदं जगद्रक्षितं यथावदवस्थापितं च सोऽङ्गिरा भवतीति। अत्राङ्गिरःशब्दार्थो विलसनाख्येन भ्रान्त्यान्यथैव व्याख्यात इति बोध्यम्॥६॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- जो न्याय, दया, कल्याण और सब का मित्रभाव करनेवाला परमेश्वर है, उसी की उपासना करके जीव इस लोक और मोक्ष के सुख को प्राप्त होता है, क्योंकि इस प्रकार सुख देने का स्वभाव और सामर्थ्य केवल परमेश्वर का है, दूसरे का नहीं। जैसे शरीरधारी अपने शरीर को धारण करता है, वैसे ही परमेश्वर सब संसार को धारण

करता है, और इसी से इस संसार की यथावत् रक्षा और स्थिति होती है॥६॥

महर्षिकृतः टिप्पणी-अत्राङ्गिरःशब्दार्थो विलसनाख्येन भ्रान्त्यान्यथैव व्याख्यात इति बोध्यम्॥६॥

महर्षिकृत टिप्पणी का भाषानुवाद- विलसन नाम के विद्वान् ने यहाँ अङ्गिरः शब्द की भ्रान्तिपूर्ण याख्या की है। ऐसा जानना चाहिए॥६॥

(ऋग्वेद ०१.०१.०६)

ऋषिः -मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रःदेवता - अग्निःछन्दः - गायत्रीस्वरः - षड्जः।

उप॑ त्वाग्ने दि॒वेदि॑वे॒ दोषा॑वस्तर्धि॒या व॒यम्।

नमो॒ भर॑न्त॒ एम॑सि॥

स्वर सहित पद पाठ

उप॑। त्वा॒। अ॒ग्ने॒। दि॒वेऽदि॑वे। दोषा॑ऽवस्तः। धि॒या। व॒यम्। नमः॑। भर॑न्तः। आ। इ॒म॒सि॒॥

विषय (भाषा)- उक्त परमेश्वर कैसे उपासना करके प्राप्त होने के योग्य है, इसका विधान इस मन्त्र में किया है॥

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- हे अग्ने ! वयम् धिया दिवेदिवे दोषावस्तः त्वाम् भरन्तः नमःकुर्वन्तः च उपैमसि प्राप्नुमः॥७॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- **(हे)** हे **(अग्ने)** सब के उपासना करने योग्य परमेश्वर! **(वयम्)** हम उपासक लोग **(धिया)** अपनी बुद्धि और कर्मों से **(दिवेदिवे)** अनेक प्रकार के विज्ञान के प्रकाश को प्रकाशित करने के लिये, **(दोषावस्तः)** रात्रिदिन में निरन्तर **(त्वा)** आपकी, **(भरन्तः)** उपासना को धारण, **(नमः)** नमस्कार **आदि (कुर्वन्तः)** करते हुए **(च)** और **(उप)** समीप से **(आ)** अच्छी तरह से **(इमसि)** आपके शरण को प्राप्त होते हैं॥७॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- हे सर्वद्रष्टः सर्वव्यापिन्नुपासनार्ह ! वयं सर्वकर्मानुष्ठानेषु प्रतिक्षणं त्वां यतो नैव विस्मरामः, तस्मादस्माकमधर्ममनुष्ठातुमिच्छा कदाचिन्नैव भवति। कुतः? सर्वज्ञः सर्वसाक्षी भवान्सर्वाण्यस्मत्कार्य्याणि सर्वथा पश्यतीति ज्ञानात्॥७॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- हे सब को देखने और सब में व्याप्त होनेवाले उपासना के योग्य परमेश्वर ! हम लोग सब कामों के करने में एक क्षण भी आपको नहीं भूलते, इसी से हम लोगों को अधर्म करने में कभी इच्छा भी नहीं होती,

क्योंकि जो सर्वज्ञ सब का साक्षी परमेश्वर है, वह हमारे सब कामों को इस निश्चय से देखता है ॥७॥

(ऋग्वेद ०१.०१.०७)

ऋषिः- मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रःदेवता-अग्निःछन्दः- यवमध्याविराड्गायत्रीस्वरः - षड्जः।

राज॑न्तमध्व॒राणां॑ गो॒पामृ॒तस्य॒ दीदि॑विम्।

वर्ध॑मानं॒ स्वे दमे॑॥

स्वर सहित पद पाठ

राज॑न्तम्। अ॒ध्व॒राणा॑म्। गो॒पाम्। ऋ॒तस्य॑। दीदि॑विम्। वर्ध॑मानम्। स्वे। दमे॑॥

विषय(भाषा)- फिर भी वह परमेश्वर किस प्रकार का है, सो इस मन्त्र में उपदेश किया है॥

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- वयम् स्वे दमे वर्धमानम् राजन्तम् अध्वराणाम् गोपामृतस्य दीदिविम् परमेश्वरम् नित्यम् उप आ इमसि॥८॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- (वयम्) हम **(स्वे)** अपने **(दमे)** उस परम आनन्द पद में कि जिसमें बड़े-बड़े दुःखों से छूट कर मोक्ष सुख को प्राप्त हुए पुरुष रमण करते हैं, **(वर्धमानम्)** सब से बड़े **(राजन्तम्)** प्रकाशस्वरूप **(अध्वराणाम्)** पूर्वोक्त धार्मिक मनुष्यों के यज्ञादि अच्छे-अच्छे कर्म **(गोपाम्)** पृथिवी आदि के रक्षक **(ऋतस्य)** सत्य विद्या से युक्त चारों वेदों और कार्य जगत् के अनादि कारण के **(उप)** समीप **(आ)** अच्छी तरह से **(इमसि)** प्राप्त होते हैं॥८॥

भावार्थः (महर्षिकृतः)- परमात्मा स्वस्य सत्तायामानन्दे च क्षयाज्ञानरहितोऽन्तर्यामिरूपेण सर्वान् जीवान्सत्यमुपदिशन्नाप्तान् संसारं च रक्षन् सदैव वर्तते। एतस्योपासका वयमप्यानन्दिता वृद्धियुक्ता विज्ञानवन्तो भूत्वाऽभ्युदयनिःश्रेयसं प्राप्ताः सदैव वर्त्तामह इति॥८॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- जैसे विनाश और अज्ञान आदि दोषरहित परमात्मा अपने अन्तर्यामिरूप से सब जीवों को सत्य का उपदेश तथा श्रेष्ठ विद्वान् और सब जगत् की रक्षा करता हुआ अपनी सत्ता और परम आनन्द में प्रवृत्त हो रहा है। उस परमेश्वर के उपासक हम भी आनन्दित, वृद्धियुक्त विज्ञानवान् होकर विज्ञान में विहार करते हुए परम आनन्दरूप विशेष फलों को प्राप्त होते हैं॥८॥

अनुवादक की टिप्पणी- महर्षि के भावार्थ में आये शब्दों को इस प्रकार से परिभाषित किया जाता है-(1) अभ्युदय-

इच्छित वस्तु की सिद्धि करना अभ्युदय है। (2) निःश्रेयस-अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति, मोक्ष।

(ऋग्वेद ० १. ० १. ० ८)

ऋषिः - मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रःदेवता - अग्निःछन्दः - विराड्गायत्रीस्वरः- षड्जः।

स नः॑ पि॒तेव॑ सू॒नवेऽग्ने॑ सूपाय॒नो भ॑व।

सच॑स्वा नः स्व॒स्तये॑॥

स्वर सहित पद पाठ

सः। न॒ः। पि॒ताऽइ॑व। सू॒नवे॑। अग्ने॑। सु॒ऽउ॒पा॒य॒नः। भ॒व। सच॑स्व। न॒ः। स्व॒स्तये॑॥

विषय(भाषा)- वह परमेश्वर किस के समान किनकी रक्षा करता है, सो इस मन्त्र में उपदेश किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- हे अग्ने ! स त्वम् सूनवे पितेव नः अस्मभ्यम् सूपायनः भव। एवम् नःअस्मान् स्वस्तये सचस्व॥९॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- (हे) हे (अग्ने) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर! (त्वम्) आप (सूनवे) जैसे पिता अपने पुत्र के लिये उत्तम ज्ञान का देनेवाला होता है, वैसे ही आप (पितेव) जैसे पिता (नः) हमारे लिए (सूपायनः) शोभन ज्ञान, जो कि सब सुखों का साधक और उत्तम पदार्थों का प्राप्त करानेवाला है, उसके देनेवाले (भव) हूजिये और (नः) हम लोगों को (स्वस्तये) सब सुख के लिये (एवम्) ही (सचस्व) संयुक्त कीजिये ॥९॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- अत्रोपमालङ्कारः। सर्वैरेवं प्रयत्नः कर्तव्य ईश्वरः प्रार्थनीयश्च-हे भगवन् ! भवानस्मान् रक्षयित्वा शुभेषु गुणकर्मसु सदैव नियोजयतु। यथा पिता स्वसन्तानान्सम्यक् पालयित्वा सुशिक्ष्य शुभगुणकर्म्मयुक्तान् श्रेष्ठकर्मकर्तॄंश्च सम्पादयति, तथैव भवानपि स्वकृपयाऽस्मान्निष्पादयत्विति॥९॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। सब मनुष्यों को उत्तम प्रयत्न और ईश्वर की प्रार्थना इस प्रकार से करनी चाहिये कि-हे भगवन् ! जैसे पिता अपने पुत्रों को अच्छी प्रकार पालन करके और उत्तम-उत्तम शिक्षा देकर उनको शुभ गुण और श्रेष्ठ कर्म करने योग्य बना देता है, वैसे ही आप हम लोगों को शुभ गुण और शुभ कर्मों में युक्त सदैव कीजिये॥९॥

(ऋग्वेद ०१.०१.०९)

[०२] द्वितीयं सूक्तम्

ऋषिः- मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रःदेवता-वायुःछन्दः- पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्रीस्वरः -षड्जः।

वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः।

तेषां पाहि श्रुधी हवम्॥

स्वर सहित पद पाठ

वायो इति। आ। याहि। दर्शत। इमे। सोमाः। अरंऽकृताः। तेषाम्। पाहि। श्रुधि। हवम्॥

विषय(भाषा)- अब द्वितीय सूक्त का प्रारम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में उन पदार्थों का वर्णन किया है कि जिन्होंने सब पदार्थ शोभित कर रक्खे हैं।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- (प्रथमः)- हे दर्शत वायो जगदीश्वर ! त्वम् आयाहि। येन त्वया इमे सोमाः अरंकृता अलंकृताः सन्ति। तेषाम् तान् पदार्थान् पाहि, अस्माकम् हवम् श्रुधि॥१॥

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- (द्वितीयः)- यः अयम् दर्शत द्रष्टुम् योग्यः वायः वायुः येन इमे सोमा अरंकृता अलंकृताः सन्ति, स तेषाम् तान् सर्वान् इमान् पदार्थान् पाहि पाति, श्रुधि हवम् स एव वायुः सर्वम् शब्दव्यवहारम् श्रावयति। आयाहि सर्वान् पदार्थान् स्वगत्या प्राप्नोति॥१॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)-(प्रथमः)- हे **(दर्शत)** ज्ञान से देखने योग्य **(वायो)** अनन्त बलयुक्त, सब के प्राणरूप, अन्तर्यामी परमेश्वर **! (त्वम्)** आप हमारे हृदय में **(आयाहि)** प्रकाशित हूजिये। **(येन)** जिन्होंने **(त्वया)** आपके **(इमे)** इन प्रत्यक्ष **(सोमाः)** संसारी पदार्थों को **(अरंकृता-अलंकृताः)** अलंकृत अर्थात् सुशोभित कर रक्खे **(सन्ति) हैं। (तेषाम्)** उनके **(तान्)** उन **(पदार्थान्)** पदार्थों की **(पाहि)** रक्षा भी कीजिये। **(अस्माकम्)** हमारे लिए **(हवम्)** जिस दैवीय शक्ति से सब प्राणी लोग कहने और सुनने रूप व्यवहार को **(श्रुधि)** कहते और सुनते हैं, आप भी उसे सुनिये॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- (द्वितीयः)- **(यः)** जो **(अयम्)** यह **(दर्शत)** भौतिक रूप से देखने योग्य **(वायो)** अन्तरिक्ष लोक में भौतिक वायु अग्नि के तुल्य परिपूर्ण और यज्ञादिकों को वायुमण्डल में पहुँचाने वाला है। **(येन)** जिन्होंने **(त्वया)** आपके **(इमे)** इन प्रत्यक्ष **(सोमाः)** संसारी पदार्थों को **(अरंकृता-अलंकृताः)** अलंकृत अर्थात् सुशोभित कर रक्खे **(सन्ति)** हैं। **(तेषाम्)** उनके **(तान्) उन (पदार्थान्)** पदार्थों की **(पाहि)** रक्षा कीजिये। **(अस्माकम्)** हमारे लिए **(हवम्)**

जिस दैविक शक्ति से सब प्राणी लोग कहने और सुनने रूप व्यवहार को **(श्रुधि)** कहते सुनते हैं **(सः)** वह वायु **(तेषाम्)** उनके **(तान्)** उन **(पदार्थान्)** पदार्थों **की (पाहि)** रक्षा करता है। **(सः)** वह वायु **(एव) ही (सर्वम्)** सब **(शब्दव्यवहारम्)** शब्दों के व्यवहार को **(श्रावयति)** सुनाता है और **(सर्वान्)** समस्त **(पदार्थान्)** पदार्थों को **(स्वगत्या)** अपनी गति से **(प्राप्नोति)** प्राप्त कराता है॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- अत्र श्लेषालङ्कारेणेश्वरभौतिकावर्थौ गृह्येते। ब्रह्मणा स्वसामर्थ्येन सर्वे पदार्थाः सृष्ट्वा नित्यं भूष्यन्ते तथा तदुत्पादितेन वायुना च। नैव तद्धारणेन विना कस्यापि रक्षणं सम्भवति। प्रेम्णा जीवेन प्रयुक्तां स्तुतिं वाणीं चेश्वरः सर्वगतः प्रतिक्षणं शृणोति। तथा जीवो वायुनिमित्तेनैव शब्दानामुच्चारणां श्रवणं च कर्त्तुं शक्नोतीति॥१॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- इस मन्त्र में श्लेषालंकार से ईश्वर और भौतिक अर्थ (वायु) ग्रहण किये जाते हैं। जैसे परमेश्वर के सामर्थ्य से रचे हुए पदार्थ नित्य ही सुशोभित होते हैं, वैसे ही जो ईश्वर का रचा हुआ भौतिक वायु है, उसकी धारणा के विना किसी का भी रक्षण सम्भल नहीं है। जैसे जीव की प्रेमभक्ति से की हुई स्तुति को सर्वगत ईश्वर प्रतिक्षण सुनता है, वैसे ही भौतिक वायु के निमित्त से भी जीव शब्दों के उच्चारण और श्रवण करने को समर्थ होता है।

(ऋग्वेद ०१.०२.०१)

ऋषिः -मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रःदेवता-वायुःछन्दः-पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्रीस्वरः–षड्जः।

वाय॑ उ॒क्थेभि॑र्जरन्ते॒ त्वामच्छा॑ जरि॒तार॑ः।

सु॒तसो॑मा अह॒र्विद॑ः॥

स्वर सहित पद पाठ

वायो॒ इति॑। उ॒क्थेभि॑ः। ज॒र॒न्ते॒। त्वाम्। अच्छ॑। ज॒रि॒तार॑ः। सु॒तऽसो॑माः। अ॒हः॒ऽविद॑ः॥

विषय(भाषा)-उक्त परमेश्वर और भौतिक वायु किस प्रकार स्तुति करने योग्य हैं, सो इस मन्त्र में उपदेश किया है-

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- हे वायो ! अहर्विदः सुतसोमा जरितारो विद्वांस उक्थेभिः त्वाम् अच्छा जरन्ते॥२॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(वायो)** हे अनन्त बलवान् ईश्वर! **(अहर्विदः)** विज्ञानरूप प्रकाश को प्राप्त होने वाले **(सुतसोमाः)** ओषधि आदि पदार्थों के रस को उत्पन्न करने की विद्या से **(जरितारः)** स्तुति और सत्कार के करनेवाले विद्वान् लोग हैं, वे (उक्थेभिः) वेदोक्त स्तोत्रों से (त्वाम्) आपका (अच्छ) साक्षात् करने के लिये **(जरन्ते)** स्तुति करते हैं॥२॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- अत्र श्लेषालङ्कारः। अनेन मन्त्रेण वेदादिस्थैः स्तुतिसाधनैः स्तोत्रैः परमार्थव्यवहारविद्यासिद्धये वायुशब्देन परमेश्वर-भौतिकयोर्गुणप्रकाशेनोभे विद्ये साक्षात्कर्त्तव्ये इति। अत्रोभयार्थग्रहणे प्रथममन्त्रोक्तानि प्रमाणानि ग्राह्याणि॥२॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- यहाँ श्लेषालङ्कार है। इस मन्त्र से जो वेदादि शास्त्रों में कहे हुए स्तुतियों के निमित्त स्तोत्र हैं, उनसे व्यवहार और परमार्थ विद्या की सिद्धि के लिये परमेश्वर और भौतिक वायु दोनों के गुणों का प्रकाश किया गया है। इस मन्त्र में वायु शब्द से परमेश्वर और भौतिक वायु के ग्रहण करने के लिये पहले मन्त्र में कहे हुए प्रमाण ग्रहण करने चाहियें॥२॥

(ऋग्वेद ०१.०२.०२)

ऋषिः - मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रः देवता - वायुःछन्दः - गायत्रीस्वरः - षड्जः।

वायो तव प्रपृञ्चती धेना जिगाति दाशुषे।

उरूची सोमपीतये॥

स्वर सहित पद पाठ

वायो इति। तव। प्रऽपृञ्चती। धेना। जिगाति। दाशुषे। उरूची। सोमऽपीतये॥

विषय(भाषा)- पूर्वोक्त स्तोत्रों का जो श्रवण और उच्चारण का निमित्त है, उसका प्रकाश इस मन्त्र में किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- हे वायो परमेश्वर ! भवत् कृपया या तव प्रपृञ्चि उरूची धेना सा सोमपीतये दाशुषे विदुषे जिगाति। तथा तव अस्य वायो प्राणस्य प्रपृञ्चि उरूची धेना सोमपीतये दाशुषे जीवाय जिगाति॥३॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- (प्रथमः)- परमेश्वर के पक्ष में-

हे **(वायो)** वेदविद्या के प्रकाश करनेवाले **(परमेश्वर)** परमेश्वर! **(भवत्)** आप **(कृपया)** कृपया **(या)** जो **(तव)** परमेश्वर की **(प्रपृञ्चि)** सब विद्याओं के सम्बन्ध से विज्ञान का प्रकाश कराने और **(उरूची)** अनेक विद्याओं के प्रयोजनों को प्राप्त कराने हारी **(धेना)** चार वेदों की वाणी है, सो **(सा)** वह वाणी **(सोमपीतये)** जानने योग्य संसारी पदार्थों के निरन्तर विचार करने और **(दाशुषे)** निष्कपट से प्रीत के साथ विद्या देनेवाले पुरुषार्थी **(विदुषे)** विद्वान् के लिए **(जिगाति)** प्राप्त होती है।

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- (द्वितीयः)- वायु के पक्ष में-

(वायो तव) आपके इस भौतिक वायु के योग से **(प्राणस्य)** प्राणों की जो **(प्रपृञ्चि)** शब्दोच्चारण श्रवण कराने और **(उरूची)** अनेक पदार्थों की जाननेवाली **(धेना)** वाणी है, **(सो)** वह **(सोमपीतये)** संसारी पदार्थों के पान करने योग्य रस को पीने या **(दाशुषे)** शब्दोच्चारण श्रवण करने वाले पुरुषार्थी विद्वान् को **(जिगाति)** प्राप्त होती है॥३॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- अत्रापि श्लेषालङ्कारः। द्वितीयमन्त्रे यया वेदवाण्या परमेश्वरभौतिकयोर्गुणः प्रकाशितास्तस्याः फलप्राप्ती अस्मिन्मन्त्रे प्रकाशिते स्तः। अर्थात्प्रथमार्थे वेदविद्या द्वितीये वक्तॄणां जीवानां वाङ्निमित्तं च प्रकाश्यत इति॥३॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- यहाँ भी श्लेषालङ्कार है। दूसरे मन्त्र में जिस वेदवाणी से परमेश्वर और भौतिक वायु के गुण प्रकाश किये हैं, उसका फल और प्राप्ति इस मन्त्र में प्रकाशित की है अर्थात् प्रथम अर्थ से वेदविद्या और दूसरे से जीवों की वाणी का फल और उसकी प्राप्ति का निमित्त प्रकाश किया है॥३॥

(ऋग्वेद ०१.०२.०३)

ऋषिः - मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रःदेवता - इन्द्रवायूछन्दः - गायत्रीस्वरः – षड्जः।

इन्द्र॑वायू इ॒मे सु॒ता उप॒ प्रयो॑भि॒रा ग॑तम्।

इन्द॑वो वा॒मु॒शन्ति॒ हि॥

स्वर सहित पद पाठ

इन्द्र॑वायू॒ इति॑। इ॒मे। सु॒ताः। उप॑। प्रयः॑ऽभि॒ः। आ। ग॒त॒म्। इन्द॑वः। वा॒म्। उ॒शन्ति॑। हि॥

विषय(भाषा)- अब जो स्तोत्रों से प्रकाशित पदार्थ हैं, उनकी वृद्धि और रक्षा के निमित्त का इस मन्त्र में उपदेश किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- इमे सुता इन्दवः हि यतः वां तौ सहचारिणौ इन्द्रवायू प्रकाशन्ते तौ च उपागतम् उपागच्छतः ततः प्रयोभिः अन्नादिभिः पदार्थैः सह सर्वे प्राणिनः सुखानि उशन्ति (कामयन्ते)॥४॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- (इमे) ये प्रत्यक्ष **(सुता)** उत्पन्न हुए पदार्थ **(इन्दवः)** जो जल, क्रियामय यज्ञ और प्राप्त होने योग्य भोग पदार्थ हैं, वे, **(हि)** जिस कारण से **(वाम्)** उन दोनों, **(सहचारिणौ)** नैसर्गिक मित्रों, **(इन्द्रवायू)** सूर्य्य और पवन को **(प्रकाशन्ते)** प्रकाशित करते हैं। **(वाम्-तौ)** वे दोनों **(च)** भी, **(उप)** पास में, **(आगतम्)** प्राप्त होते हैं **(तौ)** वे दोनों **(उशन्ति)** प्रकाशित करते हैं **(ततः)** उस स्थान से, **(प्रयोभिः)** अन्नादि पदार्थों के साथ सब प्राणी सुख की कामना करते हैं और **(सर्वे)** सब **(प्राणिनः)** प्राणी **(सुखानि)** सुखों को **(उशन्ति-कामयन्ते)** प्रकाशित करते हैं॥४॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- अस्मिन्मन्त्रे प्राप्यप्रापकपदार्थानां प्रकाशः कृत इति॥४॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- इस मन्त्र में परमेश्वर ने प्राप्त होने योग्य और प्राप्त करानेवाले इन दो पदार्थों का प्रकाश किया है॥४॥

(ऋग्वेद ०१.०२.०४)

ऋषिः - मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रःदेवता - इन्द्रवायूछन्दः - गायत्रीस्वरः - षड्जः।

वायविन्द्रंश्च चेतथः सुतानां वाजिनीवसू।
तावा यांतमुपं द्रवत्॥

स्वर सहित पद पाठ

वायो इतिं। इन्द्रंः। च। चेतथः। सुतानांम्। वाजिनीवसू इतिं वाजिनीऽवसू। तौ। आ। यातम्। उपं। द्रवत्॥

विषय(भाषा)- अब पूर्वोक्त सूर्य्य और पवन, जो कि ईश्वर ने धारण किये हैं, वे किस-किस कर्म की सिद्धि के निमित्त रचे गये हैं, इस विषय का इस मन्त्र में उपदेश किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- हे वायो ईश्वर ! यतः भवत् रचितौ वाजिनीवसू च पूर्वोक्तौ इन्द्रवायू सुतानाम् सुतान् भवत् उत्पादितान् पदार्थान् चेतथः (संज्ञापयतः) ततः तान् द्रवत् (शीघ्रम्) उपायातम् उपागच्छतः॥५॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(वायो)** ज्ञानस्वरूप परमेश्वर! **(यतः)** क्योंकि **(भवत्)** आदरणीय श्रीमान् के **(रचितौ)** रचे हुए दोनों **(वाजिनीवसू)** उषा काल के तुल्य प्रकाश और वेग से युक्त **(पूर्वोक्तौ)** पहले कहे गये **(इन्द्रवायू)** प्रत्यक्ष सूर्य और पवन **(च)** भी **(सुतानाम्)** आपके उत्पन्न किये हुए पदार्थों का **(चेतथः-संज्ञापयतः)** धारण और प्रकाश करके उनको जीवों को दृष्टिगोचर कराते हैं। इसी कारण **(ततः)** वहां से **(तान्)** उनको **(द्रवत्)** शीघ्रता से **(उप)** समीपता में **(आयातम्-उपागच्छतः)** प्राप्त होते हैं॥५॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- यदि परमेश्वर एतौ न रचयेत्तर्हि कथमिमौ स्वकार्य्यकरणे समर्थौ भवत इति॥५॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- यदि परमेश्वर इन सूर्यलोक और वायु को न बनावे, तो ये दोनों अपने कार्य को करने में कैसे समर्थ होवें॥५॥

(ऋग्वेद ०१.०२.०५)

ऋषिः- मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रःदेवता - इन्द्रवायूछन्दः-निचृद्गायत्रीस्वरः- षड्जः।

वायविन्द्रश्च सुन्वत आ यातमुप निष्कृतम्।

मक्ष्वित्था धिया नरा॥

स्वर सहित पद पाठ

वायो इति। इन्द्रः। च। सुन्वतः। आ। यातम्। उप। निःऽकृतम्। मक्षु। इत्था। धिया। नरा॥

विषय(भाषा)- पूर्वोक्त इन्द्र और वायु के शरीर के भीतर और बाहर के कार्यों का इस मन्त्र में उपदेश किया है-

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- हे वायो ! नरा नरौ इन्द्रवायू मक्षु इत्था यथा सुन्वतः तथा तौ धिया निष्कृतम् उप आयातम् उपायतः॥६॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(वायो)** सर्वान्तर्यामी परमेश्वर ! **(नरौ)** संसार के सब पदार्थों को प्राप्त करानेवाले, **(इन्द्रवायू)** प्रत्यक्ष सूर्य और पवन के **(मक्षु)** शीघ्र गमन से **(इत्था)** धारण, पालन, वृद्धि और क्षय हेतु से सोम आदि सब ओषधियों के रस को **(यथा)** जैसे **(सुन्वतः)** उत्पन्न करते हैं, **(तथा)** उसी प्रकार **(तौ)** वे दोनों **(धिया)** धारण करने वाली बुद्धि और कर्मों से **(निष्कृतम्)** कर्मों के फलों को **(उप)** निकटता से **(आ)** अच्छी तरह से **(यातम्)** प्राप्त करते हैं॥६॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- यथाऽत्र ब्रह्माण्डस्थाविन्द्रवायू सर्वप्रकाशकपोषकौ स्तः एवं शरीरे जीवप्राणावपि, परन्तु सर्वत्रेश्वराधारापेक्षास्तीति॥६॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- जैसे यहाँ ब्रह्माण्ड में स्थित सूर्य्य और वायु हैं, ऐसे ही जीव का प्राण भी है, परन्तु सभी स्थानों में ईश्वर के आधार की अपेक्षा रहती है॥६॥

अनुवादक की टिप्पणी- सोम-सोम नाम की एक बेल प्रकृति में पाई जाती है। इस पौधे का रस सोम कहलाता है।

(ऋग्वेद ०१.०२.०६)

ऋषिः - मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रःदेवता - मित्रावरुणौछन्दः - गायत्रीस्वरः - षड्जः।

मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम्।

धियं घृताचीं साधन्ता॥

स्वर सहित पद पाठ

मि॒त्रम् । हु॒वे । पू॒तऽद॑क्षम् । वरु॑णम् । च॒ । रि॒शाद॑सम् । धिय॑म् । घृ॒ताची॑म् । साध॑न्ता ॥

विषय(भाषा)- ईश्वर पूर्वोक्त सूर्य्य और वायु को दूसरे नाम से इस मन्त्र में स्पष्ट करता है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- अहम् शिल्पविद्याम् चिकीर्षुः मनुष्यः यौ घृताचीम् धियम् साधन्तौ वर्त्तेते तौ पूतदक्षम् मित्रंम् रिशादसम् वरुणम् च हुवे॥७॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- (अहम्) मैं **(शिल्पविद्याम्)** शिल्पविद्या का **(चिकीर्षुः)** चाहने वाला **(मनुष्यः)** मनुष्य हूँ। **(यौ)** जो **(घृताचीम्)** जल प्राप्त कराने वाली **(धियम्)** क्रिया वा बुद्धि को **(साधन्ता)** सिद्ध करने वाले हैं, **(तौ)** उन दोनों को **(पूतदक्षम्)** पवित्र बल या सब सुखों के देने **(च)** और **(मित्रम्)** सूर्य्य और शरीर में रहने वाले प्राण **(रिशादसम्)** रोग और शत्रुओं के नाश करने, **(वरुणम्)** शरीर के बाहर और भीतर रहने वाला प्राण और अपानरूप वायु को **(च)** भी **(हुवे)** प्राप्त होऊँ अर्थात् बाहर और भीतर के पदार्थ जिस-जिस विद्या के लिये रचे गये है उन सबों को उस-उस के लिये उपयोग करूं॥७॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- अत्र लुप्तोपमालङ्कारः। यथा सूर्य्यवायुनिमित्तेन समुद्रादिभ्यो जलमुपरि गत्वा तद्वृष्ट्या सर्वस्य वृद्धिरक्षणे भवतः, एवं प्राणापानाभ्यां च शरीरस्य। अतः सर्वैर्मनुष्यैराभ्यां निमित्तीकृताभ्यां व्यवहारविद्यासिद्धेः सर्वोपकारः सदा निष्पादनीय इति॥७॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद– इस मन्त्र में लुप्त उपमा अलङ्कार है। जैसे समुद्र आदि जलस्थलों से सूर्य्य के आकर्षण से वायु द्वारा जल आकाश में जाकर वर्षा होने से सब की वृद्धि और रक्षा होती है, वैसे ही प्राण और अपान आदि ही से शरीर की रक्षा और वृद्धि होती है। इसलिये सब मनुष्यों के द्वारा भी प्राण और अपान आदि वायु के निमित्त से व्यवहार विद्या सब के उपकार के लिये सदा सिद्ध किया जाना चाहिये॥७॥

(ऋग्वेद ०१.०२.०७)

ऋषिः - मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रःदेवता - मित्रावरुणौछन्दः - गायत्रीस्वरः - षड्जः।

ऋ॒तेन॑ मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा।

क्रतुं॑ बृ॒हन्त॑माशाथे॥

स्वर सहित पद पाठ

ऋतेन॑। मि॒त्रा॒व॒रु॒णौ॒। ऋ॒ता॒ऽवृ॒धौ॒। ऋ॒त॒ऽस्पृ॒शा॒। क्रतु॑म्। बृ॒हन्त॑म्। आ॒शा॒थे॒ इति॑॥

विषय(भाषा)- किस हेतु से ये दोनों सामर्थ्यवाले हैं, यह विद्या इस मन्त्र में कही है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- ऋतेन (उत्पादितौ) ऋतावृधौ ऋतस्पृशौ मित्रावरुणौ बृहन्तम् क्रतुम् आशाथे॥८॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- (ऋतेन) सत्यस्वरूप ब्रह्म के नियम में बंधे हुए, **(उत्पादिता)** उत्पादित किए हुए, **(ऋतस्पृशौ)** ब्रह्म की प्राप्ति कराने में निमित्त तथा उचित समय पर जलवृष्टि के करनेवाले, **(मित्रावरुणौ)** पिछले मन्त्र में कहे गए मित्र और वरुण, **(बृहन्तम्)** और सबसे महान् **(क्रतुम्)** सब की संगति और जगद्रूप यज्ञ को **(आशाथे)** व्याप्त होते हैं॥८॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- ब्रह्मसहचर्य्ययैतौ ब्रह्मज्ञाननिमित्ते जलवृष्टिहेतू भूत्वा सर्वमग्न्यादिमूर्त्तामूर्त्तं जगद्व्याप्य वृद्धिक्षयकर्त्तारौ व्यवहारविद्यासाधकौ च भवत इति॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- परमेश्वर के आश्रय से उक्त मित्र और वरुण ब्रह्मज्ञान के बढ़ानेवाले, जल वर्षानेवाले, सब मूर्त्तिमान् वा अमूर्तिमान् जगत् को व्याप्त होकर उसकी वृद्धि विनाश और व्यवहारों की सिद्धि करने में हेतु होते हैं॥८॥

अनुवादक की टिप्पणी- ऋग्वेद के पूर्व मन्त्र संख्या (ऋग्वेद ०१.०२.०७) के अनुसार मित्र और वरुण इस प्रकार हैं- मित्रम्- सूर्य्य और शरीर में रहने वाले प्राण को गया है। वरुणम्-शरीर के बाहर और भीतर रहने वाला प्राण और अपानरूप वायु को को गया है।

(ऋग्वेद ०१.०२.०८)

ऋषिः - मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रःदेवता - मित्रावरुणौछन्दः – गायत्रीस्वरः- षड्जः।

क॒वी नो॑ मि॒त्रावरु॑णा तुवि॒जा॒ता उ॑रु॒क्षया॑।

दक्षं॑ दधाते अ॒पस॑म्॥

स्वर सहित पद पाठ

क॒वी इति॑। नः॒। मि॒त्रावरु॑णा। तु॒वि॒ऽजा॒तौ। उ॒रु॒ऽक्षया॑। दक्ष॑म्। द॒धा॒ते॒ इति॑। अ॒पस॑म्॥

विषय(भाषा)- वे हम लोगों के कौन-कौन पदार्थों के धारण करनेवाले हैं, इस बात का प्रकाश इस मन्त्र में किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः-इमौ तुविजाताऔ उरुक्षयौ कवी मित्रावरुणौ नः (अस्माकम्) दक्षम् अपसम् च दधाते धरतः॥९॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- (इमौ) ये दोनों **(तुविजातौ)** जो बहुत कारणों से उत्पन्न और बहुतों में प्रसिद्ध हैं; **(उरुक्षयौ)** संसार के बहुत से पदार्थों में रहनेवाले **(कवी)** और दर्शनादि व्यवहार के हेतु **(मित्रावरुणौ)** पिछले मन्त्र में कहे गए मित्र और वरुण हैं। ये **(नः)** हमारे **(दक्षम्)** बल तथा सुख वा दुःखयुक्त **(अपसम्)** कर्मों को **(च)** भी **(दधाते)** धारण करते हैं॥९॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- ब्रह्माण्डस्थाभ्यां बलकर्मनिमित्ताभ्यामेताभ्यां सर्वेषां पदार्थानां सर्वचेष्टाविद्ययोः पुष्टिधारणे भवत इति॥९॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- जो ब्रह्माण्ड में रहनेवाले बल और कर्म के निमित्त पूर्वोक्त मित्र और वरुण हैं, उनसे क्रिया और विद्याओं की पुष्टि तथा धारणा होती है॥९॥

अनुवादक की टिप्पणी- मित्र और वरुण को ऋग्वेद के मन्त्र संख्या- (ऋग्वेद ०१.०२.०८) में स्पष्ट क्या गया है।

(ऋग्वेद ०१.०२.०९)

[०३] तृतीयं सूक्तम्

ऋषिः - मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रःदेवता – अश्विनौ छन्दः- गायत्री स्वरः –षड्जः।

अश्वि॑ना॒ यज्व॑री॒रिषो॒ द्रव॑त्पाणी॒ शुभ॑स्पती।

पुरु॑भुजा चन॒स्यत॑म्॥

स्वर सहित पद पाठ

अश्वि॑ना। यज्व॑रीः। इषः॑। द्रव॑त्पाणी॒ इति॒ द्रव॑त्ऽपाणी। शुभः॑। प॒ती॒ इति॑। पुरु॑ऽभुजा। च॒न॒स्यत॑म्॥

विषय(भाषा)- अब तृतीय सूक्त का प्रारम्भ करते हैं। इसके आदि के मन्त्र में अग्नि और जल को अश्वि नाम से लिया है-

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- हे विद्वांसः ! युष्माभिः द्रवत्पाणी शुभस्पती पुरुभुजौ अवश्विनौ यज्वरी इषः च चनस्यतम्॥१॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(विद्वांसः)** विद्या के चाहनेवाले मनुष्यो ! **(युष्माभिः)** तुम लोगों के द्वारा (द्रवत्पाणी) शीघ्र वेग के निमित्त पदार्थविद्या के व्यवहार की सिद्धि करने में उत्तम हेतु **(शुभस्पती)** शुभ गुणों के प्रकाश को पालने और **(पुरुभुजा)** अनेक खाने-पीने के पदार्थों के देने में उत्तम हेतु, **(अश्विना)** जल और अग्नि तथा **(यज्वरीः)** शिल्पविद्या का सम्बन्ध करानेवाली, **(इषः)** अपनी चाही हुई अन्न आदि पदार्थों की देनेवाली कारीगरी की क्रियाओं को **(च)** भी **(चनस्यतम्)** अन्न के समान अति प्रीति से सेवन किया करो॥१॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- अत्रेश्वरः शिल्पविद्यासाधनमुपदिशति। यतो मनुष्याः कलायन्त्ररचनेन विमानादियानानि सम्यक् साधयित्वा जगति स्वोपकारपरोपकारनिष्पादनेन सर्वाणि सुखानि प्राप्नुयुः॥१॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- इस मन्त्र में ईश्वर ने शिल्पविद्या के साधनों का का उपदेश किया है। जिससे मनुष्य लोग कलायुक्त यन्त्रों को बनाकर विमान आदि यान अच्छी तरह से बनाकर संसार में अपने तथा अन्य लोगों के उपकार करके सब सुख प्राप्त करायें॥१॥

(ऋग्वेद ०१.०३.०१)

ऋषि: - मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रःदेवता - अश्विनौछन्दः - निचृद्गायत्रीस्वरः – षड्जः।

अश्विना पुरुदंससा नरा शवीरया धिया।

धिष्ण्या वनतं गिरः॥

स्वर सहित पद पाठ

अश्विना। पुरुऽदंससा। नरा। शवीरया। धिया। धिष्ण्या। वनतम्। गिरः॥

विषय(भाषा)- फिर वे अश्वी किस प्रकार के हैं, सो उपदेश इस मन्त्र में किया है-

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- हे मनुष्या ! यूयम् यौ पुरुदंससौ नरौ धिष्ण्या अवश्विनौ शवीरया धिया गिरः वनतम् वाणीसेविनौ स्तः, तौ बुद्ध्या सेवयत॥२॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(मनुष्या)** मनुष्यों ! **(यूयम्)** तुम लोग, **(यौ)** जिनसे **(पुरुदंससा)** शिल्पविद्या के लिये अनेक कर्म सिद्ध होते हैं। **(नरौ)** उस विद्या के फल को देनेवाले और **(धिष्ण्या)** जो कि सवारियों में वेगादिकों की तीव्रता के उत्पन्न करने में प्रबल **(अश्विनौ)** अग्नि और जल से **(शवीरया)** वेग देनेवाली **(धिया)** क्रिया या जानकारी से **(गिरः)** वाणियों को, **(वनतम्)** जो अच्छी प्रकार से सेवन करने वाले हैं, **(तौ)** उनका **(बुद्ध्या)** बुद्धि से **(सेवयत)** सेवन करो॥२॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- अत्राप्यग्निजलयोर्गुणानां प्रत्यक्षकरणाय मध्यमपुरुषप्रयोगत्वात् सर्वैः शिल्पिभिस्तौ तीव्रवेगवत्या मेधया पुरुषार्थेन च शिल्पविद्यासिद्धये सम्यक् सेवनीयौ स्तः। ये शिल्पविद्यासिद्धिं चिकीर्षन्ति तैस्तद्विद्या हस्तक्रियाभ्यां सम्यक् प्रसिद्धीकृत्योक्ताभ्यामश्विभ्यामुपयोगः कर्त्तव्य इति।

महर्षिकृतःटिप्पणी- सायणाचार्य्यादिभिर्मध्यमपुरुषस्य निरुक्तोक्तं विशिष्टनियमाभिप्रायमविदित्वाऽस्य मन्त्रस्यार्थोऽन्यथा वर्णितः। तथैव यूरोपवासिभिर्विलसनाख्यादिभिश्चेति॥२॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- यहाँ भी अग्नि और जल के गुणों को प्रत्यक्ष दिखाने के लिये मध्यम पुरुष का प्रयोग है। इससे सब कारीगरों को चाहिये कि तीव्र वेग देनेवाली कारीगरी और अपने पुरुषार्थ से शिल्पविद्या की सिद्धि के लिये [उक्त जल और अग्नि का] का प्रयोग अच्छी प्रकार से करें। जो शिल्पविद्या को सिद्ध करने की इच्छा करते हैं, उनको वह विद्या हाथों की क्रिया से अच्छी तरह से प्रसिद्ध कर के उन उक्त [अश्विभ्याम्] अग्नि और जल का उपयोग करना चाहिए। ॥२॥

महर्षि द्वारा की गई टिप्पणी-सायणाचार्य्य आदि तथा विलसन आदि साहबों ने मध्यम पुरुष के विषय में निरुक्तकार के कहे हुए विशेष अभिप्राय को न जान कर इस मन्त्र के अर्थ का वर्णन अन्यथा किया है।

(ऋग्वेद ०१.०३.०२)

ऋषिः - मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रःदेवता - अश्विनौछन्दः - गायत्रीस्वरः - षड्जः।

दस्रा॑ युवाक॑वः सुता नास॑त्या वृक्तब॑र्हिषः।

आ या॑तं रुद्रवर्तनी॥

स्वर सहित पद पाठ

दस्रा॑। युवाक॑वः। सुताः। नास॑त्या। वृक्तऽब॑र्हिषः। आ। यातम्। रुद्रवर्तनी इति॑ रुद्रऽवर्तनी॥

विषय(भाषा)- फिर भी वे अश्वी किस प्रकार के हैं, सो इस मन्त्र में उपदेश किया है-

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- हे सुता युवाकवः वृक्तबर्हिषः विद्वांसः शिल्पविद्याविदः भवन्तः यौ रुद्रवर्त्तनी दस्रौ नासत्यौ पूर्वोक्तौ अवश्विनौ आयातम् समन्तात् यानानि गमयतः यदा यूयम् साधयिष्यथ तदा उत्तमानि सुखानि प्राप्स्यथ॥३॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(सुताः)** एक दूसरी से मिली वा पृथक् क्रियाओं को सिद्ध करने [और] **(वृक्तबर्हिषः)** शिल्पविद्या के फल को प्रभावी करनेवाले, **(शिल्पविद्याविदः)** शिल्पविद्या को जानने **वाले (विद्वांसः)** विद्वानों! **(भवन्तः)** आप, **(यौ)** जिनका **(रुद्रवर्त्तनी)** प्राणमार्ग है, [उन] (दस्रा) दुःखों के नाश करनेवाले हो। **(पूर्वोक्तौ)** पहले कहे गए **(अश्विनौ)** अग्नि और जल को **(आसमन्तात्)** अच्छी प्रकार से **(यातम्)** प्राप्त कराते **हो (यानानि)** और यानों को **(गमयतः)** प्राप्त कराते हो। **(यदा)** जब **(यूयम्)** तुम सब **(साधयिष्यथ)** क्रियाओं को सिद्ध करते हो, **(तदा)** तब **(उत्तमानि)** उत्तम **(सुखानि)** सुखों को **(प्राप्स्यथ)** प्राप्त कराते हो॥३॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- परमेश्वरो मनुष्यानुपदिशति-युष्माभिः सर्वसुखशिल्पविद्यासिद्धये दुःखविनाशाय च शिल्पविद्यायामग्नि- जलयोर्यथावदुपयोगः कर्त्तव्य इति॥३॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- परमेश्वर मनुष्यों को उपदेश करता है- "तुम सब के द्वारा समस्त सुखों, शिल्पविद्या की सिद्धि के लिये और दुःखों के विनाश के लिये शिल्पविद्या में अग्नि और जल का ठीक-ठीक उपयोग करना चाहिये"॥३॥

(ऋग्वेद ०१.०३.०३)

ऋषिः- मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रःदेवता- इन्द्रःछन्दः- पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्रीस्वरः -षड्जः।

इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः।

अण्वीभिस्तना पूतासः॥

स्वर सहित पद पाठ

इन्द्र। आ। याहि। चित्रभानो इति चित्रऽभानो। सुताः। इमे। त्वाऽयवः। अण्वीभिः। तना। पूतासः॥

विषय(भाषा)- परमेश्वर ने इस मन्त्र में इन्द्र शब्द से अपना और सूर्य्य का उपदेश किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः (प्रथमः)- हे चित्रभानो इन्द्र (परमेश्वर) ! त्वम् अस्मान् आयाहि कृपया प्राप्नुहि, येन भवता इमे अण्वीभिः तनाः पुष्कल द्रव्यदाः पूतासः त्वायवः सुताः उत्पादिताः पदार्था वर्त्तन्ते तैः गृहीता उपकारान् अस्मान् सम्पादय॥४॥

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः (द्वितीयः)- यः अयम् इन्द्रः स्वगुणैः सर्वान् पदार्थान् आयाति प्राप्नोति तेन इमे अण्वीभिः किरण कारणा अवयवैः तनाः विस्तृत प्राप्ति हेतवः त्वावयः तत् निमित्त प्राप्ता आयुषः पूतासः सुताः संसारस्थाः पदार्थाः प्रकाशयुक्ताः क्रियन्ते तैः इति पूर्ववत्॥४॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.) (प्रथमः)- हे **(चित्रभानो)** जिसका सूर्य एक अद्भुत प्रकार से चमकता है, **(इन्द्र)** ऐसे परमेश्वर या सूर्य ! **(त्वम्)** आप, **(अस्मान्)** हमें **(कृपया प्राप्नुहि)** कृपया अच्छी तरह से प्राप्त होओ। **(येन)** जिससे **(भवता)** आपके द्वारा **(इमे)** ये **(अण्वीभिः)** प्रकाश की किरणों से **(तना)** प्रचुर धन देनेवाले, **(पूतासः)** पवित्र और पवित्र किये हुए **(त्वायवः)** आपके उन **(सुताः)** उत्पन्न किये हुए मूर्तिमान् पदार्थ **(वर्त्तन्ते)** हैं, **(तैः)** उनके द्वारा **(गृहीता)** ग्रहण किए हुए **(उपकारान्)** उपकार **(अस्मान्)** हमारे लिए **(सम्पादय)** प्राप्त कराओ॥४॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)(द्वितीयः)- (यः) जो, **(अयम्)** यह **(इन्द्र)** सूर्य, **(सर्वान्)** समस्त **(पदार्थान्)** पदार्थों को **(आयाति)** प्राप्त कराता है। **(तेन)** उसके द्वारा **(इमे)** वर्तमान **(अण्वीभिः)** प्रकाश की किरणों से **(तना)** प्रचुर धन प्रदान करनेवाले, **(प्राप्ति)** प्राप्ति के **(हेतवः)** कारण **(त्वायवः)** आपके उन **(आयुषः)** शस्त्र और **(पूतासः)** शुद्ध और पवित्र किये हुए, **(सुताः)** उत्पन्न हुए मूर्तिमान् पदार्थों को **(प्रकाशयुक्ताः)** प्रकाश से युक्त **(क्रियन्ते)** करते हैं। **(तैः)** उनके द्वारा **(गृहीता)** ग्रहण किए हुए **(उपकारान्)** उपकार **(अस्मान्)** हमारे लिए **(सम्पादय)** प्राप्त कराओ॥४॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- अत्र श्लेषालङ्कारेणेश्वरस्य सूर्य्यस्य वा यानि कर्माणि प्रकाश्यन्ते तानि परमार्थव्यवहारसिद्धये मनुष्यैः समुपयोक्तव्यानि सन्तीति॥४॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- यहाँ इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार से ईश्वर और सूर्य के कर्मों को प्रकाशित किया गया है। सब मनुष्यों को चाहिये कि उनके द्वारा परमार्थ और व्यवहार की सिद्धि के लिये अच्छी प्रकार से उपयोग में लें॥४॥

(ऋग्वेद ०१.०३.०४)

ऋषिः - मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रःदेवता - इन्द्रःछन्दः - गायत्रीस्वरः - षड्जः।

इन्द्रा या॑हि धि॒येषि॒तो विप्र॑जूतः सु॒ताव॑तः।

उप॒ ब्रह्मा॑णि वा॒घतः॑॥

स्वर सहित पद पाठ

इन्द्र॑। आ। या॒हि॒। धि॒या। इ॒षि॒तः। विप्र॑ऽजूतः। सु॒तऽव॑तः। उप॑।ब्रह्मा॑णि। वा॒घतः॑॥

विषय(भाषा)- ईश्वर ने इस मन्त्र में अपना प्रकाश किया है-

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः-हे इन्द्र ! धिया इषितः विप्रजूतः त्वम् सुतावतः ब्रह्माणि वाघतः विदुष उप आयाहि॥५॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(इन्द्र)** परमेश्वर ! **(धिया)** प्रकृष्ट ज्ञानयुक्त बुद्धि वा उत्तम कर्म से **(इषितः)** प्राप्त होने योग्य **(विप्रजूतः)** बुद्धिमान् विद्वान् लोगों के जानने योग्य **(त्वम्)** तुम **(सुतावतः)** पदार्थविद्या के जाननेवाले **(वाघतः)** जो यज्ञविद्या के अनुष्ठान से सुख उत्पन्न करनेवाले हैं, **(ब्रह्माणि)** ब्राह्मण अर्थात् जिन्होंने वेदों का अर्थ जाना है को **(विदुषः)** विद्वान् लोग **(उप)** समीप **(आयाहि)** प्राप्त हो जाओ ॥५॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- मनुष्यैर्मूलकारणस्येश्वरस्य संस्कृतया बुद्ध्या विज्ञानतः साक्षात्प्राप्तिः कार्य्या। नैवं विनाऽयं केनचिन्मनुष्येण प्राप्तुं शक्य इति॥५॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- सब मनुष्यों को उचित है कि जो सब कार्यजगत् की उत्पत्ति करने में आदिकारण परमेश्वर है, उसका शुद्ध बुद्धि विज्ञान से साक्षात् करना चाहिये॥५॥

(ऋग्वेद ०१.०३.०५)

ऋषिः - मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रःदेवता - इन्द्रःछन्दः - गायत्रीस्वरः - षड्जः।

इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः।

सुते दधिष्व नश्चनः॥

स्वर सहित पद पाठ

इन्द्र। आ। याहि। तूतुजानः। उप। ब्रह्माणि। हरिऽवः। सुते। दधिष्व। नः। चनः॥

विषय(भाषा)- ईश्वर ने इस मन्त्र में भौतिक वायु का उपदेश किया है-

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- यो हरिवः वेगवान् तूतुजान इन्द्रः वायुः सुते ब्रह्माणि उप आयाहि समन्तात् प्राप्नोति स एव चनः दधिष्व दधते॥६॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- **(यो)** जो **(हरिवः)** जो वेग आदि गुणयुक्त **(तूतुजानः)** शीघ्र चलने वाला **(इन्द्रः)** भौतिक वायु है, यह **(सुते)** प्रत्यक्ष उत्पन्न वाणी के व्यवहार में **(ब्रह्माणि)** वेद के स्तोत्रों को, **(उप)** निकटता से **(आयाहि)** अच्छी प्रकार प्राप्त करता है। **(स)** वह **(एव)** ही **(चनः)** अन्नादि व्यवहार को **(दधिष्व)** धारण करता है॥६॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- मनुष्यैरयं वायुः शरीरस्थः प्राणः सर्वचेष्टानिमित्तोऽन्नपानादानयाचनविसर्जनधातुविभागाभिसरणहेतुर्भूत्वा पुष्टिवृद्धिक्षयकरोऽस्तीति बोध्यम्॥६॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- मनुष्यों के द्वारा इस वायु शरीरस्थ प्राण को सब क्रिया के निमित्त होकर अन्न का खाना, पीना, देना, ग्रहण करना और त्यागना, शरीर की धातुओं आदि की क्रियाओं से कर्म कराने तथा शरीर में रुधिर आदि धातुओं का वितरण करके जगह-जगह में पहुँचानेवाले तेरी पुष्टि, वृद्धि और नाश का हेतु जानना चाहिए॥६॥

(ऋग्वेद ०१.०३.०६)

ऋषिः - मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रःदेवता - विश्वेदेवाःछन्दः - गायत्रीस्वरः - षड्जः।

ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास आगत।

दाश्वांसो दाशुषः सुतम्॥

स्वर सहित पद पाठ

ओमासः। चर्षणिऽधृतः। विश्वे। देवासः। आ। गत। दाश्वांसः। दाशुषः। सुतम्॥

विषय(भाषा)- ईश्वर ने इस मन्त्र में विद्वानों के लक्षण और आचरणों का प्रकाश किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- हे ओमासः चर्षणीधृतः दाश्वांसः विश्वेदेवासः सर्वे विद्वांसः दाशुषः सुतम् आ गत समन्तात् आगच्छत॥७॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(ओमासः)** रक्षक, ज्ञानी, विद्या के इच्छुक, उपदेशों में प्रीति रखनेवाले, विशेष ज्ञान से तृप्त होनेवाले, जैसी वस्तु है, उसे वैसा जाननेवाले, शुभ गुणों में प्रवेश करनेवाले, समस्त विद्याओं का श्रवण करनेवाले, परमेश्वर की प्राप्ति और व्यवहार में पुरुषार्थी, शुभ विद्या के गुणों के प्रार्थी और उसके अनुसार क्रिया करनेवाले, सब का उपकार करने के इच्छुक, विशेष प्रकार के ज्ञान में प्रशंसनीय, आप्त, सब शुभ गुणों के लक्षणवाले, दुष्ट गुणों से युक्त लोगों के हिंसक, शुभ गुणों को देनेवाले, सौभाग्यवाले और ज्ञानवृद्ध, **(चर्षणीधृतः)** सत्य उपदेश से मनुष्यों के सुख को धारण करने वाले, **(दाश्वांसः)** अपने शुभ गुणों से सबको निर्भय करनेवाले, **(सर्वे)** सब **(विद्वांसः)** विद्वाम् लोग हैं, **(दाशुषः)** [ये] देने वाले, **(सुतम्)** सोम आदि पदार्थ और विज्ञान का प्रकाश करने के लिए अभीष्ट वस्तुओं को **(आ गत)** अच्छी तरह से जानते रहें॥७॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- ईश्वरो विदुषः प्रत्याज्ञां ददाति-यूयमेकत्र विद्यालये चेतस्ततो वा भ्रमणं कुर्वन्तः सन्तोऽज्ञानिनो जनान् विदुषः सम्पादयत। यतः सर्वे मनुष्या विद्याधर्मसुशिक्षासत्क्रियावन्तो भूत्वा सदैव सुखिनः स्युरिति॥७॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- ईश्वर विद्वानों को आज्ञा देता है–"तुम लोग एक जगह पाठशाला में अथवा इधर-उधर देशदेशान्तरों में भ्रमण करते हुए, अज्ञानी पुरुषों क उद्धार करो। क्योंकि सब मनुष्य विद्या, धर्म, सुशिक्षा और अच्छे कर्म वाले होकर सदा सुखी होवें"॥७॥

(ऋग्वेद ०१.०३.०७)

ऋषिः - मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रः देवता - विश्वेदेवाः छन्दः - गायत्री स्वरः - षड्जः।

विश्वे॑ दे॒वासो॑ अ॒प्तुरः॑ सु॒तमाग॑न्त॒ तूर्ण॑यः।

उ॒स्रा इ॑व॒ स्वस॑राणि॥

स्वर सहित पद पाठ

विश्वे॑। दे॒वासः॑। अ॒प्ऽतुरः॑। सु॒तम्। आ। ग॒न्त॒। तूर्ण॑यः। उ॒स्राःऽइ॑व। स्वस॑राणि॥

विषय(भाषा)- ईश्वर ने फिर भी उन्हीं विद्वानों का प्रकाश इस मन्त्र में किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- हे अप्तुरः तूर्णयः विश्वे देवासः यूयम् स्वसराणि प्रकाशयितुम् उस्राः किरणा इव सुतम् कर्मोपासना ज्ञानरूपम् व्यवहारम् प्रकाशयितुम् आगन्त नित्यम् आगच्छत समन्तात् प्राप्नुत॥८॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे (अप्तुरः) मनुष्यों को शरीर और विद्या आदि का बल देने और **(तूर्णयः)** उस विद्या आदि के प्रकाश करने में शीघ्रता करनेवाले, **(विश्वे)** समस्त **(देवास)** विद्वान् लोगों! **(यूयम्)** तुम सब **(स्वसराणि)** दिनों को प्रकाशित करने के लिये **(उस्रा इव)** सूर्य की किरणों के समान, **(सुतम्)** अन्तःकरण के अन्तर्गत ज्ञान का प्रकाश करने के लिये, **(कर्मोपासना)** कर्म और उपासना को **(ज्ञानरूपम्)** ज्ञानरूप **(व्यवहारम्)** व्यवहार में, **(प्रकाशयितुम्)** प्रकाशित करने के लिये **(आगन्त)** आओ॥८॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- अत्रोपमालङ्कारः। ईश्वरेणैतन्मन्त्रेणेयमाज्ञा दत्ता-हे सर्वे विद्वांसो नैव युष्माभिः कदाचिदपि विद्यादिशुभगुणप्रकाशकरणे विलम्बालस्ये कर्त्तव्ये। यथा दिवसे सर्वे मूर्तिमन्तः पदार्थाः प्रकाशिता भवन्ति तथैव युष्माभिरपि सर्वे विद्याविषयाः सदैव प्रकाशिता कार्य्या इति॥८॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- इस मन्त्र में उपमा अलङ्गकार है। ईश्वर ने इस मन्त्र में आज्ञा दी है-हे समस्त विद्वानों आपके द्वारा कभी भी विद्या आदि शुभगुणों के प्रकाश करने में विलम्ब या आलस्य नहीं करना चाहिए। जैसे दिन में सब मूर्तिमान् पदार्थ प्रकाशित होते हैं, वैसे ही तुम लोगों के द्वारा भी समस्त विद्याओं के विषयों का सदैव प्रकाश करना चाहिए।

(ऋग्वेद ०१.०३.०८)

ऋषिः - मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रःदेवता - विश्वेदेवाःछन्दः - गायत्रीस्वरः -षड्जः।

विश्वे॑ दे॒वासो॑ अ॒स्रिध॒ एहि॑मायासो अ॒द्रुहः॑।

मेधं॑ जुषन्त॒ वह्न॑यः॥

स्वर सहित पद पाठ

विश्वे॑। दे॒वासः॑। अ॒स्रिधः॑। एहि॑ऽमायासः। अ॒द्रुहः॑। मेध॑म्। जु॒ष॒न्त॒। वह्न॑यः॥

विषय(भाषा)- विद्वान् लोग कैसे स्वभाववाले होकर कैसे कर्मों को सेवें, इस विषय को ईश्वर ने इस मन्त्र में दिखाया है-

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- हे एहिमायासः अस्रिधः अद्रुहः वह्नयः विश्वे देवासः भवन्तः मेधम् ज्ञानक्रियाभ्याम् सेवनीयम् यज्ञम् जुषन्त सम् प्रीत्या सेवध्वम्॥९॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(एहिमायासः)** क्रिया में हर ओर से बुद्धि रखनेवाले, **(अस्रिधः)** अक्षय ज्ञान से परिपूर्ण, **(अद्रुहः)** द्रोहरहित, **(वह्नयः)** संसार को सुख पहुँचानेवाले, **(विश्वे)** समस्त **(देवासः)** वेद के विद्वान् लोगों ! **(भवन्तः)** आप **(मेधम्)** समस्त विद्वानों के द्वारा ज्ञान और क्रिया से सिद्ध करने योग्य यज्ञ अथवा शुभ गुणों और कर्मों के द्वारा संगतिकरण का **(जुषन्त)** भली भांति प्रीतिपूर्वक सेवन किया करो॥९॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)-ईश्वर आज्ञापयति-भो विद्वांसः ! परक्षयद्रोहरहिता विशालविद्यया क्रियावन्तो भूत्वा सर्वेभ्यो मनुष्येभ्यो विद्यासुखयोः सदा दातारो भवन्त्विति॥९॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- ईश्वर आज्ञा देता है, हे विद्वान् लोगो ! तुम दूसरे के विनाश और द्रोह से रहित तथा अच्छी विद्या से क्रियावाले होकर सब मनुष्यों को सदा विद्या से सुख देते रहो॥९॥

(ऋग्वेद ०१.०३.०९)

ऋषिः - मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रःदेवता - सरस्वतीछन्दः –गायत्रीस्वरः- षड्जः।

पा॒व॒का नः॒ सर॑स्वती॒ वाजे॑भिर्वा॒जिनी॑वती।

य॒ज्ञं व॑ष्टु धि॒याव॑सुः॥

स्वर सहित पद पाठ

पा॒व॒का। नः॒। सर॑स्वती। वाजे॑भिः। वा॒जिनी॑ऽवती। य॒ज्ञम्। व॒ष्टु। धि॒याऽव॑सुः॥

विषय(भाषा)- विद्वानों को किस प्रकार की वाणी की इच्छा करनी चाहिये, इस विषय को इस मन्त्र में ईश्वर ने कहा है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- या वाजेभिः वाजिनीवती धियावसुः पावका सरस्वती वाग् अस्ति सा अस्माकम् शिल्पविद्या महिमानम् कर्म च यज्ञम् वष्टु तत् प्रकाशयित्री भवतु॥१०॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- (या) जो **(वाजेभिः)** सब विद्या की प्राप्ति के निमित्त अन्न आदि पदार्थ हैं, उनके साथ जो, **(वाजिनीवती)** सब विद्या से सिद्ध की हुई क्रियाओं से युक्त **(धियावसुः)** शुद्ध कर्म के साथ सहवास देने और **(पावका)** पवित्र करने वाले व्यवहारों को चेताने वाली, (सरस्वती) जिसमें प्रशंसा योग्य ज्ञान आदि गुण हों, ऐसी उत्तम सब विद्याओं

को देनेवाली वाणी **(अस्ति)** है। **(सा)** वह **(अस्माकम्)** हमारी, **(शिल्पविद्या)** शिल्पविद्या की **(महिमानम्)** महिमा, **(कर्म)** कर्म **(च)** और **(यज्ञम्)** कर्मरूप यज्ञ को **(वष्टु)** प्रकाशित करने वाली हो॥१०॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- ईश्वरोऽभिवदति-सर्वैर्मनुष्यैः सत्याभ्यां विद्याभाषणाभ्यां युक्ता क्रियाकुशला सर्वोपकारिणी स्वकीया वाणी सदैव सम्भावनीयेति॥१०॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- ईश्वर घोषित करता है-समस्त मनुष्यों को सत्य, विद्या और वचनों से युक्त क्रिया से कुशल सबका उपकार करनेवाली अपनी वाणी का सदैव आदर करना चाहिए॥१०॥

(ऋग्वेद ०१.०३.१०)

ऋषिः - मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रःदेवता - सरस्वतीछन्दः - पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्रीस्वरः - षड्जः।

चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्।

यज्ञं दधे सरस्वती॥

स्वर सहित पद पाठ

चोदयित्री। सूनृतानाम्। चेतन्ती। सुऽमतीनाम्। यज्ञम्। दधे। सरस्वती॥

विषय(भाषा)- ईश्वर ने वह वाणी किस प्रकार की है, इस बात का उपदेश इस मन्त्र में किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः:-या सूनृतानाम् सुमतीनाम् विदुषाम् चेतन्ती चोदयित्री सरस्वती अस्ति, सा एव वेदविद्या संस्कृता वाक् यज्ञम् दधे दधाति॥११॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- (या) जो **(सूनृतानाम्)** मिथ्या वचन को नाश करनेवाली, सत्य वचन और सत्य कर्म को सदा सेवन करनेवाली, **(सुमतीनाम्)** अत्यन्त उत्तम बुद्धि और विद्यावाले विद्वानों की **(चेतन्ती)** समझने तथा **(चोदयित्री)** शुभगुणों के ग्रहण करने से प्रेरित **करनेवाली (सरस्वती)** वाणी **(अस्ति)** है। **(स)** वह **(एव)** ही **(वेदविद्या)** वेदविद्या है और **(संस्कृता)** अत्यन्त परिमार्जित **(वाक्)** वाणी है, **(यज्ञम्)** जो पूर्व में कहे गए गुणों को **(दधे)** धारण करने वाली होती है।

भावार्थः(महर्षिकृतः)- या किलाप्तानां सत्यलक्षणा पूर्णविद्यायुक्ता छलादिदोषरहिता यथार्थवाणी वर्त्तते, सा मनुष्याणां

सत्यज्ञानाय भवितुमर्हति नेतरेषामिति॥११॥

अनुवादक की टिप्पणी- महर्षि दयानन्द सरस्वती के अनुसार आप्त की परिभाषा-जो छलादि दोषरहित, धर्मात्मा, विद्वान् सत्योपदेष्टा, सब पर कृपादृष्टि से वर्त्तमान होकर अविद्यान्धकार का नाश करके अज्ञानी लोगों के आत्माओं में विद्यारूप सूर्य का प्रकाश सदा करे, उसको 'आप्त' कहते हैं।

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद -जो निश्चित रूप से आप्तों के सत्य लक्षण हैं, जो पूर्ण विद्यायुक्त और छल आदि दोषों से रहित यथार्थ वाणी है, वह मनुष्यों के सत्य ज्ञान के लिए योग्य होती है, अन्यों के लिए नहीं॥११॥

(ऋग्वेद ०१.०३.११)

ऋषि: - मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रःदेवता - सरस्वतीछन्दः –गायत्रीस्वरः- षड्जः।

म॒हो अर्ण॑ः सर॑स्वती॒ प्र चे॑तयति के॒तुना॑।

धियो॒ विश्वा॒ वि रा॑जति॥

स्वर सहित पद पाठ

म॒हः। अर्णः॑। सर॑स्वती। प्र। चे॒त॒य॒ति॒। के॒तुना॑। धियः॑। विश्वाः॑। वि। रा॒ज॒ति॒॥

विषय(भाषा)- ईश्वर ने फिर भी वह वाणी कैसी है, इस बात का प्रकाश इस मन्त्र में किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः:- या सरस्वती केतुना महत् अर्णः खलु जलार्णवम् इव शब्दसमुद्रम् प्रकृष्टतया सम्यग् ज्ञापयति सा प्राणिनांम् विश्वा धियः विराजति विविधतया उत्तमा बुद्धीः प्रकाशयति॥१२॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- (या) जो **(सरस्वती)** वाणी **(केतुना)** शुभ कर्म अथवा श्रेष्ठ बुद्धि से **(महत्)** अगाध **(अर्णः)** शब्दरूपी समुद्र को **(प्रचेतयति)** जनाने वाली है और **(विश्वाः)** सब मनुष्यों की बुद्धियों को **(विराजति)** विशेष करके प्रकाशित करती है। **(खलु)** वह निश्चय से **(प्रकृष्टतया)** अच्छी तरह से **(ज्ञापयति)** व्यक्त करती है। **(सा)** वह वाणी **(प्राणिनांम्)** प्राणियों की **(विश्वाः)** सब **(धियः)** मनुष्यों की धारणावती बुद्धि को **(वि)** विशेष रूप से **(राजति)** प्रकाशित करती है॥१२॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- अत्र वाचकोपमेयलुप्तोपमालङ्कारः। यथा वायुना चालितः सूर्य्येण प्रकाशितो जलरत्नोर्मिसहितो महान् समुद्रोऽनेकव्यवहाररत्नप्रदो वर्त्तते तथैवास्याकाशस्थस्य वेदस्थस्य च महतः शब्दसमुद्रस्य

प्रकाशहेतुर्वेदवाणी विदुषामुपदेशश्चेतरेषां मनुष्याणां यथार्थतया मेधाविज्ञानप्रदो भवतीति॥१२॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- इस मन्त्र में वाचकोपमेयलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे वायु से चालित, सूर्य से प्रकाशित और जल की रत्नमय लहरों सहित से समुद्र अनेक व्यवहारवाले रत्नों का प्रदान कर्ता होता है, वैसे ही इस आकाश स्थित और वेद स्थित बहुत महान् शब्दरूपी सागर को प्रकाशित करानेवाली वेदवाणी का उपदेश है, जो दूसरे मनुष्यों को उचित रूप से मेधा और विशेष ज्ञान को प्रदान करनेवाला होता है॥१२॥

सूक्तस्य भावार्थः- सूक्तद्वयसम्बन्धिनोऽर्थस्योपदेशानन्तरमनेन तृतीयसूक्तेन क्रियाहेतुविषयस्याश्विशब्दार्थमुक्त्वा तत्सिद्धिकर्तॄणां विदुषां स्वरूपलक्षणमुक्त्वा विद्वद्भवनहेतुना सरस्वतीशब्देन सर्वविद्याप्राप्तिनिमित्तार्था वाक् प्रकाशितेति वेदितव्यम्। द्वितीयसूक्तोक्तानां वाय्विन्द्रादीनामर्थानां सम्बन्धे तृतीयसूक्तप्रतिपादितानामश्विविद्वत्सरस्वत्य-र्थानामन्वयाद् द्वितीयसूक्तोक्तार्थेन सहास्य तृतीयसूक्तोक्तार्थस्य सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्। अस्य सूक्तस्यार्थः सायणाचार्य्यादिभिरन्यथैव वर्णितः। तत्र प्रथमं तस्यायं भ्रमः-'द्विविधा हि सरस्वती विग्रहवद्देवता नदीरूपा च। तत्र पूर्वाभ्यामृग्भ्यां विग्रहवती प्रतिपादिता। अनया तु नदीरूपा प्रतिपाद्यते। ' इत्यनेन कपोलकल्पनयाऽयमर्थो लिखित इति बोध्यम्। एवमेव व्यर्था कल्पनाऽध्यापक- विलसनाख्यादीनामप्यस्ति। ये विद्यामप्राप्य व्याख्यातारो भवन्ति तेषामन्धवत्प्रवृत्तिर्भवतीत्यत्र किमाश्चर्य्यम्॥

सूक्त का भावार्थ- दो सूक्तों की विद्या का उपदेश करने के बाद तृतीय सूक्त से क्रियाओं का हेतु "अश्विशब्द" का अर्थ कह करके उसके सिद्ध करनेवाले विद्वानों का स्वरूप और लक्षण कह करके विद्वान् होने के हेतु "सरस्वती" शब्द से सब विद्या की प्राप्ति के निमित्त अर्थ को लिखा गया है, ऐसा जान लेना चाहिये। दूसरे सूक्त के अर्थ के साथ तीसरे सूक्त के अर्थ की सङ्गति है, ऐसा जान लेना चाहिये। इस सूक्त का अर्थ सायणाचार्य्य आदि नवीन पण्डितों ने अशुद्ध प्रकार से वर्णन किया है। उनके व्याख्यानों में पहले सायणाचार्य्य का भ्रम दिखलाते हैं। उन्होंने "सरस्वती" शब्द के दो अर्थ माने हैं। एक अर्थ से देहवाली देवतारूप और दूसरे से नदीरूप सरस्वती मानी है। तथा उन्होंने यह भी कहा है कि इस सूक्त में पहले दो मन्त्र से शरीरवाली देवरूप सरस्वती का प्रतिपादन किया है, और अब इस मन्त्र से नदीरूप सरस्वती का वर्णन करते हैं। जैसे यह अर्थ उन्होंने अपनी कपोलकल्पना से विपरीत लिखा है, इसी प्रकार अध्यापक विलसन की व्यर्थ कल्पना जाननी चाहिये। क्योंकि जो मनुष्य विद्या के बिना किसी ग्रन्थ की व्याख्या करने को प्रवृत्त होते हैं, उनकी प्रवृत्ति अन्धों के समान होती है॥

(ऋग्वेद ०१.०३.१२)

[०४] चतुर्थं सूक्तम्

ऋषिः - मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रःदेवता - इन्द्रःछन्दः – गायत्रीस्वरः- षड्जः।

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे।

जुहूमसि द्यविद्यवि॥

स्वर सहित पद पाठ

सुरूपऽकृत्नुम्। ऊतये। सुदुघाम्ऽइव। गोऽदुहे। जुहूमसि। द्यविऽद्यवि॥

विषय(भाषा)- ईश्वर ने इस सूक्त के पहले मन्त्र में उक्त विद्या के पूर्ण करनेवाले साधन का प्रकाश किया है-

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- गोदुहे दुग्धादिकम् इच्छवे मनुष्याय दोहनसुलभाम् गाम् इव वयम् द्यविद्यवि प्रतिदिनम् सविधानाम् स्वेषाम् ऊतये विद्याप्राप्तये सुरूपकृत्नुम् इन्द्रम् परमेश्वरम् जुहूमसि स्तुमः॥१॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- (गोदुहे) दूध की इच्छा करने वाला मनुष्य दूध दोहने के लिये सुलभ गौओं को दोहके अपनी कामनाओं को पूर्ण कर लेता है। **(गाम्)** गाय के **(इव)** समान, **(वयम्)** हम **(द्यविद्यवि)** प्रति दिन **(सविद्यानां)** विद्या की प्राप्ति के लिये **(सुरूपकृत्नुम्)** परमेश्वर जो कि अपने प्रकाश से सब पदार्थों को उत्तम रूपयुक्त करनेवाला है, उसकी **(जुहूमसि)** स्तुति करते हैं।

भावार्थः(महर्षिकृतः)- अत्रोपमालङ्कारः। यथा मनुष्या गोर्दुग्धं प्राप्य स्वप्रयोजनानि साधयन्ति तथैव धार्मिका विद्वांसः परमेश्वरोपासनया श्रेष्ठविद्यादिगुणान् प्राप्य स्वकार्य्याणि प्रपूरयन्तीति॥१॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे मनुष्य गाय के दूध को प्राप्त होके अपने प्रयोजन को सिद्ध करते हैं, वैसे ही विद्वान् धार्मिक पुरुष भी परमेश्वर की उपासना से श्रेष्ठ विद्या आदि गुणों को प्राप्त होकर अपने-अपने कार्य्यों को पूर्ण करते हैं॥१॥

(ऋग्वेद ०१.०४.०१)

ऋषि: - मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रःदेवता - इन्द्रःछन्दः - गायत्रीस्वरः - षड्जः।

उप॑ नः॒ सव॒ना ग॑हि॒ सोम॑स्य सोमपाः पिब।

गो॒दा इद्रे॒वतो॒ मदः॑॥

स्वर सहित पद पाठ

उप॑। न॒ः। सव॑ना। आ। ग॒हि॒। सोम॑स्य। सो॒म॒ऽपा॒ः। पि॒ब। गो॒ऽदाः। इत्। रे॒वतः॑। मदः॑॥

विषय(भाषा)- इस मन्त्र में ईश्वर ने इन्द्र शब्द से सूर्य्य के गुणों का वर्णन किया है-

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- यतः अयम् सोमपा गोदा इन्द्रः सूर्य्यः सोमस्य जगतः मध्ये स्वकिरणैः सवना सवनानि प्रकाशयितुम् उपागहि उपागच्छति तस्मात् एव नः अस्माकम् रेवतः पुरुषार्थिनः जीवस्य च मदः हर्षकरः भवति॥२॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- **(यतः)** जिस कारण से **(अयम्)** यह, **(सोमस्य)** उत्पन्न हुए कार्यरूप जगत् में **(गोदाः)** नेत्र के व्यवहार को देनेवाला सूर्य अपने प्रकाश **(सोमपाः)** जो सब पदार्थों का रक्षक है **(स्वकिरणैः)** अपनी किरणों से **(सवना)** ऐश्वर्ययुक्त पदार्थों के प्रकाश करने को अपनी किरण से **(उप)** निकट **(आगहि)** आता है, **(तस्मात्)** इसलिए **(एव)** ही **(नः)** हमारे **(रेवतः)** पुरुषार्थ से अच्छे-अच्छे पदार्थों को प्राप्त होनेवाला **(च)** और **(मदः)** आनन्द बढ़ाने वाला **(भवति)** होता है॥२॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- सूर्य्यस्य प्रकाशे सर्वे जीवाः स्वस्य स्वस्य कर्मानुष्ठानाय विशेषतः प्रवर्त्तन्ते नैवं रात्रौ कश्चित्सुखतः कार्य्याणि कर्त्तुं शक्नोतीति॥२॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- जिस प्रकार सब जीव सूर्य्य के प्रकाश में अपने-अपने कर्म करने को प्रवृत्त होते हैं, उस प्रकार रात्रि में सुख से कार्य नहीं कर सकते हैं॥२॥

(ऋग्वेद ०१.०४.०२)

ऋषि: - मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रःदेवता - इन्द्रःछन्दः - विराड्गायत्रीस्वरः -षड्जः।

अथा॑ ते॒ अन्त॑मानां वि॒द्याम॑ सुमती॒नाम्।

मा नो॒ अति॑ ख्य॒ आ ग॑हि॥

स्वर सहित पद पाठ

अथ॑। ते॒। अन्त॑मानाम्। वि॒द्याम॑। सु॒ऽम॒ती॒नाम्। मा। न॒ः। अति॑। ख्य॒ः। आ। ग॒हि॒॥

विषय(भाषा)- जिसने सूर्य्य को बनाया है, उस परमेश्वर ने अपने जानने का उपाय इस मन्त्र में जनाया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- हे परमैश्वर्य्यवन् इन्द्र परमेश्वर ! वयम् ते तव अन्तमानाम् अर्थात् त्वाम् ज्ञात्वा त्वन्निकटे त्वदाज्ञायाम् च स्थितानाम् सुमतीनाम् आप्तानाम् विदुषाम् समागमेन त्वाम् विजानीयाम। त्वम् नः अस्मान् आगच्छ अस्मदात्मनि प्रकाशितो भव। अथ अन्तर्यामितया स्थितः सन् सत्यम् उपदेशम् मातिख्यः कदाचित् अस्य उलङ्घनम् मा कुर्य्याः॥३॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(परमैश्वर्य्यवन्)** परमेश्वर ! **(वयम्)** हम **(ते)** आपके **(अन्तमानाम्)** समीप में रहने वाले लोग **(अर्थात्)** अर्थात् **(त्वाम्)** आपको **(ज्ञात्वा)** जानकर **(त्वन्निकटे)** आपके निकट **(त्वत्)** आपके **(आज्ञायाम)** आदेश में **(च)** भी **(स्थितानाम्)** रहने वालों का **(सुमतीनाम्)** वेदादि शास्त्र में कहे गये परोपकार रूपी धर्म करने में श्रेष्ठ बुद्धि है, जिनकी **(विदुषाम्)** उन विद्वानों की **(समागमेन)** संगति से **(त्वाम्)** आपको **(विजानीया)** जानते हैं। **(त्वम्)** आप **(नः)** हमें **(आगच्छ)** प्राप्त होकर, **(अस्मत्)** हमारी **(आत्मनि)** आत्मा में **(प्रकाशितः)** प्रकाशित **(भव)** हूजिये। **(अथ)** इसके बाद में **(अन्तर्यामितया)** आप अन्तर्यामी रूप से **(स्थितः)** उपस्थित **(सन्)** होते हुए **(सत्यम्)** सत्य के **(उपदेशम्)** उपदेश का **(अतिख्यः)** उल्लघंन न करें॥३॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- यदा मनुष्या धार्मिकाणां विद्वत्तमानां सकाशाच्छिक्षाविद्ये प्राप्नुवन्ति तदा पृथिवीमारभ्य परमेश्वरपर्यन्तान् पदार्थान् विदित्वा सुखिनो भूत्वा पुनस्ते नैव कदाचिदन्तर्यामीश्वरोपदेशं विहायेतस्ततो भ्रमन्तीति॥३॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- जब मनुष्य लोग इन धार्मिक श्रेष्ठ विद्वानों के समागम से शिक्षा और विद्या को प्राप्त होते हैं, तभी पृथिवी से लेकर परमेश्वरपर्य्यन्त पदार्थों के ज्ञान द्वारा नाना प्रकार से सुखी हो करके फिर वे अन्तर्यामी ईश्वर के उपदेश को छोड़कर कभी इधर-उधर भ्रमण नहीं करते हैं॥३॥

(ऋग्वेद ०१.०४.०३)

ऋषिः - मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रःदेवता - इन्द्रःछन्दः - गायत्रीस्वरः - षड्जः।

परे॑हि॒ विग्र॒मस्तृ॑तमिन्द्रं॑ पृच्छा विप॒श्चित॑म्।

यस्ते॒ सखि॑भ्य॒ आ वर॑म्॥

स्वर सहित पद पाठ

परा॑। इ॒हि॒। विग्र॑म्। अस्तृ॑तम्। इन्द्र॑म्। पृ॒च्छ॒। वि॒पः॒ऽचित॑म्। यः। ते॒। सखि॑ऽभ्यः। आ। वर॑म्॥

विषय(भाषा)- मनुष्य लोग विद्वानों के समीप जाकर क्या करें और वे इनके साथ कैसे वर्तें, इस विषय का उपदेश ईश्वर ने इस मन्त्र में किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- हे विद्याम् चिकीर्षः मनुष्य ! यः विद्वान् तुभ्यम् सखिभ्यः मित्रशीलेभ्यः च आसमन्तात् आद्वरम् विज्ञानम् ददाति, तम् विग्रम् अस्तृतम् इन्द्रम् विपश्चितम् उपगम्य सन्देहान् पृच्छ। यथार्थतया तत् उपदिष्टान्नि उत्तराणि गृहीत्वा अन्येभः त्वम् अपि वद। यः हि अविद्वान् ईर्ष्यकः कपटी स्वार्थी मनुष्यः अस्ति तस्मात् सर्वदा परेहि॥४॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(विद्याम्)** विद्या के **(चिकीर्षः)** इच्छुक **(मनुष्यः)** मनुष्य! **(यः)** जो **(विद्वान्)** विद्वान्, **(तुभ्यम्)** तुम से **(च)** और **(मित्रशीलेभ्यः)** शील गुणों वाले मित्रों से **(च)** भी **(आ)** अच्छी तरह से **(द्वरम्)** बुराइयों को ढकने के लिए **(विज्ञानम्)** विशेष ज्ञान **(ददाति)** देता है। **(तम्)** उस **(विग्रम्)** श्रेष्ठ बुद्धिमान् को **(अस्तृतम्)** हिंसा आदि रहित **(इन्द्रम्)** परमैश्वर्य्ययुक्त विद्या **(सखिभ्यः)** मित्र स्वभाव वाले इन्द्र को, **(विपश्चितम्)** यथार्थ सत्य कहने वाला जो मनुष्य विद्वानों को उपदेश देता है, उनसे **(पृच्छ)** अपने सन्देह को पूछ कर उत्तरों को देखें। **(तत्)** उसके **(उपदिष्टान्नि)** उपदेश किए हुए **(उत्तराणि)** उत्तरों को **(गृहीत्वा)** ग्रहण करके **(त्वम्)** तुम **(अन्येभ्यः)** अन्यों को **(अपि)** भी **(वद)** बोलो। **(यः)** जो **(हि)** निश्चय से **(अविद्वान्)** अविद्वान्, **(ईर्ष्यकः)** ईर्ष्या करने वाला, **(कपटी)** कपटी और **(स्वार्थी)** स्वार्थी **(मनुष्यः)** मनुष्य **(अस्ति)** है, **(तस्मात्)** उससे **(सर्वदा)** सदैव **(परेहि)** दूर रहो॥४॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- सर्वेषां मनुष्याणामियं योग्यतास्ति-पूर्वं परोपकारिणं पण्डितं ब्रह्मनिष्ठं श्रोत्रियं पुरुषं विज्ञाय तेनैव सह प्रश्नोत्तरविधानेन सर्वाः शङ्का निवारणीयाः, किन्तु ये विद्याहीनाः सन्ति, नैव केनापि तत्सङ्गकथनोत्तरविश्वासः कर्त्तव्य इति॥४॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- सब मनुष्यों को यही योग्य है कि प्रथम सत्य का उपदेश करने वाले वेद पढ़े हुए और परमेश्वर की उपासना करने वाले विद्वानों को प्राप्त होकर अच्छी प्रकार उनके साथ प्रश्नोत्तर की रीति से अपनी सब शङ्का निवृत्त करें, किन्तु विद्याहीन मूर्ख मनुष्य का सङ्ग या उनके दिये हुए उत्तरों में विश्वास कभी न करें॥४॥

(ऋग्वेद ०१.०४.०४)

ऋषिः - मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रःदेवता - इन्द्रःछन्दः - गायत्रीस्वरः - षड्जः।

उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत।

दधाना इन्द्र इद्दुवः॥

स्वर सहित पद पाठ

उत। ब्रुवन्तु। नः। निदः। निः। अन्यतः। चित्। आरत। दधानाः। इन्द्रे। इत्। दुवः॥

विषय(भाषा)- ईश्वर ने फिर भी इसी विषय का उपदेश मन्त्र में किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- य इन्द्रे परमेश्वरे दुवः परिचर्य्या दधानाः सर्वासु विद्यासु धर्मे पुरुषार्थे च वर्त्तमानाः सन्ति, ते उत एव नःअस्मभ्यम् सर्वा विद्या ब्रुवन्तु उपदिशन्तु। ये चित् अन्ये नास्तिका निदः निन्दितारःअविद्वांसः धूर्ताः सन्ति, ते सर्व इतः देशात् अस्मत् निवासात् निःआरत दूरे गच्छन्तु, उत अन्यतः देशात् अपि निःसरन्तु, अर्थात् अधार्मिकाः पुरुषाः को अपि मा तिष्ठेयुः इति॥५॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- **(ये)** जो **(इन्द्रे)** परमेश्वर की **(दुवः)** सेवा में **(दधानाः)** धारण किये हुए **(सर्वासु)** सब **(विद्यासु)** विद्याओं, **(धर्मे)** धर्म **(च)** और **(पुरुषार्थे)** पुरुषार्थ में **(वर्त्तमानाः)** विद्यमान **(सन्ति)** हैं। **(ते)** वे **(उत)** ही **(नः)** हमें **(ब्रुवन्तु)** समस्त विद्याओं का उपदेश करें। **(ये)** जो **(चित्)** अन्य **(नास्तिका)** नास्तिक, **(निदः)** निन्दक मनुष्य **(अविद्वांसः)** अविद्वान् और **(धूर्ताः)** धूर्त **(सन्ति)** हैं, **(ते)** वे **(सर्व)** सब **(इत्)** यहां से **(देशात्)** इस देश से **(अस्मत्)** हमारे **(निवासात्)** निवास से **(निः)** अच्छी तरह से **(दूरे)** दूर **(आरत-गच्छन्तु)** चले जायें **(उत)** और **(अन्यतः)** अन्य देशों से **(अपि)** भी **(निः)** अच्छी तरह से **(सरन्तु)** निकल जावें **(अर्थात्)** अर्थात् **(अधार्मिकाः)** अधार्मिक **(पुरुषाः)** लोग **(को अपि)** कोई भी **(मा)** नहीं **(तिष्ठेयुः)** रहें॥५॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- सर्वैर्मनुष्यैराप्तविद्वत्सङ्गेन मूर्खसङ्गत्यागेनेत्थं पुरुषार्थः कर्त्तव्यो यतः सर्वत्र विद्यावृद्धिरविद्याहानिश्च मान्यानां सत्कारो दुष्टानां ताडनं चेश्वरोपासना पापिनां निवृत्तिर्धार्मिकाणां वृद्धिश्च नित्यं भवेदिति॥५॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- सब मनुष्यों को उचित है कि आप्त धार्मिक विद्वानों का सङ्ग कर और मूर्खों के सङ्ग को सर्वथा छोड़ के ऐसा पुरुषार्थ करना चाहिये कि जिससे सर्वत्र विद्या की वृद्धि, अविद्या की हानि, मानने योग्य श्रेष्ठ पुरुषों का सत्कार दुष्टों को दण्ड, ईश्वर की उपासना आदि शुभ कर्मों की वृद्धि और अशुभ कर्मों का विनाश नित्य होता रहे॥५॥

अनुवादक की टिप्पणियाँ-(१)- पुरुषार्थ- वैदिक शास्त्रों के अनुसार पुरुषार्थ है- एक मानवीय वस्तु: जैसे इच्छा की संतुष्टि, धन की प्राप्ति, कर्तव्य का निर्वहन, और अंतिम मुक्ति।

(२)-आप्त- महर्षि दयानन्द सरस्वती के अनुसार आप्त की परिभाषा-जो छलादि दोषरहित, धर्मात्मा, विद्वान् सत्योपदेष्टा, सब पर कृपादृष्टि से वर्त्तमान होकर अविद्यान्धकार का नाश करके अज्ञानी लोगों के आत्माओं में विद्यारूप सूर्य का प्रकाश सदा करे, उसको 'आप्त' कहते हैं।

(ऋग्वेद ०१.०४.०५)

ऋषिः - मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रःदेवता - इन्द्रःछन्दः - गायत्रीस्वरः - षड्जः।

उत नः सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः।

स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि॥

स्वर सहित पद पाठ

उत। नः। सुभगान्। अरिः। वोचेयुः। दस्म। कृष्टयः। स्याम। इत्। इन्द्रस्य। शर्मणि॥

विषय(भाषा)- अब मनुष्यों को कैसा स्वभाव धारण करना चाहिये, इस विषय का उपदेश ईश्वर ने इस मन्त्र में किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- हे दस्म उपक्षयरहित जगदीश्वर ! वयम् तव इन्द्रस्य शर्म्मणि खलु आज्ञापालना आख्यव्यवहारे नित्यम् प्रवृत्ताः स्याम। इमे कृष्टयः सर्वे मनुष्याः सर्वान् प्रति सर्वा विद्या वोचेयुः उपदिशेर्युतः सत्योपदेश प्राप्तान् अस्मान् अरिः उत शत्रुः अपि सुभगान् जानीयात् वदेत् च ॥६॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(दस्म)** दुष्टों को दण्ड देनेवाले **(उपक्षयरहित)** हानि रहित **(जगदीश्वर)** परमेश्वरः! **(वयम्)** हम **(तव)** आप **(इन्द्रस्य)** परमेश्वर के **(शर्म्मणि)** नित्य सुख में **(खलु)** निशचय ही **(आज्ञापालना)** आज्ञापालन, **(आख्यव्यवहारे)** नाम और व्यवहार में **(नित्यम्)** नित्य **(प्रवृत्ताः)** प्रवृत्त हुए **(स्याम)** हों। **(इमे)** ये **(कृष्टयः)** सब मनुष्य लोग **(सर्वान्)** सबके **(प्रति)** प्रति, **(सर्वा)** सब **(विद्या)** विद्या **(वोचेयुः)** प्रीतिपूर्वक सब विद्यायें सबके लिए उपदेश करें। **(सत्योपदेश)** सत्य का उपदेश **(प्राप्तान्)** प्राप्त करने के लिए **(अस्मान्)** हमारे **(अरिः)** शत्रु **(उत)** भी **(सुभगान्)** उनको जो श्रेष्ठ विद्या ऐश्वर्ययुक्त है **(जानीयात्)** जानें **(च)** और **(वदेत्)** कहें ॥६॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- यदा सर्वे मनुष्या विरोधं विहाय सर्वोपकारकरणे प्रयतन्ते, तदा शत्रवोऽप्यविरोधिनो भवन्ति, यतः सर्वान्मनुष्यानीश्वरानुग्रहनित्यानन्दौ प्राप्नुतः ॥६॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- जब सब मनुष्य विरोध को छोड़कर सब के उपकार करने में प्रयत्न करते हैं, तब शत्रु भी मित्र हो जाते हैं, जिससे सब मनुष्यों को ईश्वर की कृपा और निरन्तर उत्तम आनन्द प्राप्त होते हैं॥६॥

(ऋग्वेद ०१.०४.०६)

ऋषिः - मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रःदेवता - इन्द्रःछन्दः - गायत्रीस्वरः - षड्जः।

एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम्।

पतयन्मन्दयत्सखम्॥

स्वर सहित पद पाठ

आ। ईम्। आशुम्। आशवे। भर। यज्ञऽश्रियम्। नृऽमादनम्। पतयत्। मन्दयत्ऽसखम्॥

विषय(भाषा)- परमेश्वर प्रार्थना करने योग्य क्यों है, यह विषय इस मन्त्र में प्रकाशित किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- हे इन्द्र परमेश्वर ! तव कृपया अस्मदर्थम् आशव आशुम् यज्ञश्रियम् नृमादनम् पतयत्स्वामित्वसम्पादकं मन्दयत्सखं विज्ञानादिधनम् भर देहि॥७॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(इन्द्र)** परमेश्वर! **(तव)** आप **(कृपया)** कृपया, **(अस्मदर्थम्)** हमारे लिए **(आशवे)** यानों में सब सुख वा वेगादि गुणों की शीघ्र प्राप्ति के लिये, **(यज्ञश्रियम्)** चक्रवर्त्ति राज्य की महिमा की शोभा के लिए, **(आशुम्)** वेग आदि गुणवाले अग्नि वायु आदि पदार्थों के समूह के लिए, **(नृमादनम्)** मनुष्यों को अत्यन्त आनन्द देने के लिए, **(पतयत्)** स्वामित्व के धर्म को पूरा करने के लिए, **(मन्दयत्सखम्)** जिसमें आनन्द को प्राप्त होने वा विद्या के जनाने वाले मित्र हों, ऐसे **(विज्ञानादि)** विशेष ज्ञान आदि **(धनम्)** धन को **(भर)** अच्छी तरह से धारण करके प्रदान करो॥७॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- ईश्वरः पुरुषार्थिनो मनुष्यस्योपरि कृपां दधाति नालसस्य। कुतः? यावन्मनुष्यः स्वयं पूर्णं पुरुषार्थं न करोति, नैव तावदीश्वरकृपाप्राप्तान् पदार्थान् रक्षितुमपि समर्थो भवति। अतो मनुष्यैः पुरुषार्थवद्भिर्भूत्वेश्वरकृपैष्टव्येति॥७॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- ईश्वर पुरुषार्थी मनुष्य पर कृपा करता है, आलस करनेवाले पर नहीं, क्योंकि जब तक मनुष्य ठीक-ठीक पुरुषार्थ नहीं करता तब तक ईश्वर की कृपा और अपने किये हुए कर्मों से प्राप्त हुए पदार्थों की रक्षा में

समर्थ कभी नहीं हो सकता। इसलिये मनुष्यों को पुरुषार्थी होकर ही ईश्वर की कृपा के भागी होना चाहिये॥७॥

अनुवादक की टिप्पणी का भाषानुवाद - जिसके हाथ में चक्र के रूप में कमल के आकार के चिह्न हों, ऐसे समुद्र को घेरे हुई समस्त भूमि के स्वामी को चक्रवर्त्ती कहते हैं। ऐसा राज्य चक्रवर्त्ति राज्य कहलाता है।

(ऋग्वेद ०१.०४.०७)

ऋषिः- मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रः देवता - इन्द्रः छन्दः - गायत्री स्वरः - षड्जः।

अस्य पीत्वा शंतक्रतो घनो वृत्राणांमभवः।

प्रावो वाजेषु वाजिनम्॥

स्वर सहित पद पाठ

अस्य। पीत्वा। शतक्रतो इतिं शतऽक्रतो। घनः। वृत्राणांम्। अभवः। प्र। आवः। वाजेषु। वाजिनम्॥

विषय(भाषा)- फिर भी परमेश्वर ने सूर्य्यलोक के स्वभाव का प्रकाश इस मन्त्र में किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- हे शतक्रतः पुरुषव्याघ्र ! यथा घनः मूर्तिमानयम् सूर्य्यलोकः अस्य जलस्य रसम् पीत्वा वृत्राणाम् मेघावयवानाम् हननम् कृत्वा सर्वान् ओषध्यादीन् पदार्थान् प्रावः रक्षति, यथा च स्वप्रकाशेन सर्वान् प्रकाशते, तथैव त्वमपि सर्वेषां रोगाणाम् दुष्टानाम् शत्रूणाम् च निवारकः भूत्वा अस्य रक्षकः अभवः भूयाः। एवं वाजेषु दुष्टैः सह युद्धेषु प्रवर्त्तमानम् धार्मिकम् वाजिनम् शूरम् प्रावः प्रकृष्टतया सदैव रक्षको भव॥८॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे (शतक्रतो) असंख्यात कर्मों के करनेवाले शूरवीर या सूर्य लोक के (पुरुषव्याघ्र) मनुष्य के बीच में ब्याघ्र ! (यथा) जैसे (घनः) दृढ और कठिनाई से मूर्तिमान रूप में प्राप्त हुए, (सूर्य्यलोकः) सूर्य्यलोक के (अस्य) समस्त जगत् के समक्ष और असमक्ष जल के रस को (पीत्वा) पीकर के (वृत्राणाम्) मेघ के समान सुख के आवरण के अथवा शत्रुओं के मेघों के (मेघावयवानाम्) अवयवों को (हननम्) नष्ट (कृत्वा) करके (सर्वान्) समस्त (ओषध्यादीन्) ओषधि आदि (पदार्थान्) पदार्थों की (प्रावः) रक्षा करता है (च) और (यथा) जैसे (स्वप्रकाशेन) अपने प्रकाश से (सर्वान्) सबको (प्रकाशते) प्रकाशित करता है, (तथैव) वैसे ही (त्वमपि) तुम भी (सर्वेषां) सब (रोगाणाम्) रोगों (च) और (दुष्टानाम्) दुष्ट (शत्रूणाम्) शत्रुओं के (निवारकः) निवारक (भूत्वा) होकर (अस्य) उसके (रक्षकः) रक्षक (अभवः) होओ। (एवम्) ऐसे ही (वाजेषु) युद्धों में (दुष्टैः) दुष्टों के (सह) साथ (प्रवर्त्तमानम्) लगे हुए (धार्मिकम्) धार्मिकों के और

(वाजिनम्) युद्ध करने वाले (शूरम्) वीरों की (प्रावः) रक्षा करता है। [वह] (प्रकृष्टतया) प्रमुखता से (सदैव) सदा (रक्षको) रक्षक (भव) हूजिये महर्षिकृतः (भावार्थः)-अत्र लुप्तोमालङ्कारः। यथा यो मनुष्यो दुष्टैः सह धर्मेण युध्यति तस्यैव विजयो भवति नेतरस्य, तथा परमेश्वरोऽपि धार्मिकाणां युद्धकर्तॄणां मनुष्याणामेव सहायकारी भवति नेतरेषाम्॥८॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। जैसे जो मनुष्य दुष्टों के साथ धर्मपूर्वक युद्ध करता है, उसी का ही विजय होता है और का नहीं। तथा परमेश्वर भी धर्मपूर्वक युद्ध करनेवाले मनुष्यों का ही सहाय करनेवाला होता है, औरों का नहीं॥८॥

(ऋग्वेद ०१.०४.०८)

ऋषिः - मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रःदेवता - इन्द्रःछन्दः - गायत्रीस्वरः - षड्जः।

तं त्वा॒ वाजे॑षु वा॒जिनं॑ वा॒जया॑मः शतक्रतो।

धना॑नामिन्द्र सा॒तये॑॥

स्वर सहित पद पाठ

तम्। त्वा॒। वाजे॑षु। वा॒जिन॑म्। वा॒जया॑मः। श॒त॒क्र॒तो॒ इति॑ शतऽक्रतो। धना॑नाम्। इ॒न्द्र॒। सा॒तये॑॥

विषय(भाषा)- फिर इन्द्र शब्द से इस मन्त्र में ईश्वर का प्रकाश किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- हे शतक्रतो इन्द्र जगदीश्वरम्! वयम् धनानाम् सातये वाजेषु वाजिनम् तम् पूर्वोक्तम् इन्द्रम् परमेश्वरम् त्वाम् एव सर्वान् मनुष्यान् प्रति वाजयामः विज्ञापयामः॥९॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(शतक्रतो)** असंख्यात वस्तुओं का विज्ञान रखने वाले **(इन्द्र)** परमेश्वर! **(वयम्)** हम (धनानाम्) धनों को **(सातये)** सुखभोग या अच्छे प्रकार से सेवन के लिये **(वाजेषु)** युद्धों में **(वाजिनम्)** विजय प्राप्त कराने वाले **(तम्)** उन **(पूर्वोक्तम्)** पहले कहे गये **(इन्द्रम्)** परमेश्वर **(त्वाम्)** तुमको **(एव)** ही **(सर्वान्)** सब **(मनुष्यान्)** मनुष्यों के **(प्रति)** प्रति **(वाजयामः)** जानने और जनाने का प्रयत्न करते हैं।

भावार्थः(महर्षिकृतः)- यो दुष्टान् युद्धेन निर्बलान् कृत्वा जितेन्द्रियो विद्वान् भूत्वा जगदीश्वराज्ञां पालयति, स एव मनुष्यो धनानि विजयं च प्राप्नोतीति॥९॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- जो मनुष्य दुष्टों को युद्ध से निर्बल करता तथा जितेन्द्रिय वा विद्वान् होकर जगदीश्वर

की आज्ञा का पालन करता है, वही उत्तम धन वा युद्ध में विजय को अर्थात् सब शत्रुओं को जीतनेवाला होता है॥९॥

(ऋग्वेद ०१.०४.०९)

ऋषिः - मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रःदेवता - इन्द्रःछन्दः - निचृद्गायत्रीस्वरः- षड्जः।

यो रायो३वनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा।

तस्मा इन्द्राय गायत॥

स्वर सहित पद पाठ

यः। रायः। अवनिः। महान्। सुऽपारः। सुन्वतः। सखा। तस्मै। इन्द्राय। गायत॥

विषय(भाषा)- फिर भी वह परमेश्वर कैसा है और क्यों स्तुति करने योग्य है, इस विषय का प्रकाश इस मन्त्र में किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- हे विद्वांसः मनुष्याः ! यो महान् सुपारः सुन्वतः सखा रायःअवनिः करुणामयःअस्ति यूयम् तस्मै तम् इन्द्राय इन्द्रम् परमेश्वरम् एव गायत नित्यम् अर्चत॥१०॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(विद्वांसः)** विद्वान्, **(मनुष्याः)** मनुष्यों ! **(यः)** जो परमेश्वर करुणामयःहै **[और]** **(महान्)** सबसे महान्, **(सुपारः)** सबकी कामनाओं को अच्छी तरह से पूर्ण करने वाला है। **(सुन्वतः)** प्राप्त हुए सोम विद्या वाले धर्मात्मा पुरुष का **(सखा)** मित्र **[और]** **(रायः)** विद्या, सुवर्ण आदि धन का **(अवनिः)** रक्षक और जीवों को देने वाला दाता, **(करुणामयः)** करुणामय **(अस्ति)** है। **(यूयम्)** तुम सब **(तस्मै)** उस ईश्वर की **(एव)** ही **(गायत)** नित्य पूजा करो॥१०॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)-नैव केनापि केवलं परमेश्वरस्य स्तुतिमात्रकरणेन सन्तोष्टव्यं किन्तु तदाज्ञायां वर्त्तमानेन स नः सर्वत्र पश्यतीत्यधर्मान्निवर्त्तमानेन तत्सहायेच्छुना मनुष्येण सदैवोद्योगे प्रवर्त्तितव्यम्॥१०॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- किसी मनुष्य को केवल परमेश्वर की स्तुतिमात्र ही करने से सन्तोष न करना चाहिये, किन्तु उसकी आज्ञा में रहकर और ऐसा समझ कर कि परमेश्वर मुझको सर्वत्र देखता है, इसलिये अधर्म से निवृत्त होकर और परमेश्वर के सहाय की इच्छा करके मनुष्य को सदा उद्योग ही में वर्त्तमान रहना चाहिये॥१०॥

सूक्तस्य भावार्थः- एतस्य विद्यया परमेश्वरज्ञानात्मशरीरारोग्यदृढत्वप्राप्त्या सदैव दुष्टानां विजयेन पुरुषार्थेन च चक्रवर्त्तिराज्यं धार्मिकैः प्राप्तव्यमिति संक्षेपतोऽस्य चतुर्थसूक्तोक्तार्थस्य तृतीयसूक्तोक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्। अस्यापि सूक्तस्यार्य्यावर्त्तनिवासिभिः सायणाचार्य्यादिभिर्यूरोपाख्यदेशनिवासिभिरध्यापकविलसनाख्यादिभि-रन्यथैव

व्याख्या कृतेति वेदितव्यम्।।

सूक्त का भावार्थ- इस सूक्त की कही हुई विद्या से, धर्मात्मा पुरुषों को परमेश्वर का ज्ञान सिद्ध करना तथा आत्मा और शरीर के स्थिर भाव, आरोग्य की प्राप्ति तथा दुष्टों के विजय और पुरुषार्थ से चक्रवर्त्ति राज्य को प्राप्त होना, इत्यादि अर्थ की तृतीय सूक्त में कहे अर्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिए।

महर्षि के द्वारा सायण व विल्सन के भाष्य पर की गई टिप्पणी- आर्यावर्त्तवासी सायणाचार्य्य आदि विद्वान् तथा यूरोपखण्डवासी अध्यापक विलसन आदि साहबों ने इस सूक्त की भी व्याख्या ऐसी विरुद्ध की है कि यहाँ उसका लिखना व्यर्थ है।।

(ऋग्वेद ०१.०४.१०)

अथ प्रथमं मण्डलम्

[०५] पञ्चं सूक्तम्

ऋषिः - मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रःदेवता - इन्द्रःछन्दः - विराड्गायत्रीस्वरः- षड्जः।

आ त्वेता निषीदतेन्द्रमभि प्र गायत।

सखायः स्तोमवाहसः॥

स्वर सहित पद पाठ

आ। तु। आ। इत। नि। सीदत। इन्द्रम्। अभि। प्र। गायत। सखायः। स्तोमऽवाहसः॥

विषय(भाषा)- पाँचवें सूक्त के प्रथम मन्त्र में इन्द्र शब्द से परमेश्वर और स्पर्शगुणवाले वायु का प्रकाश किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- हे स्तोमवाहसः सखायः विद्वांसः ! सर्वे यूयम् मिलित्वा परस्परम् प्रीत्या मोक्षशिल्पविद्यासम्पादनोद्योग आनिषीदत, तदर्थम् इन्द्रम् परमेश्वरम् वायुम् च अभिप्रगायत। एवम् पुनः सर्वाणि सुखान्येत॥१॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(स्तोमवाहसः)** प्रशंसनीय गुणयुक्त या प्रशंसा कराने वाले **(सखायः)** सब से मित्रभाव में वर्त्तनेवाले, **(विद्वांसः)** विद्वान् लोगों ! **(यूयम्)** तुम **(सर्वे)** समस्त **(मिलित्वा)** मिलकर **(परस्परम्)** आपस में **(प्रीत्या)** प्रीतिपूर्वक **(मोक्ष)** मुक्ति विद्या और {**(शिल्पविद्यासम्पादनोद्योग-आनिषीदत)**} अच्छी प्रकार से यत्नपूर्वक शिल्पविद्या की साधना करते हुए **(तदर्थम्)** उसके लिए **(इन्द्रम्)** परमेश्वर या बिजली से युक्त वायु का और **(अभिप्रगायत)** विद्या की सिद्धि के लिए उसके गुणों का उपदेश करें और सुनें। तुम **(सखायः)** सब से मित्रभाव में होकर (एवम्) ऐसे ही (पुनः) पुनः (सर्वाणि) समस्त (सुखान्येत) सुखों को अच्छी तरह से प्राप्त करो॥१॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- यावन्मनुष्या हठच्छलाभिमानं त्यक्त्वा सम्प्रीत्या परस्परोपकाराय मित्रवन्न प्रयतन्ते, तावन्नैवैतेषां कदाचिद्विद्यासुखोन्नतिर्भवतीति॥१॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद-जब तक मनुष्य हठ, छल और अभिमान को छोड़कर सत्य प्रीति के साथ परस्पर मित्रता करके परोपकार करने के लिये तन मन और धन से यत्न नहीं करते, तब तक उनके सुखों और विद्या आदि उत्तम गुणों की उन्नति कभी नहीं हो सकती॥१॥

(ऋग्वेद ०१.०५.०१)

ऋषि: - मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रःदेवता - इन्द्रःछन्दः – आर्च्युष्णिक्स्वरः- ऋषभः।

पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्यांणाम्।

इन्द्रं सोमे सचा सुते॥

स्वर सहित पद पाठ

पुरुऽतमम्। पुरूणाम्। ईशानम्। वार्यांणम्। इन्द्रम्। सोमे। सचा। सुते॥

विषय(भाषा)- फिर भी इस मन्त्र में उन्हीं दोनों के गुणों का प्रकाश किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- हे सखायो विद्वांसः वार्य्याणाम् पुरुतमम् ईशानम् पुरुणाम् इन्द्रम् अभिप्रगायत ये सुते सोमे सचाः सन्ति तान् सर्वोपकाराय यथा योग्यम् अभिप्रायत॥२॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(सखायः)** मित्र **(वार्य्याणाम्)** अत्यन्त उत्तम **(विद्वांसः)** विद्वान् लोगों **[और] (पुरुतमम्)** दुष्ट स्वभाव वाले जीवों को ग्लानि प्राप्त कराने वाले **(ईशानम्)** रचने में समर्थ परमेश्वर, उसके बीच में स्थित विद्या के साधक या वायु, **(पुरुणाम्)** आकाश से लेकर पृथिवी पर्यन्त बहुत सी विद्याओं के साधक, **(इन्द्रम्)** सब ऐश्वर्य देनेवाले परमेश्वर या वायु के भौतिक गुणों का **(अभि)** अच्छी तरह से, **(प्रगायत)** विशेष रूप से पूजन करते हुए **(ये)** जो **(सुते)** रस खींचने की विद्या से प्राप्त **(सोमे)** सोमलता आदि सब पदार्थों या विमान आदि विद्या, **(सचा)** जो मिले हुए पदार्थ **(सन्ति)** हैं, **(तान्)** उनकी **(सर्वोपकाराय)** सबके उपकार के लिए **(यथा)** जैसा है **(योग्यम्)** उसी के अनुसार **(अभि)** अच्छी तरह से **(प्रगायत)** विशेष रूप से पूजन करो या उनका प्रयोग करो॥२॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- अत्र श्लेषालङ्कारः। पूर्वस्मान्मन्त्रात् 'सखायः; तु; अभिप्रगायत' इति पदत्रयमनुवर्त्तनीयम्। ईश्वरस्य यथायोग्यव्यवस्थया जीवेभ्यस्तत्तत्कर्मफलदातृत्वात् भौतिकस्य वायोः कर्मफलहेतुत्वेन सकलचेष्टाविद्यासाधकत्वादस्मादुभयार्थस्य ग्रहणम्॥२॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। पीछे के मन्त्र से इस मन्त्र में "सखायः तु अभिप्रगायत" इन तीन शब्दों को अर्थ के लिये लेना चाहिये। इस मन्त्र में यथायोग्य व्यवस्था करके उनके किये हुए कर्मों का फल देने से ईश्वर तथा इन कर्मों के फल भोग कराने के कारण वा विद्या और सब क्रियाओं के साधक होने से भौतिक अर्थात् संसारी वायु का ग्रहण किया है॥२॥

अनुवादक की टिप्पणी-सोमलता- कल्पद्रुम के अनुसार अपने नाम से प्रसिद्ध लता है। इसके सोमलता सोमा क्षीरी और द्विजप्रिया अन्य नाम हैं। भावप्रकाश निघण्टु के अनुसार सोमवल्ली तीन प्रकार के दोषों को समाप्त करने वाली रसायन

है। यज्ञ के लिये पवित्र और यज्ञों को साधित कराने वाली कहा गया है।

(ऋग्वेद ०१.०५.०२)

ऋषिः - मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रःदेवता - इन्द्रःछन्दः- पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्रीस्वरः - षड्जः।

स घा॑ नो॒ योग॒ आ भु॑व॒त्स रा॒ये स पुर॑ध्याम्।

गम॒द्वाजे॑भि॒रा स नः॑॥

स्वर सहित पद पाठ

सः । घ॒ । नः॒ । योगे॑ । आ । भु॒व॒त् । सः । रा॒ये । सः । पुर॑म्ऽध्याम् । गम॑त् । वाजे॑भिः । आ । सः । नः॒ ॥

विषय(भाषा)- वे दोनों तुम हम और सब प्राणिलोगों के लिये क्या करते हैं, सो इस मन्त्र में प्रकाश किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- स हिएव इन्द्रः परमेश्वरः वायुः च नःअस्माकम् योगे सहायकारी व्यवहार विद्या उपयोगाय च अभुवत् समन्ताद् भूयात् भवति वा, तथा स एव राये स पुरन्ध्याम् च प्रकाशकः भूयात् भवति वा, एवम् स एव वाजेभिः सह नः अस्मान् आगमत् आज्ञाप्यात् समन्तात् गमयति वा॥३॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- **{(स)-(हि+एव+इन्द्रः)}** वही परमेश्वर या भौतिक वायु है **(च)** और **(नः)** हमारे (योगे) सब सुखों को सिद्ध करने वाले योग, **(सहायकारी)** सहायक **(व्यवहार)** व्यवहार, **(च)**=और **(विद्या)** विद्या के (उपयोगाय) उपयोग के लिये **(आ)** हर ओर से प्रकाशित **(भवति)** होता है। **(वा)** अथवा **(तथा)** वैसे ही **(स)** वह **(एव)** ही **(राये)** उत्तम धन के लाभ के लिये **(पुरन्ध्याम्)** अनेक शास्त्रों की विद्याओं से युक्त बुद्धि का **(च)** भी **(प्रकाशकः)** प्रकाशक **(भूयात्)** हो। **(एवम्)** ऐसे ही **(स)** वह **(एव)** ही **(वाजेभिः)** उत्तम अन्न और विमान आदि सवारियों के साथ उपस्थित होकर **(नः)** हमें **(समन्तात्)** हर ओर से **(गमयति)** प्राप्त होता है।

भावार्थः(महर्षिकृतः)-अत्र श्लेषालङ्कारः। ईश्वरः पुरुषार्थिनो मनुष्यस्य सहायकारी भवति नेतरस्य, तथा वायुरपि पुरुषार्थेनैव कार्य्यसिद्ध्युपयोगी भवति। नैव कस्यचिद्विना पुरुषार्थेन धनवृद्धिलाभो भवति। नैवैताभ्यां विना कदाचिदुत्तमं सुखं च भवतीत्यतः सर्वैर्मनुष्यैरुद्योगिभिराशीर्मद्भिर्भवितव्यम्॥३॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद-इस मन्त्र में भी श्लेषालङ्कार है। ईश्वर पुरुषार्थी मनुष्य का सहायक होता है, अन्य का नहीं। ऐसे ही वायु भी पुरुषार्थ के विना कार्य की सिद्धि में सहायक नहीं होता है। किसी के पुरुषार्थ के विना कभी धन की

वृद्धि और लाभ नहीं होता है। इन दोनों के विना उत्तम सुख कभी नहीं होता है, इसलिये सब मनुष्यों को उद्योग और आशीर्वाद के द्वारा ऐसा होना चाहिये॥३॥

(ऋग्वेद ०१.०५.०३)

ऋषिः - मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रःदेवता - इन्द्रःछन्दः - गायत्रीस्वरः - षड्जः।

यस्य॑ सं॒स्थे न वृ॒ण्वते॒ हरी॑ स॒मत्सु॒ शत्र॑वः।

तस्मा॒ इन्द्रा॑य गायत॥

स्वर सहित पद पाठ

यस्य॑। स॒म्ऽस्थे। न। वृ॒ण्वते॑। हरी॒ इति॑। स॒मत्ऽसु॑। शत्र॑वः। तस्मै॑। इन्द्रा॑य। गा॒य॒त॒॥

विषय(भाषा)- ईश्वर ने अपने आप और सूर्य्यलोक का गुणसहित चौथे मन्त्र से प्रकाश किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- अन्वय-हे मनुष्या ! यूयम् यस्य हरी संस्थे वर्त्तेते, यस्य सहायेन शत्रवः समत्सु न वृण्वते, सम्यग् बलम् न सेवन्ते, तस्मा इन्द्राय तमिन्द्रं नित्यं गायत॥४॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(मनुष्या)** मनुष्यों! **(यूयम्)** तुम सब **(यस्य)** जिस परमेश्वर या सूर्य **के** **(हरी)** पदार्थों को प्राप्त कराने वाले बल, पराक्रम, प्रकाश और आकर्षण, **(यस्य सहायेन)** जिसकी सहायता से इस संसार में **(वर्त्तेते)** वर्तमान हैं, जिसकी सहायता से **(शत्रवः)** शत्रु जन, **(समत्सु)** युद्धों में **(वृण्वते)** अच्छी प्रकार बल **(न)** नहीं लगाते हैं, **(तस्मै)** उस **(इन्द्राय)** परमेश्वर का **(नित्य)** नित्य **(गायत)** पूजन करो।

भावार्थः(महर्षिकृतः)-अत्र श्लेषालङ्कारः। न यावन्मनुष्याः परमेश्वरेष्टा बलवन्तश्च भवन्ति, नैव तावद् दुष्टानां शत्रूणां नैर्बल्यङ्कर्तुं शक्तिर्जायत इति॥४॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जब तक मनुष्य लोग परमेश्वर को अपने इष्ट देव समझनेवाले और बलवान् अर्थात् पुरुषार्थी नहीं होते, तब तक उनको दुष्ट शत्रुओं की निर्बलता करने को सामर्थ्य भी नहीं होता॥४॥

(ऋग्वेद ०१.०५.०४)

ऋषि: - मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रः देवता - इन्द्रः छन्दः - निचृद्गायत्रीस्वरः - षड्जः।

सुतपाव्ने सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये।

सोमासो दध्याशिरः॥

स्वर सहित पद पाठ

सुतऽपाव्ने। सुताः। इमे। शुचयः। यन्ति। वीतये। सोमासः। दधिऽआशिरः॥

विषय(भाषा)- ये संसारी पदार्थ किसलिये उत्पन्न किये गये और कैसे हैं, ये किससे पवित्र किये जाते हैं, इस विषय का प्रकाश इस मन्त्र में किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- इन्द्रेण परमेश्वरेण वायुसूर्य्याभ्याम् वा यतः सुतपाव्ने वीतय इमे दध्याशिरः शुचयः सोमासः सर्वे पदार्था उत्पादिताः पवित्रीकृताः सन्ति, तस्मात् एतान् सर्वे जीवा यन्ति प्राप्नुवन्ति॥५॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- (इन्द्रेण) परमेश्वर के द्वारा **(वा)** या (वायुसूर्य्याभ्याम्) वायु और सूर्य के द्वारा **(यतः)** क्योंकि **(सुतपाव्ने)** अपने द्वारा उत्पन्न किये हुए पदार्थों की रक्षा करने वाले जीव के लिये, **(वीतये)** ज्ञान और भोग के लिये, **(इमे)** ये **(दध्याशिरः)** जो धारण और उत्पन्न करने वाले होते हैं, **[ऐसे] (शुचयः)** पवित्र **(सोमासः)** जिनसे अच्छे व्यवहार होते हैं, वे **(सर्वे)** समस्त **(पदार्था)** पदार्थ **(उत्पादिताः)** उत्पन्न के हुए और **(पवित्रीकृताः)** पवित्र किए हुए **(सन्ति)** हैं। **(तस्मात्)** इसलिए **(एतान्)** इन सबको **(सर्वे)** समस्त **(जीवा)** जीव **(यन्ति)** प्राप्त करते हैं॥५॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- अत्र श्लेषालङ्कारः। ईश्वरेण सर्वेषां जीवानामुपरि कृपां कृत्वा कर्मानुसारेण फलदानाय सर्वं कार्य्यं जगद्रच्यते पवित्रीयते चैवं पवित्रकारकौ सूर्य्यपवनौ च, तेन हेतुना सर्वे जडाः पदार्था जीवाश्च पवित्राः सन्ति। परन्तु ये मनुष्याः पवित्रगुणकर्मग्रहणे पुरुषार्थिनो भूत्वैतेभ्यो यथावदुपयोगं गृहीत्वा ग्राहयन्ति, त एव पवित्रा भूत्वा सुखिनो भवन्ति॥५॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। ईश्वर ने सब जीवों पर कृपा करके उनके कर्मों के अनुसार यथायोग्य फल देने के लिये सब कार्य्यरूप जगत् को रचा और पवित्र किया है और पवित्र करने करानेवाले सूर्य्य और पवन को रचा है। उसी हेतु से सब जड़ पदार्थ वा जीव पवित्र होते हैं। परन्तु जो मनुष्य पवित्र गुणकर्मों के ग्रहण से पुरुषार्थी होकर संसारी पदार्थों से ठीक प्रकार से उपयोग लेकर ग्रहण करते हैं, वे ही पवित्र होकर सुखी होते हैं॥५॥

(ऋग्वेद ०१.०५.०५)

ऋषिः - मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रःदेवता - इन्द्रःछन्दः - निचृद्गायत्रीस्वरः - षड्जः।

त्वं सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः।

इन्द्र ज्यैष्ठ्याय सुक्रतो॥

स्वर सहित पद पाठ

त्वम्। सुतस्य। पीतये। सद्यः। वृद्धः। अजायथाः। इन्द्र। ज्यैष्ठ्याय। सुक्रतो इति सुऽक्रतो॥

विषय(भाषा)- ईश्वर ने जीव जिस करके पूर्वोक्त उपयोग के ग्रहण करने को समर्थ होते हैं, इस विषय को इस मन्त्र में कहा है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- हे इन्द्र सुक्रतो विद्वन् मनुष्य ! त्वं सद्यः सुतस्य पीतये ज्यैष्ठ्याय वृद्धो अजायथाः॥६॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(इन्द्र)** विद्या आदि से परमैश्वर युक्त, **(सुक्रतो)** श्रेष्ठ कर्म और उत्तम बुद्धि वाले **(विद्वन्)** विद्वान् **(मनुष्य)** मनुष्य ! **(त्वम्)** तुम **(सद्यः)** आज ही **(सुतस्य)** उत्पन्न संसारी पदार्थों के रस के **(पीतये)** पान या ग्रहण के लिए **(ज्यैष्ठड्ढाय)** अत्युत्तम कर्मों के अनुष्ठान करने के लिये **(वृद्धः)** विद्या आदि शुभ गुणों के ज्ञान के ग्रहण करने और सबके उपकार करने में श्रेष्ठ **(अजायथा)** हो जाओ॥६॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- जीवायेश्वरोपदिशति-हे मनुष्य ! यावत्त्वं न विद्यावृद्धो भूत्वा सम्यक् पुरुषार्थं परोपकारं च करोषि, नैव तावन्मनुष्यभावं सर्वोत्तमसुखं च प्राप्स्यसि, तस्मात्त्वं धार्मिको भूत्वा पुरुषार्थी भव॥६॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- ईश्वर जीव के लिये उपदेश करता है कि-हे मनुष्य ! तू जबतक विद्या में वृद्ध होकर अच्छी प्रकार परोपकार न करेगा, तब तक तुझको मनुष्यपन और सर्वोत्तम सुख की प्राप्ति कभी न होगी, इसलिये तू धार्मिक होकर पुरुषार्थ करनेवाला सदा हो॥६॥

(ऋग्वेद ०१.०५.०६)

ऋषिः - मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रःदेवता - इन्द्रःछन्दः - निचृद्गायत्रीस्वरः - षड्जः।

त्वा विशन्त्वाशवः सोमास इन्द्र गिर्वणः।

शं ते सन्तु प्रचेतसे॥

स्वर सहित पद पाठ

आ। त्वा। विशन्तु। आशवः। सोमासः। इन्द्र। गिर्वणः। शम्। ते। सन्तु। प्रऽचेतसे॥

विषय(भाषा)- उक्त काम के आचरण करनेवाले जीव को आशीर्वाद कौन देता है, इस बात का प्रकाश इस मन्त्र में किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- हे धार्मिक गिर्वण इन्द्र विद्वन् मनुष्य ! आशवः सोमासः त्वाम् आ विशन्तु, एवम् भूताय प्रचेतसे ते तुभ्यम् मत् अनुग्रहेण एते शं सन्तु सुखकारका भवन्तु॥७॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(धर्मिक)** धार्मिक **(गिर्वण)** प्रशंसा के योग्य कर्म करने वाले, **(इन्द्र)** विद्वान् **(मनुष्य)** मनुष्य! **(आशवः)** वेगादि गुण सहित सब क्रियाओं से व्याप्त हुए, **(सोमासः)** सब पदार्थ **(त्वाम्)** तुझ जीव को **(आ)** हर ओर से **(विशन्तु)** प्राप्त हों। **(एवम्)** ऐसे ही **(भूताय)** प्राणियों के लिये **(प्रचेतसे)** शुद्ध ज्ञान वाले **(ते)** तुझको **(मत्)** मेरे लिये **(अनुग्रहेण)** अनुग्रह से **(एते)** ये **(शम्)** सुख **(सन्तु)** हों, **(सुखकारका)**=सुख देने वाले **(भवन्तु)** हों।

भावार्थः(महर्षिकृतः)- ईश्वर ईदृशाय जीवायाशीर्वादं ददाति यदा यो विद्वान् परोपकारी भूत्वा मनुष्यो नित्यमुद्योगं करोति तदैव सर्वेभ्यः पदार्थेभ्यः उपकारं सङ्गृह्य सर्वान् प्राणिनः सुखयति, स सर्वं सुखं प्राप्नोति नेतर इति॥७॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- ईश्वर ऐसे मनुष्यों को आशीर्वाद देता है, जो मनुष्य विद्वान् परोपकारी होकर अच्छी प्रकार नित्य उद्योग करके उन सब पदार्थों से उपकार इकट्ठा ग्रहण करके सब प्राणियों को सुखयुक्त करता है, वही सदा सुख को प्राप्त होता है, अन्य कोई नहीं॥७॥

(ऋग्वेद ०१.०५.०७)

ऋषिः - मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रःदेवता - इन्द्रःछन्दः - पादनिचृद्गायत्रीस्वरः - षड्जः।

त्वां स्तोमा अवीवृधन्त्वामुक्था शतक्रतो।

त्वां वर्धन्तु नो गिरः॥

स्वर सहित पद पाठ

त्वाम्। स्तोमाः। अवीवृधन्। त्वाम्। उक्था। शतक्रतो इति शतऽक्रतो। त्वाम्। वर्धन्तु। नः। गिरः॥

विषय(भाषा)- ईश्वर ने उक्त अर्थ ही के प्रकाश करनेवाले इन्द्र शब्द का इस मन्त्र में भी प्रकाश किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- हे शतक्रतो बहुकर्मवन् बहुप्रज्ञेश्वर ! यथा स्तोमाः त्वाम् अवीवृधन् अत्यन्तम् वर्धयन्ति, यथा च त्वम् उक्थानि स्तुति साधकानि वर्धितानि कृतवान्, तथैव नो गिरः त्वाम् वर्धन्तु सर्वथा प्रकाशयन्तु॥८॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(शतक्रतो)** असंख्य कर्मों को करने और अनन्त विज्ञान वाले परमेश्वर! **(यथा)** जैसे (स्तोमाः) वेद के स्तोत्रों के समूह **(त्वाम्)** आपकी **(अवीवृधन्)** प्रतिष्टा को बढ़ाते हैं। **(अत्यन्तम्)** अनन्त विज्ञान वाले परमेश्वर **(च)** और **(यथा)** जैसे **(त्वम्)** तुम **(साधकानि)** साधक लोग **(उक्थानि)** वेद के स्तोत्रों को परिभाषित करने योग्य **(स्तुति)** स्तुतियों को **(वर्धितानि)** बढ़ाते हो, **(तथैव)** वैसे ही **(कृतवान्)** किये हुए **(नो)** हम **(गिरः)** वाणी से **(त्वाम्)** तुमको **(सर्वथा)** हर प्रकार से, **(वर्धन्तु)** महिमा से बढ़ायें और **(प्रकाशयन्तु)** प्रकाशित करें।

भावार्थः(महर्षिकृतः)- अत्र लुप्तोपमालङ्कारः। यथा ये विश्वस्मिन्पृथिवीसूर्य्यादयः सृष्टाः पदार्थाः सन्ति ते सर्वे सर्वकर्त्तारं परमेश्वरं ज्ञापयित्वा तमेव प्रकाशयन्ति, तथैतानुपकारानीश्वरगुणाँश्च सम्यग् विदित्वा विद्वांसोऽपीदृश एव कर्मणि प्रवर्त्तेरन्निति॥८॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- इस मन्त्र मेंलुप्तोपमालङ्कार है। जो विश्व में पृथिवी सूर्य्य आदि प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रचे हुए पदार्थ हैं, वे सब जगत् की उत्पत्ति करनेवाले तथा धन्यवाद देने के योग्य परमेश्वर ही को प्रसिद्ध करके जनाते हैं, जिससे न्याय और उपकार आदि ईश्वर के गुणों को अच्छी प्रकार जानके विद्वान् भी वैसे ही कर्मों में प्रवृत्त हों॥८॥

(ऋग्वेद ०१.०५.०८)

ऋषिः - मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रःदेवता - इन्द्रःछन्दः - निचृद्गायत्रीस्वरः - षड्जः।

अक्षि॑तोतिः सनेदि॒मं वाज॒मिन्द्रः॑ सह॒स्रिण॑म्।

यस्मि॒न्विश्वा॑नि॒ पौंस्या॑॥

स्वर सहित पद पाठ

अक्षि॑तऽऊतिः। स॒नेत्। इ॒मम्। वाज॑म्। इन्द्रः॑। स॒ह॒स्रिण॑म्। यस्मि॑न्। विश्वा॑नि। पौंस्या॑॥

विषय(भाषा)- वह जगदीश्वर हमारे लिये क्या करे, सो इस मन्त्र में वर्णन किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- अन्वय-यो अक्षितोतिः इन्द्रः परमेश्वरः अस्ति स यस्मिन् विश्वानि पौंस्यानि बलानि सन्ति तानि सनेत् संसेवयेत् अस्मत् अर्थम् इममं सहस्रिणम् वाजम् च, यतः वयम् सर्वाणि सुखानि प्राप्नुयाम॥९॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- (यः) जो **(अक्षितोतिः)** क्षयरहित रक्षा के ज्ञान वाला **(इन्द्रः)** सकल ऐश्वर्य युक्त परमेश्वर **(अस्ति)** है। **(स)** वह **(यस्मिन्)** जिसमें **(विश्वानि)** सब **(पौंस्या)** पुरुषार्थ से युक्त बल **(सन्ति)** हैं, **(तानि)** उनको **(सनेत्)** अच्छी तरह सेवन करायें। **(अस्मत्)** हमारे **(अर्थम्)** धन के **(च)** और **(इमम्)** इस असंख्य **(वाजम्)** पदार्थों के विशेष ज्ञान को **[प्राप्त करायें]**, **(यतः)** जिससे **(वयम्)** हम **(सर्वाणि)** सब **(सुखानि)** सुखों को **(प्राप्नुयाम)** प्राप्त हों।

भावार्थः(महर्षिकृतः)- वयं यस्य सत्तयेमे पदार्था बलवन्तो भूत्वा स्वस्य स्वस्य व्यवहारे वर्त्तन्ते, तेभ्यो बलादिगुणेभ्यो विश्वसुखार्थं पुरुषार्थं कुर्य्याम, सोऽस्मिन्व्यवहारेऽस्माकं सहायं करोत्विति प्रार्थ्यते॥९॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- जिसकी सत्ता से संसार के पदार्थ बलवान् होकर हम अपने-अपने व्यवहारों में लगे हैं, उन सब बल आदि गुणों से विश्व के सुख भोगने के लिये हम लोग पुरुषार्थ करें। वह हमारे व्यवहारों में हमारी सहायता करे, ऐसी प्रार्थना करते हैं॥९॥

(ऋग्वेद ०१.०५.०९)

ऋषिः - मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रःदेवता - इन्द्रःछन्दः - गायत्रीस्वरः - षड्जः।

मा नो मर्ता अभिद्रुहन्तनूनामिन्द्र गिर्वणः।

ईशानो यवया वधम्॥

स्वर सहित पद पाठ

मा। नः। मर्ताः। अभि। द्रुहन्। तनूनाम्। इन्द्र। गिर्वणः। ईशानः। यवय। वधम्॥

विषय(भाषा)- किसकी रक्षा से पुरुषार्थ सिद्ध होता है, इस विषय का प्रकाश ईश्वर ने इस मन्त्र में किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- हे गिर्वणः सर्वशक्तिमन् इन्द्र परमेश्वर ! ईशानः त्वम् नः अस्माकम् तनूनाम् वधम् मा यवय। इमे मर्त्ताः सर्वे प्राणिनः अस्मान् मा अभिद्रुहन् मा जिघामे सन्तु॥१०॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(गिर्वणः)** वेद या उत्तम-उत्तम शिक्षाओं से सिद्ध की हुई वाणियों द्वारा सेवा करने योग्य **(सर्वशक्तिमन्)** सर्वशक्तिमान् **(ईशानः)** अभिलषित **(इन्द्र)** परमेश्वर, **(त्वम्)** आप **(नः)** हमारे **(तनूनाम्)** शरीरों का **(वधम्)** नाश **(मा)** मत **(यवय)** कीजिये। **(इमे)** ये सब **(मर्त्ताः)** मरणधर्मी मनुष्य **[और]** **(सर्वे)** सब **(प्राणिनः)** प्राणी **(अस्मान्)** हमारे **(अभिद्रुहन्)** वैरी **(मा)** न **(सन्तु)** हों।

भावार्थः(महर्षिकृतः)- नैव कोऽपि मनुष्योऽन्यायेन कंचिदपि प्राणिनं हिंसितुमिच्छेत्, किन्तु सर्वैः सह मित्रतामाचरेत्। यथेश्वरः कंचिदपि नाभिद्रुह्यति, तथैव सर्वैर्मनुष्यैरनुष्ठातव्यमिति॥१०॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- कोई मनुष्य अन्याय से किसी प्राणी को मारने की इच्छा न करे, किन्तु परस्पर मित्रभाव से आचरण करें। जैसे परमेश्वर किसी से भी घृणा नहीं करता है, वैसे ही सब मनुष्यों को भी कार्यान्वित करना चाहिये॥१०॥

महर्षिकृतः सूक्तस्य भावार्थः- अनेन पञ्चमेन सूक्तेन मनुष्यैः कथं पुरुषार्थः कर्त्तव्यः सर्वोपकारश्चेति चतुर्थेन सूक्तेन सह सङ्गतिरस्तीति विज्ञेयम्॥१०॥

सूक्त के भावार्थ का भाषानुवाद- इस पाँचवें सूक्त के द्वारा मनुष्यों को कैसे पुरुषार्थ और सर्वोपकार करना चाहिये, इसकी चौथे सूक्त से सङ्गति जाननी चाहिये॥१०॥

महर्षिकृत विलसन और सायण भाष्य पर टिप्पणी- इदमपि सूक्तं सायणाचार्य्यादिभिर्विलसनाख्यादिभिश्चान्यथार्थं वर्णितम्॥१०॥

महर्षिकृत विलसन और सायण भाष्य पर टिप्पणी का भाषानुवाद-इस सूक्त का भी सायणाचार्य आदि और डाक्टर विलसन आदि साहबों ने भिन्न तरीके से अर्थ किया है॥१०॥

(ऋग्वेद ०१.०५.१०)

अथ प्रथमं मण्डलम्

[३६] षट्त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः - कण्वो घौरः देवता-अग्निः छन्दः-भुरिगनुष्टुप्स्वरः - गान्धारः।

प्र वो॑ य॒ह्वं पु॑रू॒णां वि॒शां दे॑वय॒तीना॑म्।

अ॒ग्निं सू॒क्तेभि॒र्वचो॑भिरीमहे॒ यं सी॒मिद॒न्य ईळ॑ते॥

स्वर सहित पद पाठ

प्र। व॒ः। य॒ह्वम्। पु॒रू॒णाम्। वि॒शाम्। दे॒व॒ऽय॒तीना॑म्। अ॒ग्निम्। सु॒ऽउ॒क्तेभिः॑। वचः॑ऽभिः। ई॒म॒हे॒। यम्। सी॒म्। इत्। अ॒न्ये। ईळ॑ते॥

विषय(भाषा)- अब छत्तीसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके पहले मंत्र में अग्निशब्द से ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- वयम् यथा अन्ये विद्वांसः सूक्तेभिः वचोभिः देवयतीनाम् पुरूणाम् वः युष्माकम् विशाम् प्रजानाम् सुखाय यम् यह्वम् अग्निम् सीम् ईडते तथा तम् इत् एव प्रेमहे प्रकृष्टतया याचामहे प्रकाशयामः च॥१॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- **(वयम्)** हम लोग **(यथा)** जैसे **(अन्ये)** अन्य परोपकारी धर्मात्मा **(विद्वांसः)** विद्वान् लोग **(सूक्तेभिः)** जिनमें अच्छे प्रकार से विद्या कही गयीं, हैं उन **(वचोभिः)** वेद के अर्थ और ज्ञानयुक्त वचनों से **(देवयतीनम्)** अपने लिये दिव्यभोग वा दिव्यगुणों की इच्छा करनेवाले **(वः)** तुम **(पुरूणाम्)** बहुत लोगों के **(विशाम्)** प्रजा लोगों के बीच में **(प्रजानाम्)** प्रजा के **(सुखाय)** सुख के लिये **(यम्)** कहे गये **(यह्वम्)** श्रेष्ठ गुणों का और **(अग्निम्)** परमेश्वर की **(सीम्)** हर ओर से **(ईळते)** स्तुति करते हैं। **(तथा)** वैसे ही **(तम्)** उस [परमेश्वर] की **(इत्)** ही **(प्र)** अच्छे प्रकार से **(ईमहे)** हम स्तुति करते हैं [और उसके] **(प्रकाशयामः)** गुणों का प्रकाश **(च)** भी करते हैं॥१॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्या यूयं यथा विद्वांसः प्रजासुखसंपत्तये सर्वव्यापिनं परमेश्वरं निश्चित्योपदिश्य च तद्गुणान् प्रयत्नेन विज्ञापयंति स्तावयंति तथैव वयमपि प्रकाशयामः। यथेश्वरोऽग्न्यादिपदार्थरचनपालनाभ्यां जीवेषु सर्वाणि सुखानि दधाति तथा वयमपि सर्वप्राणिसुखानि सदा निर्वर्त्तयेमेति बुध्यध्वम्॥१॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो जैसे तुम लोग पूर्ण विद्यायुक्त विद्वान् लोग प्रजा के सुख की संपत्ति के लिये सर्वव्यापी परमेश्वर का निश्चय तथा उपदेश करके प्रयत्न से जानते हैं, वैसे ही

हम लोग भी उसके गुण प्रकाशित करें। जैसे ईश्वर अग्नि आदि पदार्थों के रचने और पालन से जीवों में सब सुखों को धारण करता है, वैसे हम लोग भी सब प्राणियों के लिये सदा सुख वा विद्या को सिद्ध करते रहें ऐसा जानों॥१॥

(ऋग्वेद ०१.३६.०१)

ऋषि: - कण्वो घौरःदेवता - अग्निःछन्दः - निचृत्सतः पङ्क्तिस्वरः- पञ्चमः।

जनासो अग्निं दधिरे सहोवृधं हविष्मन्तो विधेम ते।
स त्वं नो अद्य सुमना इहाविता भवा वाजेषु सन्त्य॥

स्वर सहित पद पाठ

जनासः। अग्निम्। दधिरे। सहःऽवृधम्। हविष्मन्तः। विधेम। ते। सः। त्वम्। नः। अद्य। सुऽमनाः। इह। अविता। भव। वाजेषु। सन्त्य॥

विषय(भाषा)- फिर भी इस मन्त्र में उक्त विषय का उपदेश किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- हे सन्त्य ईश्वर यथा हविष्मन्तः जनासः यस्य ते तव आश्रयम् दधिरे तथा तम् सहोवृधम् अग्निम् त्वाम् वयम् विधेम स सुमनाः त्वम् अद्य नः अस्माकम् इह वाजेषु च अविता भव॥२॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(संत्य)** अच्छे व्यवहार वाले को देने हेतु पूर्ण ज्ञान रखने वाले **(ईश्वर)** ईश्वर! **(यथा)** जैसे **(हविष्मन्तः)** घृत, अन्न आदि वस्तुओं को देने और लेने के योग्य **(जनासः)** विद्या में प्रसिद्ध हुए विद्वान् लोग **(यस्य)** जिस **(ते)** आपका **(आश्रयम्)** आश्रय **(दधिरे)** धारण करते हैं, **(तथा)** वैसे ही **(तम्)** उस **(सहोवृधम्)** बल को बढ़ानेवाले **(अग्निम्)** सबकी रक्षा करने वाले, ईश्वर **(त्वाम्)** आपका **(वयम्)** हम **(विधेम)** सेवन करें। **(सः)** ईश्वर **(सुमनाः)** जिसका मनोज्ञान शोभन है, ऐसे **(त्वम्)** सर्वदा प्रसन्न रहने वाले **(अद्य)** आज के ही दिन **(नः)** हमें **(इह)** इस संसार में **(च)** और **(वाजेषु)** युद्धों में **(अविता)** रक्षक के रूप में जानी गई सब विद्याओं में प्रवेश करानेवाले **(भव)** हूजिये॥२॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- मनुष्यैरेकस्याद्वितीयपरमेश्वरस्योपासनेनैव संतोषितव्यं नहि विद्वांसः कदाचिद् ब्रह्मस्थानेऽन्यद्वस्तूपास्यत्वेन स्वीकुर्वन्ति। अत एव तेषां युद्धेष्विह कदाचित् पराजयो न दृश्यते। एवं नहि कदाचिदनीश्वरोपासकास्तान् विजेतुं शक्नुवन्ति येषामीश्वरो रक्षकोस्ति कुतस्तेषां पराभवः॥२॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- मनुष्यों को एक अद्वितीय परमेश्वर की उपासना ही से सन्तुष्ट रहना चाहिये क्योंकि

विद्वान् लोग परमेश्वर के स्थान में अन्य वस्तु को उपासना भाव से स्वीकार कभी नहीं करते इसी कारण उनका युद्ध वा इस संसार में कभी पराजय दिखाई नहीं पड़ता क्योंकि वे धार्मिक ही होते हैं और इसी से ईश्वर की उपासना नहीं करने वाले उनको जीतने में समर्थ नहीं होते हैं, क्योंकि ईश्वर जिनकी रक्षा करने वाला है उनका कैसे पराजय हो सकता है॥२॥

(ऋग्वेद ०१.३६.०२)

ऋषिः- कण्वो घौरः देवता - अग्निः छन्दः- निचृत्पथ्याबृहती स्वरः- मध्यमः।

प्र त्वा॑ दू॒तं वृ॑णीमहे॒ होता॑रं वि॒श्ववे॑दसम्।

म॒हस्ते॑ स॒तो वि च॑रन्त्य॒र्चयो॑ दि॒वि स्पृ॑शन्ति भा॒नवः॑॥

स्वर सहित पद पाठ

प्र। त्वा॒। दू॒तम्। वृ॒णी॒म॒हे॒। होता॑रम्। वि॒श्वऽवे॑दसम्। म॒हः। ते॒। स॒तः। वि। च॒र॒न्ति॒। अ॒र्चयः॑। दि॒वि। स्पृ॒श॒न्ति॒। भा॒नवः॑॥

विषय(भाषा)- अब इस मन्त्र में भौतिक अग्नि के दृष्टान्त से राजदूत के गुणों का उपदेश किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- हे विद्वन् राजदूत यथा वयम् विश्ववेदसम् होतारम् दूतम् अग्निम्म् प्र वृणीमहे तथाभूतम् त्वा त्वाम् अपि प्र वृणीमहे यथा च महः महसः सतःअग्नेः भानवः सर्वान् पदार्थान् स्पृशन्ति सम्बध्नन्ति अर्चयः दिवि विचरन्ति च तथा ते तव अपि सन्तु॥३॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(विद्वन्)** विद्वान् **(राजदूत)** राजदूत ! **(यथा)** जैसे **(वयम्)** हम **(विश्ववेदसम्)** सब शिल्पविद्या को जाननेवाले **(होतारम्)** ग्रहण करने और **(दूतम्)** सब पदार्थों को तपाने वाले **(अग्निम्)** अग्नि को **(प्र)** विशेष प्रकार से **(वृणीमहे)** स्वीकार करते हैं। **(तथा)** वैसे ही **(भूतम्)** तत्त्व **(त्वा)** तुमको **(अपि)** भी **(प्र)** विशेष प्रकार से **(वृणीमहे)** ग्रहण करते हैं **(च)** और **(यथा)** जैसे **(महः)** विशिष्ट महागुणों के **(सतः)** कारणरूप से विद्यमान अविनाशी **(अग्नेः)** अग्नि की **(भानवः)** किरणों का प्रभाव **(सर्वान्)** सब **(पदार्थान्)** पदार्थों से **(स्पृशन्ति)** सम्बन्ध रखते हैं और **(वि)** विशेष रूप से **(दिवि)** द्योतनात्मक सूर्य के प्रकाश में **(अर्चयः)** चमकते हुए **(चरन्ति)** प्राप्त होते हैं **(च)** और **(तथा)** ऐसे ही **(ते)** आप **(अपि)** भी **(सन्तु)** होवें॥३॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे स्वकर्मप्रवीण राजदूत यथा सर्वैर्मनुष्यैर्महाप्रकाशादिगुणयुक्तमग्निं पदार्थप्राप्त्यप्राप्त्योः कारकत्वाद्दूतं कृत्वा शिल्पकार्याणि वियदि हुतद्रव्यप्रापणं च साधयित्वा सुखानि स्वीक्रियन्ते यथाऽस्य विद्युद्रूपास्याग्नेर्दीप्तयः सर्वत्र वर्त्तन्ते प्रसिद्धस्य

लघुत्वाद्वायोश्छेदकत्वेनावकाशकारित्वाज्ज्वाला उपरि गच्छन्ति तथा त्वमपीदं कृत्वैवं भव॥३॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे अपने काम में प्रवीण राजदूत जैसे सब मनुष्य महा प्रकाश आदि गुणयुक्त अग्नि को पदार्थों की प्राप्ति वा अप्राप्ति के कारण दूत के समान जान और शिल्प कार्यों को सिद्ध करके सुखों को स्वीकार करते हैं और जैसे इस बिजली रूप अग्नि की दीप्ति सब जगह रहती हैं और प्रसिद्ध अग्नि की दीप्ति छोटी होने तथा वायु के छेद करने वाले होने से अवकाश करने वाली होकर ज्वाला ऊपर जाती है वैसे तू भी अपने कामों में प्रवृत्त हो॥३॥

(ऋग्वेद ०१.३६.०३)

ऋषिः - कण्वो घौरःदेवता - अग्निःछन्दः - निचृत्पङ्क्तिस्वरः - पञ्चमः।

दे॒वास॑स्त्वा॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॑र्य॒मा सं दू॒तं प्र॒त्नमि॑न्धते।
विश्वं॒ सो अ॑ग्ने जयति॒ त्वया॒ धनं॒ यस्ते॑ द॒दाश॒ मर्त्यः॑॥

स्वर सहित पद पाठ

दे॒वासः॑। त्वा॒। वरु॑णः। मि॒त्रः। अ॒र्य॒मा। सम्। दू॒तम्। प्र॒त्नम्। इ॒न्ध॒ते। विश्व॑म्। सः। अ॒ग्ने॒। ज॒य॒ति॒। त्वया॑। धन॑म्। यः। ते॒। द॒दाश॑। मर्त्यः॑॥

विषय(भाषा)- फिर वह दूत कैसा है, इस विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- हे अग्ने सभेश यः ते दूतः मर्त्यः धनम् ददाश यः त्वया सह शत्रून् जयति मित्रः वरुणः अर्यमा देवासः यम् दूतम् सम् इन्धते यः त्वा त्वाम् प्रजान् च प्रीणाति स प्रत्नम् विश्वम् राज्यम् रक्षितुम् अर्हति॥४॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(अग्ने)** धर्म, विद्या और श्रेष्ठ गुणों से प्रकाशमान सभापते ! **(यः)** जो **(ते)** आपका **(दूतः)** दूत **(मर्त्यः)** मनुष्य **(धनम्)** विद्या, सुवर्ण आदि धनों को **(ददाश)** देता है और **(यः)** जो **(त्वया)** आपके **(सह)** साथ **(शत्रून्)** शत्रुओं को **(जयति)** जीतता है, वह **(मित्रः)** मित्र समान सुहृद और प्रदानकर्ता है, **(वरुणः)** उत्कृष्ट **(अर्य्यमा)** न्यायकारी **(देवासः)** सभ्य और विद्वान् है। **(यम्)** जो **(दूतम्)** शत्रुओं को समान रूप से परेशान करता है और **(सम्)** समान रूप से **(यः)** जिसके **(इन्धते)** शुभगुण प्रकाशित होते हैं, उस **(त्वा)** आपकी **(प्रजान्)** प्रजायें **(च)** भी **(प्रीणाति)** सन्तुष्ट होती हैं। **(सः)** वह **(प्रत्नम्)** कारण रूप से आदि है और **(विश्वम्)** समस्त **(राज्यम्)** राज्य की **(रक्षितुम्)** रक्षा के **(अर्हति)** योग्य है॥४॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- नहि केचिदपि सर्वशास्त्रविशारदै राजधर्मवित्तमैः परावरज्ञैर्धार्मिकैः प्रगल्भैः शूरैर्दूतैः सराजभिः सभासद्भिश्च विना राज्यं लब्धुं रक्षितुमुन्नेतुमुपकर्त्तुं शक्नुवंति तस्मादेवमेव सर्वैः सदा विधेयमिति॥४॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- कोई भी मनुष्य सब शास्त्रों में प्रवीण राजधर्म [राजाओं से संबंधित नियम या कानून] को ठीक-ठीक जानने, पर अपर इतिहासों के वेत्ता, धर्मात्मा, निर्भयता से सब विषयों के वक्ता, शूरवीर दूतों और उत्तम राजा सहित सभासदों के विना राज्य को पाने, पालने, बढ़ाने और परोपकार में लगाने को समर्थ नहीं हो सकते इससे पूर्वोक्त प्रकार ही से राज्य की प्राप्ति आदि का विधान सब लोग सदा किया करें॥४॥

(ऋग्वेद ०१.३६.०४)

ऋषिः - कण्वो घौरःदेवता - अग्निःछन्दः - निचृद्बृहतीस्वरः - मध्यमः।

म॒न्द्रो होता॑ गृ॒हप॑ति॒रग्ने॑ दू॒तो वि॒शाम॑सि।
त्वे विश्वा॒ संग॑तानि व्र॒ता ध्रु॒वा यानि॑ दे॒वा अकृ॑ण्वत॥

स्वर सहित पद पाठ

म॒न्द्रः। होता॑। गृ॒हऽप॑तिः। अग्ने॑। दू॒तः। वि॒शाम्। अ॒सि॒। त्वे इति॑। विश्वा॑। सम्ऽग॑तानि। व्र॒ता। ध्रु॒वा। यानि॑। दे॒वाः। अकृ॑ण्वत॥

विषय(भाषा)- फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश इस मन्त्र में किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- हे अग्ने यतः त्वम् मन्द्रः होता गृहपतिः दूतः विशाम् पतिः असि तस्मात् सर्वा प्रजा यानि विश्वा ध्रुवा संगतानि व्रता धर्म्याणि कर्माणि देवा अकृण्वत तानि त्वे सततम् सेवन्ते॥५॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(अग्ने)** शरीर के बल से तीव्रता से चमकनेवाले! **(यतः)** जिससे **(त्वम्)** आप **(मन्द्रः)** पदार्थों की प्राप्ति करने से सुख के हेतु हैं, **(होता)** सुखों के दाता, **(गृहपतिः)** गृह कार्यों का पालन करने वाले, **(दूतः)** दुष्ट शत्रुओं को तप्त और छेदन करनेवाले **(विशाम्)** और प्रजाओं के **(पतिः)** स्वामी **(असि)** हो। **(तस्मात्)** इसलिये **(सर्वा)** समस्त **(प्रजा)** प्रजा **(यानि)** जिन **(विश्वा)** सब **(ध्रुवा)** निश्चल **(संगतानि)** धर्म के व्यवहार में लगे हुए, **(व्रता)** सत्य आचरण के कर्मों को **(धर्म्याणि)** धर्म और **(कर्माणि)** कर्म करने वाले **(देवाः)** जो विद्वान् लोग **(अकृण्वत)** करते हैं। **(तानि)** उन **(त्वे)** आपके राज्य पालक होने पर **(सततम्)** निरन्तर **(सेवन्ते)** पूजन करते हैं॥५॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- सुराजदूतसभासद एव राज्यं रक्षितुमर्हन्ति न विपरीताः॥५॥ इत्यष्टमो वर्गः ॥८॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- जो प्रशस्त राजा, दूत और सभासद् होते हैं वे ही राज्य का पालन कर सकते हैं इनसे विपरीत मनुष्य नहीं कर सकते ॥५॥

(ऋग्वेद ०१.३६.०५)

ऋषिः - कण्वो घौरः देवता - अग्निः छन्दः - भुरिग्बृहतीस्वरः - मध्यमः।

त्वे इद॑ग्ने सु॒भगे॑ यविष्ठ्य॒ विश्व॒माहू॑यते ह॒विः ।
स त्वं नो॑ अ॒द्य सु॒मना॑ उ॒तापरं॑ यक्षि॑ दे॒वान्त्सु॒वीर्या॑ ॥

स्वर सहित पद पाठ

त्वे । इत् । अ॒ग्ने॒ । सु॒भगे॑ । य॒वि॒ष्ठ्य॒ । विश्व॑म् । आ । हू॒य॒ते॒ । ह॒विः । सः । त्वम् । नः॒ । अ॒द्य । सु॒ऽमनाः॑ । उ॒त । अ॒प॒रम् । यक्षि॑ । दे॒वान् । सु॒ऽवीर्या॑ ॥

विषय(भाषा)- अब अग्नि के दृष्टान्त में राजपुरुषों के गुणों का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- हे यविष्ठ्या अग्ने यथा होत्रा अग्नौ विश्वम् हविः आहूयते यस्मिन् सुभगे त्वे त्वयि सर्वो न्यायः अस्माभिः अधिक्रियते स सुमनाः त्वम् अद्य उत् अपि अपि अपरम् दिनम् प्रति नः अस्मान् सुवीर्या श्रेष्ठपराक्रमयुक्तान् देवान् यक्षि संगमय ॥६॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(यविष्ठ्य)** जो पदार्थों का पूरा उपयोग करने के लिए उन्हें मिलाते हुए तेजी से तैयार करता है **(अग्ने)** सुख प्रदान करने वाला और सभा का स्वामी है। **(यथा)** जैसे **(होत्रा)** आहुति करते हुए, **(अग्नौ)** अग्नि में **(विश्वम्)** सब **(हविः)** अच्छी तरह से शुद्ध की हुई सामग्री **(आ)** अच्छी तरह से **(हूयते)** दी जाती हैं। **(यस्मिन्)** जिस **(सुभगे)** शोभनीय ऐश्वर्य में **(त्वे)** तुम्हारे द्वारा **(सर्वो)** सब जिस तरीके से और **(अस्माभिः)** हमारे द्वारा **(अधिक्रियते)** अनुकूल किये जाते हैं। **(सः)** वह तुम **(सुमनाः)** जिसका मन विशेष ज्ञानवाला और शोभनीय है। **(त्वम्)** तुम **(उत)** भी **(अद्य)** आज ही के दिन **(अपरम्)** कल के दिन के लिये **(नः)** हमें **(सुवीर्या)** जिन के शोभनीय तेज हैं और जो **(श्रेष्ठपराक्रमयुक्तान्)** श्रेष्ठ पराक्रम युक्त, **(देवान्)** विद्वान् हैं, उनकी **(यक्षि)** संगति दीजिये ॥६॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा विद्वांसो वन्हौ शुद्धं हव्यं द्रव्यं प्रक्षिप्य जगते सुखं जनयंति

तथैव राजपुरुषा दुष्टान् कारागृहे प्रक्षिप्य धार्मिकेभ्य आनन्दं प्रादुर्भावयन्तु ॥६॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् लोग अग्नि में पवित्र होम करके योग्य घृतादि पदार्थों को होम के संसार के लिये सुख उत्पन्न करते हैं वैसे ही दुष्टों को बन्दीघर में डाल के सज्जनों को आनन्द सदा दिया करें ॥६॥

(ऋग्वेद ०१.३६.०६)

ऋषिः - कण्वो घौरः देवता - अग्निः छन्दः – बृहतीस्वरः- मध्यमः।

तं घे॑मि॒त्था न॑म॒स्विन॒ उप॑ स्व॒राज॑मासते।

होत्रा॑भिर॒ग्निं मनु॑षः॒ समि॑न्धते तिति॒र्वांसो॒ अति॒ स्रिधः॑ ॥

स्वर सहित पद पाठ

तम् । घ॒ । ई॒म् । इ॒त्था । न॒म॒स्विनः॑ । उप॑ । स्व॒ऽराज॑म् । आ॒स॒ते॒ । होत्रा॑भिः । अ॒ग्निम् । मनु॑षः । सम् । इ॒न्ध॒ते॒ । ति॒ति॒र्वांसः॑ । अति॑ । स्रिधः॑ ॥

विषय(भाषा)- फिर उसी अर्थ का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- ये नमस्विनः मनुषः होत्राभिः तम् स्वराजम् अग्निम् सभाध्यक्षम् घ उप आसते सम् इन्धते च ते अति स्रिधः तितिर्वांसः भवेयुः ॥७॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- **(ये)** जो लोग, **(नमस्विनः)** जिनके पास शस्त्रों का समूह है, उनका सत्कार है। **(मनुषः)** मनुष्याः=मनुष्य, **(होत्राभिः)** हवन की सत्य क्रिया के द्वारा **(तम्)** उस प्रधान सभाध्यक्ष **(स्वराजम्)** अपने इस राजा और **(अग्निम्)** ज्ञानस्वरूप **(सभाध्यक्षम्)** सभाध्यक्ष की **(घ)** ही **(उप)** समीपता में **(आसते)** बैठते हैं, **(च)** और **(सम्)** सम्यक् रूप से **(इन्धते)** प्रकाशित होते हैं। **(ते)** आप **(अति)** अतिशय **(स्रिधः)** क्षय करने वाले हिंसक शत्रुओं को **(तितिर्वांसः)** अच्छे प्रकार तैर कर पार **(भवेयुः)** हो जावें॥७॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- न खलु सभाध्यक्षोपासकैः सभासद्भिर्भृत्यैर्विना कश्चिदपि स्वराजसिद्धिं प्राप्य शत्रून् विजेतुं शक्नोति ॥७॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- कोई भी मनुष्य सभाध्यक्ष की उपासना करने वाले भृत्य और सभासदों के विना

अपने राज्य की सिद्धि को प्राप्त होकर शत्रुओं से विजय को प्राप्त नहीं हो सकता ॥७॥

(ऋग्वेद ०१.३६.०७)

ऋषिः - कण्वो घौरःदेवता - अग्निःछन्दः - स्वराड्बृहतीस्वरः - मध्यमः।

घ्नन्तो॑ वृ॒त्रम॑तर॒न्रोद॑सी अ॒प उ॒रु क्षया॑य चक्रिरे।

भुव॒त्कण्वे॒ वृषा॑ द्यु॒म्न्याहु॑तः॒ क्रन्द॒दश्वो॒ गवि॑ष्टिषु ॥

स्वर सहित पद पाठ

घ्नन्तः॑। वृ॒त्रम्। अ॒त॒र॒न्। रोद॑सी॒ इति॑। अ॒पः। उ॒रु। क्षया॑य। च॒क्रि॒रे। भुव॑त्। कण्वे॑। वृषा॑। द्यु॒म्नी। आऽहु॑तः। क्रन्द॑त्। अश्वः॑। गोऽइ॑ष्टिषु॥

विषय(भाषा)- फिर भी पूर्वोक्त विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- राजपुरुषाः विद्युत् सूर्यकिरणाः वृत्रम् इव शत्रुदलम् घ्नन्तः रोदसी अतरन् अपः कुर्युः तथा गविष्टिषु क्रन्दत् अश्वः इव आहुतः वृषा सन् उरु क्षयाय कण्वे द्युम्नी ददत् अभवत् ॥८॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- (राजपुरुषाः) राजपुरुष **(विद्युत्)** बिजली **(सूर्यकिरणाः)** सूर्य्य की किरण, **(वृत्रम्)** मेघ जैसे **(शत्रुदलम्)** शत्रुदल को **(घ्नन्तः)** शत्रु को मारते हुए विद्युत् सूर्य की किरणों के समान सेनापति आदि **(रोदसी)** द्यावा और पृथिवी को **(अतरन्)** पार करते हुए **(अपः)** ऐसे कर्मों को **(कुर्युः)** करें। **(तथा)** वैसे ही, **(गविष्टिषु)** गाय, पृथिवी आदि को इष्ट की प्राप्ति की इच्छा में **(क्रन्दत्)** हिनहिनाने का शब्द करते हुए **(अश्वः)** घोड़े के समान **(आहुतः)** सभा के अध्यक्ष के द्वारा स्वीकृत **(वृषा+सन्)** जो सुख की वृष्टि करते हुए **(उरु)** बड़े **(क्षयाय)** निवास के लिये **(कण्वे)** शिल्पविद्या के विद्वानों, **(द्युम्नी)** जिनके बहुत प्रकार के वैभव, ऐश्वर्य, शक्ति और धन होते हैं, **(अभवत्)** ऐसे हों ॥८॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- यथा विद्युद्भौतिकसूर्याग्नयो मेघं छित्त्वा वर्षयित्वा सर्वान् लोकान् जलेन पूरयन्ति तत् कर्म प्राणिनां चिरसुखाय भवत्येवं सभाध्यक्षादिभी राजपुरुषैः कण्टकरूपाञ्छत्रूञ् हत्वा प्रजाः सततं तर्पणीयाः ॥८॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- जैसे बिजली, भौतिक और सूर्य, यही तीन प्रकार के अग्नि मेघ को छिन्न-भिन्न कर सब लोकों को जल से पूर्ण करते हैं और उनका युद्ध कर्म सब प्राणियों के बड़े निवास के लिये होता है। वैसे ही सभाध्यक्ष आदि राजपुरुषों को चाहिये कि कण्टकरूप शत्रुओं को मारके प्रजा को निरन्तर तृप्त करें ॥८॥

(ऋग्वेद ०१.३६.०८)

ऋषि: - कण्वो घौरःदेवता - अग्निःछन्दः - निचृदुपरिष्टाद् बृहतीस्वरः - मध्यमः।

सं सीदस्व महाँ असि शोचस्व देववीतमः।

वि धूममग्ने अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम्॥

स्वर सहित पद पाठ

सम्। सीदस्व। महान्। असि। शोचस्व। देवऽवीतमः। वि। धूमम्। अग्ने। अरुषम्। मियेध्य। सृज। प्रऽशस्त। दर्सतम्॥

विषय(भाषा)- अब इस मंत्र में सभापति के गुणों का उपदेश किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- हे तेजस्विन् मियेध्या अग्ने सभापते यः त्वम् महान् असि स सभापते देववीतमः सन् न्याये सम् सीदस्व शोचस्व हे प्रशस्त राजन् त्वम् अत्र वि धूमम् दर्शतम् अरुषम् सृज उत्पादय॥९॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(तेजस्विन्)** तेजस्वी [और] **(मियेध्य)** मेधावी **(अग्ने)** सभापति! **(यः)** जो **(त्वम्)** तुम **(महान्)** महान् विशिष्ट गुण वाले **(असि)** हो। **(सः)** वह (सभापते) सभापति **(देववीतमः+सन्)** देवों, पृथिवी आदि में व्याप्त हैं और देव और विद्वान् इसी में व्याप्त होते हुए [यह] **(न्याये)** सम्यक रूप से **(सीदस्व)** दोषों को समाप्त करता है। हे **(प्रशस्त)** प्रशंसनीय **(राजन्)** राजा! **(त्वम्)** तुम **(अत्र)** यहाँ **(वि)** विशेष रूप से **(धूमम्)** धुएँ के समान मल रहित **(दर्शतम्)** दिखने के योग्य हो। **(अरुषम्)** सुन्दर रूप से युक्त [सृष्टि आदि] को **(सृज)** उत्पन्न कीजिये॥९॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- मेधाविनो राजपुरुषा अग्निवत् तेजस्विनो महागुणाढ्या भूत्वा दिव्यगुणानां पृथिव्यादिभूतानां तत्त्वं विज्ञाय प्रकाश मानाः सन्तो निर्मलं दर्शनीयं रूपमुत्पादयेयुः॥९॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- प्रशंसित बुद्धिमान् राज पुरुषों को चाहिये कि अग्नि समान तेजस्वी और बड़े-बड़े गुणों से युक्त हों और श्रेष्ठ गुणवाले पृथिवी आदि भूतों के तत्त्व को जान करके प्रकाशमान होते हुए निर्मल देखने योग्य स्वरूपयुक्त पदार्थों को उत्पन्न करें॥९॥

(ऋग्वेद ०१.३६.०९)

ऋषि: - कण्वो घौरःदेवता - अग्निःछन्दः-निचृद्विष्टारपङ्क्ति स्वरः-पञ्चमः।

यं त्वा देवासो मनवे दधुरिह यजिष्ठं हव्यवाहन।

यं कण्वो मेध्यातिथिर्धनस्पृतं यं वृषा यमुपस्तुतः॥

स्वर सहित पद पाठ

यम् । त्वा । देवासः । मनवे । दधुः । इह । यजिष्ठम् । हव्यऽवाहन । यम् । कण्वः । मेध्यऽअतिथिः । धनऽस्पृतम् । यम् । वृषा । यम् । उपऽस्तुतः ॥

विषय(भाषा)- मनुष्य किस प्रकार के पुरुष को सभाध्यक्ष करें, इस विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- हे हव्यवाहन यम् यजिष्ठम् त्वा त्याम् देवासः मनवः इह दधुः दधति। यम् धनस्पृतम् त्वा त्वाम् मेध्यातिथिः कण्वः दधे। यम् त्वा त्वाम् वृषा दधे। यम् त्वा त्वाम् उपस्तुतः दधे तम् त्वाम् वयम् सभापतित्वेन अङ्गी कुर्महे ॥१०॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(हव्यवाहन)** हव्य को ग्रहण करने योग्य वस्तुओं की प्राप्ति करनेवाले [और] **(यजिष्ठम्)** अत्यधिक यज्ञ करनेवाले, **(त्वा)** आपको **(देवासः)** विद्वान् **(मनवे)** मनन योग्य राज शासन के लिये **(इह)** इस संसार में **(दधति)** धारण करते हैं, **(यम्)** जिस शिक्षित को **(धनस्पृतम्)** प्रसन्नतापूर्वक बचाये हुए धन, विद्या, सुवर्ण आदि धन से **(त्वा)** आप को **(मेध्यातिथिः)** यज्ञ के अतिथियों से युक्त अध्यापक और **(कण्वः)** प्रतिभाशाली, बुद्धिमान लोगों को **(दधे)** धारण करते हुए, **(यम्)** सुख की वर्षा करनेवाले, **(त्वा)** आप विद्या के वर्षक अर्थात् विद्या प्रदान करने वाले हैं। **(दधे)** धारण करने में **(यम्)** स्तुति के योग्य **(त्वा)** आप, **(उपस्तुतः)** समीप में स्थित सज्जनों की स्तुति करनेवाले को विद्वान् **(दधे)** धारण करते है। यज्ञ के अतिथियों से युक्त अध्यापक, प्रतिभाशाली, बुद्धिमान को **(दधे)** धारण करते हुए **(त्वाम्)** आप **(यम्)** सुख की वर्षा करने वाले, विद्या के वर्षक अर्थात् विद्या प्रदान करने वाले हैं। **(यम्)** जिस शिक्षित को, प्रसन्नतापूर्वक बचाये हुए धन, विद्या, सुवर्ण आदि धन से, **(त्वाम्)** आप को **(वयम्)** हम लोग **(सभापतित्वेन)** सभापति के **(अङ्गी)** से संबंधित अङ्ग के रूप में **(कुर्महे)** नियत करते हैं ॥१०॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- अस्मिञ्जगति सर्वैर्मनुष्यैर्विद्वांसोऽन्ये च श्रेष्ठपुरुषा मिलित्वा यं विचारशीलमादेयवस्तुप्रापकं शुभगुणाढ्यं विद्यासुवर्णादिधनयुक्तं सभ्यजनं राज्यशासनाय नियुञ्ज्युस्स, एव पितृवत्पालको राजा भवेत् ॥१०॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- इस सृष्टि में सब मनुष्यों को चाहिये कि विद्वान् और अन्य सबको चतुर पुरुष मिल के जिस विचारशील ग्रहण के योग्य वस्तुओं के प्राप्त करानेवाले शुभ गुणों से भूषित विद्या स्वर्ण आदि धन से युक्त सभा के योग्य पुरुष को राज्य शिक्षा के लिये नियुक्त करें। उसी पिता के तुल्य पालन करनेवाला जन राजा होवे ॥१०॥

(ऋग्वेद ०१.३६.१०)

ऋषि: - कण्वो घौरःदेवता - अग्निःछन्दः-निचृत्पथ्याबृहतीस्वरः- मध्यमः।

यमुग्निं मेध्यातिथिः कण्व ईध ऋतादधि।

तस्य प्रेषो दीदियुस्तमिमा ऋचस्तमग्निं वर्धयामसि॥

स्वर सहित पद पाठ

यम्। अग्निम्। मेध्यऽअतिथिः। कण्वः। ईधे। ऋतात्। अधि। तस्य। प्र। इषः। दीदियुः। तम्। इमाः। ऋचः। तम्। अग्निम्। वर्धयामसि॥

विषय(भाषा)- फिर सभाध्यक्षादि लोग अग्नि आदि पदार्थों से कैसे उपकार लेवें, इस विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- मेध्यातिथिः कण्वः ऋतात् अधि यम् अग्निम् ईधे तस्य इषः प्रदीदियुः इमाः ऋचः तम् वर्णयन्ति तम् एव अग्निम् राजपुरुषा वयम् शिल्पक्रियासिद्धये वर्धयामसि॥११॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- **(मेध्यातिथिः)** शिष्यों के समूह से युक्त पवित्र पूजक विद्वानों के द्वारा **(कण्वः)** विद्या को कुशलता से क्रियान्वित करने वाले और **(ऋतात्)** मेघमण्डल के उपर से उत्तर दिशा से **(अग्निम्)** अग्नि के जलाने के गुण से सब पदार्थों का छेदन करने वाले, **(अग्निम्)** सर्वत्र व्यापक अग्नि को **(ईधे)** प्रदीप्त करते हैं। **(तस्य)** उस अग्नि में **(इषः)** पहुँचाये गये किरणों से प्रदीप्त करते है। यह **(प्र)** श्रेष्ठ रूप से, **(दीदियुः)** प्रज्वलित होता है और **(इमाः)** जो प्रत्यक्ष **(ऋचः)** वेद मंत्र **(तम्)** यज्ञ के मुख्य साधन **(वर्णयन्ति)** वर्णित किये जाते हैं। **(तम्)** उन विद्युत् नाम से कहे गये, **(एव)** ऐसे **(अग्निम्)** अग्नि को **(वयम्)** हम **(राजपुरुषाः)** राजपुरुष **(शिल्पक्रियासिद्धये)** शिल्प क्रिया की सिद्धि के लिये **(वर्धयामसि)** बढ़ाते हैं॥११॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- सभाध्यक्षादिराजपुरुषैर्होत्रादयो विद्वांसो वायुवृष्टिशुद्ध्यर्थहवनाय यमग्निं दीपयन्ति यस्य रश्मय ऊर्ध्वं प्रकाशन्ते यस्य गुणान् वेदमन्त्रा वदन्ति स राजव्यवहारसाधकशिल्पक्रियासिद्धय एव वर्द्धनीयः॥११॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- सभाध्यक्ष आदि राजपुरुषों को चाहिये कि होता आदि विद्वान् लोग वायु वृष्टि के शोधक हवन के लिये जिस अग्नि को प्रकाशित करते हैं। जिसके किरण ऊपर को प्रकाशित होते और जिसके गुणों को वेदमंत्र कहते हैं, उसी अग्नि को राज्य साधक क्रिया सिद्धि के लिये बढ़ावें॥११॥

(ऋग्वेद ०१.३६.११)

ऋषि: - कण्वो घौरःदेवता - अग्निःछन्दः - भुरिगनुष्टुप्स्वरः -गान्धारः।

रायस्पूर्धि स्वधावोऽस्ति हि तेऽग्ने देवेष्वाप्यम्।

त्वं वाजस्य श्रुत्यस्य राजसि स नो मृळ महाँ असि॥

स्वर सहित पद पाठ

रायः। पूर्धि। स्वधऽवः। अस्ति। हि। ते। अग्ने। देवेषु। आप्यम्। त्वम्। वाजस्य। श्रुत्यस्य। राजसि। सः। नः। मृळह। महान्। असि॥

विषय(भाषा)- फिर भी इस मंत्र में उन्हीं राजपुरुषों के गुणों का उपदेश किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- हे स्वधावः अग्ने हि यतः ते देवेषु आप्यम् अस्ति रायः पूर्धि। यः त्वम् महान् असि श्रुत्यस्य वाजस्य च मध्ये राजसि स त्वम् नःअस्मान् मृड सुखयुक्तान् कुरु॥१२॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(स्वधावः)** अग्नि में आहुति के रूप में अन्न आदि पदार्थ प्रयुक्त किये जानें चाहियें, ऐसे पदार्थ जिसमें हैं, **(अग्ने)** ऐसे अग्नि जैसे तेजस्वी होवें ! **(हि)** क्योंकि **(ते)** आपकी **(देवेषु)** विद्वानों में **(आप्यम्)** प्राप्त करने योग्य मित्रता **(अस्ति)** है। **(रायः)** जिनके विद्या, सुवर्ण और चक्रवर्त्ति राज्य आदि धन हैं, उनकी **(पूर्धि)** [निरन्तर] पूर्ति कीजिये। **(यः)** जो **(त्वम्)** आप **(महान्)** बृहत् गुणों से युक्त **(असि)** हो। **(श्रुत्यस्य)** सुने जाने योग्य **(च)** और **(वाजस्य)** जो युद्ध के **(मध्ये)** बीच में **(राजसि)** प्रकाशित होते हो। ऐसे **(त्वम्)** पुत्र के समान प्रजा का पालन करने वाले **(सः)** वह तुम **(नः)** हमें **(मृड)** सुखी **(कुरु)** कीजिये॥१२॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- वेदवित्सु विद्यावृद्धिषु मैत्रीं भावयद्भिः सभाध्यक्षादिराजपुरुषैरन्नधनादि पदार्थागारान् सततं प्रपूर्य प्रसिद्धैर्दस्युभिस्सह युद्धाय समर्था भूत्वा प्रजायै महान्ति सुखानि दातव्यानि॥१२॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- वेदों को जाननेवालों में विद्या की वृद्धि में जिस मित्रता के भाव से सभाध्यक्ष आदि राजपुरुषों के द्वारा अन्न, धन आदि पदार्थों के कोशों की निरन्तर पूर्ति करके और प्रसिद्ध डाकुओं के साथ निरन्तर युद्ध करने के लिए समर्थ हो करके प्रजा के लिये बड़े-बड़े सुख दिये जाने चाहिएँ॥१२॥

अनुवादक की टिप्पणी- चक्रवर्त्ति राज्य ऋग्वेद के मन्त्र संख्या (०१.०४.०७) में स्पष्ट किया गया है।

(ऋग्वेद ०१.३६.१२)

ऋषि: - कण्वो घौरःदेवता - अग्निःछन्दः - उपरिष्टाद् बृहतीस्वरः- मध्यमः।

ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता।

ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे॥

स्वर सहित पद पाठ

ऊर्ध्वः। ऊँ इति। सु। नः। ऊतये। तिष्ठ। देवः। न। सविता। ऊर्ध्वः। वाजस्य। सनिता। यत्। अञ्जिऽभिः। वाघत्ऽभिः। विऽह्वयामहे॥

विषय(भाषा)- फिर वह सभाध्यक्ष कैसा होता है, इस विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- हे सभापते त्वम् सविता देवः न इव नःअस्माकम् ऊतये ऊर्ध्वः सु तिष्ठ। उ च ऊर्ध्वः सन् वाजस्य सनिता भव अतः वयम् अंजिभिः वाघद्भिः सह त्वाम् विह्वयामहे॥१३॥

पदार्थन्वयः(म.द.स)- हे **(सभापते)** सभापति! **(त्वम्)** तुम **(सविता)** सूर्यलोक जो **(देवः)** सबको प्रकाशित करने वाला है, उसके **(न)** समान **(नः)** हमारी **(ऊतये)** रक्षा आदि के लिये **(ऊर्ध्वः)** उच्च आसन में **(सु)** शोभित **(तिष्ठ)** ठहरे हुए हो। **(ऊँ)** और **(ऊर्ध्वः+सन्)** ऊपर उठते हुए **(वाजस्य)** संग्राम के **(सनिता)** समर्पित सेवक **(भव)** हूजिये। **(अतः)** इसलिये **(वयम्)** हम **(अंजिभिः)** जो साधनों से प्रकट होते हैं, **(वाघद्भिः)** ऐसे विद्वानो के **(सह)** साथ **(त्वाम्)** तुम्हारी **(विह्वयामहे)** विविध शब्दों से स्तुति करते हैं॥१३॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- सूर्य्यवदुत्कृष्टतेजसा सभापतिना संग्रामसेवने न दुष्टशत्रून्निवार्य्य सर्वेषां प्राणिनामूतये यज्ञसाधकैर्विद्वद्भिः सहात्युच्चासने स्थातव्यम्॥१३॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- सूर्य के समान उत्कृष्ट सभापति को संग्राम के सेवन से दुष्ट शत्रुओं को हटा करके सब प्राणियों की रक्षा के लिये यज्ञ के साधक विद्वानों के साथ बहुत अधिक ऊंचे आसन पर बैठना चाहिए॥१३॥

(ऋग्वेद ०१.३६.१३)

ऋषि: - कण्वो घौरःदेवता - अग्निःछन्दः निचृद्विष्टारपङ्क्तिस्वरः- पञ्चमः।

ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो नि केतुना विश्वं समत्रिणं दह।

कृधी न ऊर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे विदा देवेषु नो दुवः॥

स्वर सहित पद पाठ

ऊर्ध्वः । नः । पाहि । अंहसः । नि । केतुना । विश्वम् । सम् । अत्रिणम् । दह । कृधि । नः । ऊर्ध्वान् । चरथाय । जीवसे । विदाः । देवेषु । नः । दुवः ॥

विषय(भाषा)- फिर वह सभापति कैसा होवे, यह इस मंत्र में कहा है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- हे सभापते त्वम् केतुना प्रज्ञादानेन नः अंहसः निपाहि विश्वम् अत्रिणम् शत्रुम् सम् दह ऊर्ध्वः त्वम् चरथाय न ऊर्ध्वान् कृधि देवेषु जीवसे नः दुवः विदाः ॥१४॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(सभापते)** सभापते! **(त्वम्)** आप **(केतुना)** प्रकृष्ट ज्ञान के दान से **(नः)** हमारी **(अंहसः)** दूसरे के पदार्थों के हरण रूपी पाप से **(नि)** अच्छी तरह से **(पाहि)** रक्षा करें। **(अत्रिणम्)** जो दूसरे के पदार्थों का अन्याय के साथ अत्यन्त भक्षण करता है, **(शत्रुस्तम्)** उस शत्रु को और **(विश्वम्)** जो उस समस्त को **(सम्)** अच्छी तरह से **(दह)** भस्म कर दो। [ऐसे] **(ऊर्ध्वः)** सर्वोत्कृष्ट **(त्वम्)** तुम **(चरथाय)** चलने के **(न)** समान **(ऊर्ध्वान्)** लोगों को उत्कृष्ट गुण और सुख सहित **(कृधि)** कीजिये **(देवेषु)** या विद्वानों में, **(जीवसे)** प्राणधारियों के लिये और **(नः)** और हमारे लिये **(दुवः)** सेवा को **(विदाः)** प्राप्त कराइये ॥१४॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- उत्कृष्टगुणस्वभावेन सभाध्यक्षेण राज्ञा राज्यनियमदण्डभयेन सर्वमनुष्यान् पापात् पृथक्कृत्थ सर्वान् शत्रून् दग्ध्वा विदुषः परिषेव्य ज्ञानसुखजीवनवर्द्धनाय सर्वे प्राणिन उत्कृष्टगुणाः सदा संपादनीयाः ॥१४॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- अच्छे गुण कर्म और स्वभाव के द्वारा सभाध्यक्ष राजा राज्य के नियम के दण्ड के भय से सब मनुष्यों को पाप से हटा कर, सब शत्रुओं को मार कर, विद्वानों की सब प्रकार सेवा करके, ज्ञान से सुख और आयु बढ़ाने के लिये सब प्राणियों को उत्कृष्ट गुणों को सदा प्राप्त करायें ॥१४॥

(ऋग्वेद ०१.३६.१४)

ऋषिः - कण्वो घौरः देवता - अग्निः छन्दः - विराट्पथ्याबृहती स्वरः - मध्यमः।

पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराव्णः ।

पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठ्य ॥

स्वर सहित पद पाठ

पाहि । नः । अग्ने । रक्षसः । पाहि । धूर्तेः । अराव्णः । पाहि । रिषतः । उत । वा । जिघांसतः । बृहद्भानो इति बृहत्ऽभानो ।

यविष्ठ्य॥

विषय(भाषा)- फिर उस सभाध्यक्ष राजा से प्रजा और सेना के जन क्या- क्या प्रार्थना करें, इस विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- हे बृहद् भानो यविष्ठ्य अग्ने सभाध्यक्ष महाराज त्वम् धूर्तेः अराव्णः रक्षसः नः पाहि। रिषतः पापाचारात् जनात् पाहि। उत वा जिघांसतः पाहि॥१५॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(बृहद्भानो)** बड़े-बड़े विद्यादि ऐश्वर्य्य के तेजवाले सूर्य को ऊपर उठाने के लिये **(यविष्ठ्य)** अति तरुण अवस्था युक्त **(अग्ने)** सबसे अग्रणी और सबके रक्षक **(सभाध्यक्ष)** सभाध्यक्ष **(महाराज)** महाराज! **(त्वम्)** आप **(धूर्त्तेः)** विश्वासघातियों और **(अराव्णः)** दान देने में कृपण आदि स्वभाव के **(रक्षसः)** महादुष्ट मनुष्य से **(नः)** हमारी **(पाहि)** रक्षा करो। **(रिषतः)** हिंसक व्याघ्र आदि प्राणियों से और **(पापाचारात्)** पाप के आचरण से **(उत)** भी **(जनात्)** लोगों की **(पाहि)** रक्षा करो **(वा)** अथवा, **(जिघांसतः)** मारने की इच्छावाले शत्रु से **(पाहि)** रक्षा करो॥१५॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- मनुष्यैः सर्वतोभिरक्षणाय सर्वाभिरक्षको धर्म्मोन्नतिं चिकीर्षुर्दयालुः सभाध्यक्षः सदा प्रार्थनीयः स्वैरपि दुष्टस्वभावेभ्यो मनुष्यादिप्राणिभ्यः सर्वपापेभ्यश्च शरीरवचोमनोभिर्दूरे स्थातव्यं नैवं विना कश्चित्सदा सुखी भवितुमर्हति॥१५॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- मनुष्यों के द्वारा सब प्रकार से रक्षा के लिये सर्वरक्षक धर्म की उन्नति की इच्छा करनेवाले सभाध्यक्ष की सर्वदा प्रार्थना करनी चाहिए। अपने भी दुष्ट स्वभाववाले मनुष्य आदि प्राणियों और सब पापों से, शरीर, वाणी और मन से दूर स्थापित करना चाहिए, इसके विना कोई मनुष्य सदा सुखी नहीं रह सकता है॥१५॥

(ऋग्वेद ०१.३६.१५)

ऋषिः - कण्वो घौरः देवता - अग्निः छन्दः - बृहती स्वरः - मध्यमः।

घ॒नेव॑ वि॒ष्व॒ग्वि ज॒ह्यरा॑व्ण॒स्तपु॑र्जम्भ॒ यो अ॑स्म॒ध्रुक्।

यो मर्त्यः॒ शिशी॑ते अत्य॒क्तुभि॒र्मा नः॒ स रि॒पुरी॑शत॥

स्वर सहित पद पाठ

घ॒नाऽइ॑व। विष्व॑क्। वि। ज॒हि। अरा॑व्णः। तपुः॑ऽजम्भ। यः। अ॒स्म॒ऽध्रुक्। यः। मर्त्यः॑। शिशी॑ते। अति॑। अ॒क्तुऽभिः॑। मा। नः॒। सः। रि॒पुः। ई॒श॒त॥

विषय(भाषा)- फिर भी इस मंत्र में उसी सभाध्यक्ष का उपदेश किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- हे तपुर्ज्जम्भ सेनापते विष्वक् त्वम्र् अराव्णः अरीन् घनेन विजहि यः मर्त्त्यः अक्तुभिः अस्मद् ध्रुक् इति शिशीते सः रिपु नः अस्मान् मेशत॥१६॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(तपुर्जम्भ)** शत्रुओं के लिये सन्तापकारी अस्त्रों से विनाश करने वाले **(सेनापते)** सेनापते! **(विष्वक्)** हर दिशा से **(त्वम्)** तुम **(अराव्णः)** उक्त शत्रुओं को, **(घनेव)** जैसे घन या डण्डे से घड़े को तोड़ा जाता है, ऐसे **(विजहि)** नष्ट करते हो। **(यः)** मनुष्य **(अक्तुभिः)** रात और दिन उन शस्त्रों को जो मृत्यु की ओर ले जाते हैं **(अस्मद्ध्रुक्)** और वह जो हम से द्रोह करते हैं, उन्हें **(इति)** इसलिये **(शिशीते)** क्षीण कर देते हैं। **(सः)** वह **(रिपुः)** शत्रु **(नः)** हमारे लिये **(ईशत)** विनाशकारी **(मा)** न हो॥१६॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- अत्रोपमालङ्कारः। सेनापत्यादयो यथा घनेनायः पाषाणादींस्त्रोटयन्ति तथैव शत्रूणामङ्गानि त्रोटयित्वाऽहर्निशं धार्मिकप्रजापालनतत्पराः स्युर्यतोऽरय एते दुःखयितुन्नो शक्नुयुरिति॥१६॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- इस मंत्र में उपमा अलंकार है। सेनाध्यक्ष आदि लोग जैसे लोहे के घन से पाषाण आदि को तोड़ते हैं, वैसे ही शत्रुओं के अङ्गों को तोड़ करके दिन-रात धार्मिक लोग प्रजा के पालन में तत्पर रहें। जिससे शत्रुजन इन प्रजाओं को दुःख देने में समर्थ न हो सकें॥१६॥

(ऋग्वेद ०१.३६.१६)

ऋषिः - कण्वो घौरः देवता - अग्निः छन्दः - विराडुपरिष्टाद् बृहती स्वरः - मध्यमः।

अ॒ग्निर्व॑व्ने सु॒वीर्य॑म॒ग्निः कण्वा॑य॒ सौभ॑गम्।

अ॒ग्निः प्राव॑न्मि॒त्रोत मेध्या॑तिथिम॒ग्निः सा॒ता उ॑पस्तु॒तम्॥

स्वर सहित पद पाठ

अ॒ग्निः। व॒व्ने॒। सु॒ऽवीर्य॑म्। अ॒ग्निः। कण्वा॑य। सौभ॑गम्। अ॒ग्निः। प्र। आ॒व॒त्। मि॒त्रा। उ॒त। मेध्य॑ऽअतिथिम्। अ॒ग्निः। सा॒तौ। उ॒प॒ऽस्तु॒तम्॥

विषय(भाषा)- फिर भी इन सभाध्यक्षादि राजपुरुषों के गुण अग्नि के दृष्टान्त से इस मन्त्र में कहे हैं।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- यः विद्वान् राजा अग्निः इव सातौ संग्रामे उपस्तुतम् सुवीर्यम् अग्निः इव कण्वाय सौभगम् वव्ने अग्निः इव मित्राः सुहृदः प्रावत् अग्निः इव उत अग्निः इव मेध्यातिथिम् च सेवेत स एव राजा भवितुम् अर्हेत्॥१७॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- **(यः)** जो **(विद्वान्)** विद्वान् **(अग्निः)** विद्युत् के समान सभाध्यक्ष राजा है। **(सातौ)** जिस युद्ध में धनों के द्वारा या शिल्पकर्म से सेवा करते हैं, **(संग्रामे)** उस युद्ध में **(उपस्तुतम्)** जो उस के गुणों को प्राप्त करके स्तुति करता है। **(सुवीर्यम्)** सुन्दर शारीरिक आत्मा और पराक्रम के लक्षणवाला बल [और] **(अग्निः)** उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करने वाले के **(इव)** समान और **(कण्वाय)** धर्मात्मा, मेधावी व शिल्पी में, **(सौभगम्)** जिसका सुन्दर ऐश्वर्य का योग है, उससे **(वव्ने)** याचना करते हैं। **(अग्निः)** वह सर्व मित्र के **(इव)** समान और **(सुहृदः)** सुहृद है। **(प्र)** प्रकृष्ट रूप से **(आवत्)** रक्षा करता है, इसलिये **(अग्निः)** सर्व रक्षक कहलाने के **(इव)** समान **(उत)** भी है। **(अग्निः)** वह विद्युत् के समान सभाध्यक्ष राजा है। **(मेध्यातिथिम्)** जिसका मेधा के द्वारा पहुंचने योग्य पवित्र अतिथि है **(च)** और **(सेवेत)** उसकी सेवा करनी चाहिये। **(सः)** वह **(एव)** ही **(राजा)** राजा **(भवितुम्)** होने के **(अर्हेत्)** सम्मान के योग्य है॥१७॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथायं भौतिकोग्निर्विद्वद्भिः सुसेवितः सन् तेभ्यो बलपराक्रमान् सौभाग्यं च प्रदाय शिल्पविद्याप्रवीणं तन्मित्राणि च सर्वदा रक्षति। तथैव प्रजा सेनास्थैर्भद्रपुरुषैर्याचितोयं सभाध्यक्षो राजा तेभ्यो बलपराक्रमोत्साहानैश्वर्य्यशक्तिं च दत्वा युद्धं विद्याप्रवीणान् तन्मित्राणि च सर्वथा पालयेत्॥१७॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे यह भौतिक अग्नि विद्वानों के द्वारा परिश्रमपूर्वक सेवा किया हुआ है, उनके लिये बल पराक्रम और सौभाग्य को देकर शिल्पविद्या में प्रवीण और उनके मित्रों की सदा रक्षा करता है। वैसे ही प्रजा और सेना के भद्रपुरुषों से प्रार्थना किया हुआ, यह सभाध्यक्ष राजा उनके लिये बल, पराक्रम उत्साह और ऐश्वर्य्य की शक्ति देकर युद्ध विद्या में प्रवीण उनके मित्रों को सब प्रकार पाले॥१७॥

(ऋग्वेद ०१.३६.१७)

ऋषिः - कण्वो घौरःदेवता - अग्निःछन्दः - विष्टारपङ्क्तिःस्वरः - पञ्चमः।

अ॒ग्निना॑ तु॒र्वशं॒ यदुं॑ परा॒वत॑ उ॒ग्रादे॑वं हवामहे।

अ॒ग्निर्न॑य॒न्नव॑वास्त्वं बृ॒हद्र॑थं तु॒र्वीतिं॒ दस्य॑वे॒ सहः॑॥

स्वर सहित पद पाठ

अ॒ग्निना॑। तु॒र्वश॑म्। यदु॑म्। प॒रा॒ऽवतः॑। उ॒ग्रऽदे॑वम्। ह॒वा॒म॒हे॒। अ॒ग्निः। न॒य॒त्। नव॑ऽवास्त्वम्। बृ॒हत्ऽर॑थम्। तु॒र्वीति॑म्। दस्य॑वे। सहः॑॥

विषय(भाषा)- सब मनुष्य सभाध्यक्ष से मिलके दुष्टों को कैसे मारें, इस विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- वयम् येन अग्निना संग्राह्य उग्रा अदेवम् तुर्वशम् यदुम् परावतः हवामहे स च दस्यवे सहः अग्निः नवास्त्वम् बृहद्रथम् तुर्वीतिम् इह आनयत् बन्धागारे प्रापयतु ॥१८॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- (वयम्) हम लोग **(येन)** जिस **(अग्निना)** अग्नि के समान तेजस्वी सभाध्यक्ष के द्वारा **(संग्राह्य)** संग्रह करने योग्य **(उग्रादेवम्)** उग्र स्वभाव के और जीत की इच्छा वाले **(तुर्वशम्)** जो शीघ्रता से दूसरों के पदार्थों की इच्छा रखता है। **(यदुम्)** जो दूसरे के धन को प्राप्त करने लिये प्रयास करता है, ऐसे मनुष्य को **(परावतः)** दूरस्थ स्थान से **(हवामहे)** युद्ध के लिये पुकारते हैं। **(सः)** वह **(च)** भी, **(दस्यवे)** अपने बल के आकर्षण से दूसरों के पदार्थों के हरण करने वालों को **(सहः)** दूसरों के पतन के लिए जिम्मेदार **(अग्निः)** अग्रणी सभाध्यक्ष **(नवास्त्वम्)** सुन्दर घर वाले [और] **(तुर्वीतिम्)** उस हिंसक को **(इह)** यहाँ **(आ)** सर्वथा **(नयत्)** कैदखाने में ले आए॥१८॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- सर्वैर्धार्मिकपुरुषैस्तेजस्विना सभाध्यक्षेण राज्ञा सह समागम्य वेगेन परपदार्थहर्त्तॄन् कुटिलस्वभावान् स्वविजयमिच्छन् दस्यूनाहूय पर्वतारण्यदिषु निर्मितानि तद्गृहाणि निपात्य तान् बध्वा कारागृहे नियोक्तव्याः सायणाचार्य्येणायं मन्त्रोऽर्वाचीन पुराणाख्यमिथ्याग्रन्थरीतिमाश्रित्य भ्रान्त्यानर्थो व्याख्यातः ॥१८॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- सब धार्मिक पुरुषों को चाहिये की तेजस्वी सभाध्यक्ष राजा के साथ मिल के वेग से अन्य के पदार्थों को हरण करने वाले, खोटे स्वभावयुक्त और अपनी विजय की इच्छा करनेवाले डाकुओं को बुलाकर पराभूत करके उनको पर्वत, जंगल आदि एकान्त स्थानों में बने हुए घरों में बांध के उनको कैद में रक्खें ॥१८॥

महर्षिकृत टिप्पणी- सायणाचार्य ने यह मन्त्र नवीन पुराण मिथ्या ग्रन्थों की रीति के अवलम्ब से भ्रम के साथ कुछ का कुछ विरुद्ध वर्णन किया है ॥१८॥

(ऋग्वेद ०१.३६.१८)

ऋषिः - कण्वो घौरःदेवता - अग्निःछन्दः - पथ्यावृहतीस्वरः - मध्यमः।

नि त्वाम॑ग्ने मनु॑र्दधे ज्योति॒र्जना॑य शश्व॑ते।

दी॒देथ॒ कण्व॑ ऋ॒तजा॑त उक्षि॒तो यं न॑म॒स्यन्ति॑ कृ॒ष्टयः॑॥

स्वर सहित पद पाठ

नि। त्वाम्। अ॒ग्ने॒। मनुः॑। द॒धे। ज्योतिः॑। जना॑य। शश्व॑ते। दी॒देथ॑। कण्वे॑। ऋ॒तऽजा॑तः। उ॒क्षि॒तः। यम्। न॒म॒स्यन्ति॑। कृ॒ष्टयः॑॥

विषय(भाषा)- फिर उन राजपुरुषों का सहायक जगदीश्वर कैसा है, इस विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- हे अग्ने जगदीश्वर यम् परमात्मानम् त्वाम् शश्वते जनाय कृष्टयः नमस्यन्ति हे विद्वांसः यूयम् दीदेथ तत् ज्योति स्स्वरूपम् ब्रह्म ऋतजात उक्षितः मनुः अहम् कण्वे नि दधे तम् एव सर्वे मनुष्या उपासीरन् ॥१९॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(अग्ने)** तेजस्वी **(त्वाम्)** सबको सुख प्रदान करने वाले, **(शश्वते)** स्वरूप से अनादि, **(यम्)** परमात्मा ! **(जनाय)** जीवों के रक्षण के लिये **(कृष्टयः)** मनुष्य **(नमस्यन्ति)** पूजा करते हैं। हे **(विद्वांसः)** विद्वानों! **(यूयम्)** तुम सब **(दीदेथ)** प्रकाशित करते हो। **(तत्)** उस **(ज्योतिः)** स्वयम् प्रकाश करने वाले ज्ञान के प्रकाशक, **(स्स्वरूपम्)** अपने स्वरूप वाले **(ऋतजातः)** ऋत और सत्याचरण से उत्पन्न रूप में प्रसिद्ध **(ब्रह्म)** ब्रह्म है। [वह] **(उक्षितः)** आनन्द रस से सरोबार [है] । **(मनुः)** विशेष ज्ञान के न्याय द्वारा समस्त प्रजा के पालक की **(अहम्)** मैं **(कण्वे)** और मेधावी लोगों में **(नि)** अच्छी तरह से **(दधे)** अपने लिये धारण करते हुए **(तम्)** उसकी **(एव)** ही **(सर्वे)** सब **(मनुष्या)** मनुष्य **(उपासीरन्)** उपासना करें ॥१९॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- पूज्यस्य परमात्मनः कृपया प्रजारक्षणाय राज्याधिकारे नियोजितैः मनुष्यैः सर्वैः सत्यव्यवहारप्रसिद्ध्या धार्मिका आनन्दितव्या दुष्टाश्च ताड्या बुद्धिमत्सु मनुष्येषु विद्यानिधातव्याः ॥१९॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- पूजनेवालों के परमात्मा कृपा करके, प्रजा की रक्षा के लिये राज्य के अधिकारियों को सम्मिलित करके, सब मनुष्यों को सत्य व्यवहार की प्रसिद्धि से धर्मात्माओं को आनन्द और दुष्टों को ताड़ना देते हुए और बुद्धिमान मनुष्यों में विद्या को धारण करायें ॥१९॥

(ऋग्वेद ०१.३६.१९)

ऋषिः - कण्वो घौरः देवता-अग्निः छन्दः-सतःपङ्क्ति स्वरः- पञ्चमः।

त्वे॒षासो॑ अ॒ग्नेरम॑वन्तो अ॒र्चयो॑ भी॒मासो॒ न प्रती॑तये ।

र॒क्ष॒स्विन॒ः सद॒मिद्या॑तु॒माव॑तो॒ विश्वं॒ सम॒त्रिणं॑ दह ॥

स्वर सहित पद पाठ

त्वे॒षास॑ः । अ॒ग्नेः । अम॑ऽवन्तः । अ॒र्चय॑ः । भी॒मास॑ः । न । प्रति॑ऽइतये । र॒क्ष॒स्विन॑ः । सद॑म् । इत् । या॒तु॒ऽमाव॑तः । विश्व॑म् । सम् । अ॒त्रिण॑म् । द॒ह ॥

विषय(भाषा)- अब उस सभापति के प्रति क्या-क्या उपदेश करे, इस विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- हे तेजस्विन् सभापते त्वम् अग्नेः त्वेषासः भीमासः अर्चयः न ये अमवन्तः रक्षस्विनः

सन्ति तान् अत्रिणम् च इत् एवम् सम् दह प्रतीतये विश्वम् सदम् यातुमावतः च सम् रक्ष॥२०॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(तेजस्विन्)** तेजस्वी **(सभापते)** सभा के स्वामिन्! **(त्वम्)** तुम **(अग्नेः)** सूर्य और विद्युत् के रूप में प्रसिद्ध, **(त्वेषासः)** जिस से प्रकाशित होते हो, उनको, **(भीमासः)** भयङ्कर रूप से डराती है। **(अर्चयः)** ज्वाला के, **(न)** समान **(ये)** जो **(अमवन्तः)** निन्दित रोगों के कारक है, **(रक्षस्विनः)** जिन व्यवहारों में निन्दित पुरुषों की रक्षा करते हो। **(तान्)** उन **(अत्रिणम्)** दूसरों के पदार्थों को हरनेवाले शत्रुओं को **(च)** भी **(इत्)** ऐसे ही **(सम्)** पूरी तरह से **(दह)** भस्म करो। **(प्रतीयते)** सुख प्राप्त करने के लिये अथवा ज्ञान के लिये **(विश्वम्)** सम्पूर्ण जगत् **(सदम्)** जिसमें स्थित है **(च)** और **(यातुमावतः)** जो मेरे समान जाते हैं, उन यात्रियों की **(सम्)** उचित रूप से **(रक्ष)** रक्षा कीजिये॥२०॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- सभाध्यक्षादिभी राजपुरुषैः प्रजाजनैश्च यथाऽग्न्यादयः वनादीनि दहन्ति दुष्टाचाराः प्रणिनो विनाशनीयाः एवं प्रयतमानैः सततं प्रजारक्षणं कार्यामति॥२०॥

सूक्तस्य महर्षिकृत (भावार्थ)- अत्र सर्वाभिरक्षकेश्वरस्य दूतदृष्टान्तेन भौतिकाग्नेश्च गुणवर्णनं दूतगुणोपदेशोऽग्निदृष्टान्तेन राजपुरुषगुणवर्णनं सभापतिकृत्यं सभापतित्वाधिकारिप्रकारोऽग्न्यादिपदार्थोपयोगकरणं मनुष्याणां सभेशस्य प्रार्थना सर्वमनुष्याणां सभाध्यक्षेण सह दुष्टहननं राजपुरुषसहायकेश्वरवर्णनं चोक्तमत एतत्सूक्तोक्तार्थस्य पूर्वसूक्तोक्तार्थेन सहसंगतिरस्तीति वेदितव्यम्। षट्त्रिंशं सूक्तमेकादशो वर्गश्च समाप्तः॥३६॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- सभाध्यक्ष आदि राजपुरुषों और प्रजा के मनुष्यों को चाहिये कि जिस प्रकार अग्नि आदि पदार्थ वन आदि को भस्म कर देते हैं, वैसे ही दुष्ट आचरण करनेवाले प्राणियों का विनाश करना चाहिए। ऐसे ही धर्मात्माओं द्वारा निरन्तर प्रजा का रक्षण करना चाहिए॥२०॥

सूक्त के महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- इस सूक्त में सबकी रक्षा करनेवाले परमेश्वर तथा दूत के दृष्टान्त से भौतिक अग्नि के गुणों का वर्णन दूत के गुणों का उपदेश अग्नि के दृष्टान्त से राजपुरुषों के गुणों का वर्णन सभापति का कृत्य सभापति होने के अधिकारी का कथन किया गया है। अग्नि आदि पदार्थों से उपयोग लेने की रीति बताई गयी है। मनुष्यों को सभापति से प्रार्थना का उल्लेख है। सब मनुष्यों को सभाध्यक्ष के साथ मिलके दुष्टों का मारना चाहिये। राजपुरुषों के सहायक परमेश्वर का वर्णन किया गया है। उक्त उपदेश से इस सूक्त के अर्थ की पूर्वसूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये॥२०॥

मन्त्र पर महर्षिकृत टिप्पणी- इस मंत्र में सायणाचार्य ने यातु पूर्वपद और भावान् उत्तर पद नहीं जान (यातुमा) इस पूर्वपद से मतुप् प्रत्यय माना है सो पद पाठ से विरुद्ध होने के कारण अशुद्ध है।

(ऋग्वेद ०१.३६.२०)

अथ प्रथमं मण्डलम्

[३७] सप्तत्रिंशं सूक्तम्

ऋषि: - कण्वो घौरः देवता – मरूतः छन्दः - गायत्री स्वरः - षड्जः।

क्रीळं वः शर्धो मारुतमनर्वाणं रथेशुभम्।

कण्वा अभि प्र गायत॥

स्वर सहित पद पाठ

क्रीळम्। वः। शर्धः। मारुतम्। अनर्वाणम्। रथेऽशुभम्। कण्वाः। अभि। प्र। गायत॥

विषय(भाषा) - अब सैंतीसवें सूक्त का आरंभ है। और इस सूक्त भर में मोक्ष मूलर आदि साहिबों का किया हुआ व्याख्यान असंगत है। उसमें एक-एक मंत्र से उनकी असंगति जाननी चाहिये, इस सूक्त के प्रथम मंत्र में विद्वानों को वायु के गुणों से क्या-क्या उपकार लेना चाहिये इस विषय का उपदेश किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- हे कण्वा मेधाविनः विद्वांसः यूयम् यद् वः अनर्वाणं रथे क्रीडं क्रियायां शुभं मारुतं शर्धः अस्ति तत् अभि प्रगायत॥१॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(कण्वा)** मेधावी **(विद्वांसः)** विद्वानों! **(यूयम्)** तुम सब **(यद्)** जो भी **(वः)** तुम्हारे **(अनर्वाणम्)** घोड़ों के योग से रहित **(रथे)** जिन विमानों से जाते हैं, उन विमान आदि से **(क्रीडम्)** क्रीडा करते हैं, **(क्रियायाम्)** उस क्रिया में **(शुभम्)** शोभनीय **(मारुतम्)** पवनों का समूह रूपी **(शर्धः)** बल **(अस्ति)** है। **(तत्)** उस बल को **(अभि)** सामने से, **(प्र)** अच्छे प्रकार से **(गायत)** सुनो और [उसका] उपदेश करो॥१॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- विद्वद्भिर्ये वायवः प्राणिनां चेष्टाबलवेगयानमङ्गलादिव्यवहारान् साधयन्ति तस्मात्तद्गुणान् परीक्ष्यैतेभ्यो यथा योग्यमुपकारा ग्राह्याः॥१॥

टिप्पणी (महर्षिकृतः)- मोक्षमूलराख्येनार्वशब्देन ह्यश्वग्रहणनिषेधः कृतः सोशुद्ध एव भ्रममूलत्वात्। तथा पुनरर्वशब्देन सर्वत्रैवाश्वग्रहणं क्रियत इत्युक्तम्। एतदपि प्रमाणाभावादशुद्धमेव। अत्र विमानादेरमश्वस्य रथस्य विवक्षितत्वात्। अत्र कलाभिश्चालितेन वायुनाग्नेः प्रदीपनाज्जलस्य बाष्पवेगेन यानस्य गमनं कार्य्यते नहि पशवोश्वा गृह्यन्त इति॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- सायणाचार्य्य ने (मारुतम्) इस पद को पवनों का संबन्धि (तस्येदम्) इस सूक्त से अण्

प्रत्यय और व्यत्यय से आद्युदात्त स्वर अशुद्ध व्याख्यान किया है बुद्धिमान् पुरुषों को चाहिये कि जो पवन प्राणियों के चेष्टा, बल, वेग, यान और मंगल आदि व्यवहारों को सिद्ध करते इस से इनके गुणों की परीक्षा करके इन पवनों से यथायोग्य उपकार ग्रहण करें॥१॥

महर्षिकृत टिप्पणी का भाषानुवाद- मोक्षमूलर साहिब ने अर्व शब्द से अश्व के ग्रहण का निषेध किया है सो भ्रमभूल होने से अशुद्ध ही है और फिर अर्व शब्द से सब जगह अश्व का ग्रहण किया है यह भी प्रमाण के न होने से अशुद्ध ही है। इस मंत्र में अश्वरहित विमान आदि रथ की विवक्षा होने से उन यानों में कलाओं से चलाये हुए पवन तथा अग्नि के प्रकाश और जल की बाफ के वेग से यानों के गमन का संभव है इस से यहां कुछ पशुरूप अश्व नहीं लिये हैं॥१॥

(ऋग्वेद ०१.३७.०१)

ऋषिः - कण्वो घौरः देवता -मरूतः छन्दः - गायत्री स्वरः - षड्जः।

ये पृष॑तीभिर्ऋ॒ष्टिभि॑ः सा॒कं वाशी॑भिर॒ञ्जिभि॑ः।

अजा॑यन्त॒ स्वभा॑नवः॥

स्वर सहित पद पाठ

ये। पृष॑तीभिः। ऋ॒ष्टिऽभि॑ः। सा॒कम्। वाशी॑भिः। अ॒ञ्जिऽभि॑ः। अजा॑यन्त। स्वऽभा॑नवः॥

विषय(भाषा) - फिर वे विद्वान् कैसे होने चाहिये, इस विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिविच्छेदसहितोऽन्वयः- ये पृषतीभिः ऋष्टिभिः अञ्जिभिः वाशीभिः साकं क्रियाकौशले प्रयतन्ते ते स्वभानवःअजायन्त॥२॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- **(ये)** पवन जैसे वैज्ञानिक स्वभाव के विद्वान् लोग, **(पृषतीभिः)** जिस जल से धर्म रूपी वृक्ष को सींचते हैं [और] **(ऋष्टिभिः)** जिन कलायंत्रों की डण्डियों से ढकेलते हैं, उनको जानते हुए व्यवहारों में लाते हैं। **(अञ्जिभिः)** जिन क्रियाओं के द्वारा पदार्थ के गुणों को व्यक्त करते हैं, उन्हें **(वाशीभिः)** वाणियों के **(साकम्)** साथ **(क्रियाकौशले)** क्रिया कौशल में **(प्रयतन्ते)** लगाते हैं। **(ते)** वे, **(स्वभानवः)** जो वायु जैसे अपने आत्मा के ज्ञान का प्रकाश करनेवाले हैं, **(अजायन्त)** धर्म की क्रिया के प्रचार के लिए प्रकट होते हैं॥२॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- हे विद्वांसो मनुष्या युष्माभिरीश्वररचितायां सृष्टौ कार्यस्वभावप्रकाशस्य वायोः सकाशाज्जलसेचनं

चेष्टाकरणमग्न्यादिप्रसिद्धिर्वायुव्यवहाराश्चार्थात् कथनश्रवणस्पर्शा भवन्ति तैः क्रियाविद्याधर्मादिशुभगुणाः प्रचारणीयाः ॥२॥ मोक्षमूलरोक्तिः। ये ते वायवो विचित्रैर्हरिणैरयोमयोभिः शक्तिभिरसिभिः प्रदीप्तैराभूषणैश्चसह जाता इत्यसंभवास्ति। कुतः। वायवो हि पृषत्यादीनां स्पर्शादीगुणानां च योगेन सर्वचेष्टाहेतुत्वेन च वागग्निप्रादुर्भावे हेतवः सन्तः स्वप्रकाशवन्तः सन्त्यतः। यच्चोक्तं सायणाचार्येण वाशीशब्दस्य व्याख्यानं समीचीनं कृतमित्यप्यलीकम्। कुतः। मंत्रपदवाक्यार्थविरोधात्। यश्च प्रकरणपदवाक्यभावार्थानुकूलोस्ति सोयमस्य मंत्रस्यार्थो द्रष्टव्यः ॥२॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- हे विद्वान् मनुष्यो ! तुम लोगों को उचित है कि ईश्वर की रची हुई इस कार्य्य सृष्टि में जैसे अपने-अपने स्वभाव के प्रकाश करनेवाले वायु के सकाश से जल की वृष्टि चेष्टा का करना अग्नि आदि की प्रसिद्धि और वाणी के व्यवहार अर्थात् कहना सुनना स्पर्श करना आदि सिद्ध होते हैं वैसे ही विद्या और धर्मादि शुभगुणों का प्रचार करो ॥२॥ मोक्षमूलर साहिब कहते हैं कि जो वे पवन चित्र विचित्र हरिण लोह की शक्ति तथा तलवारों और प्रकाशित आभुषणों के साथ उत्पन्न हुए हैं इति। यह व्याख्या असंभव है क्योंकि पवन निश्चय करके वृष्टि करानेवाली क्रिया तथा स्पर्शादि गुणों के योग और सब चेष्टा के हेतु होने से वाणी और अग्नि के प्रगट करने के हेतु हुए अपने आप प्रकाशवाले हैं और जो उन्होंने कहा हैं कि सायणाचार्य ने वाशी शब्द का व्याख्यान यथार्थ किया है सो भी असंगत है क्योंकि वह भी मंत्र पद और वाक्यार्थ से विरुद्ध है और जो मेरे भाष्य में प्रकरण पद वाक्य और भावार्थ के अनुकूल अर्थ है उसको विद्वान् लोग स्वयं विचार लेंगे कि ठीक है वा नहीं ॥२॥

(ऋग्वेद ०१.३७.०२)

ऋषिः - कण्वो घौरः देवता- मरूतः छन्दः - निचृद्गायत्री स्वरः - षड्जः।

इ॒हेव॑ शृ॒ण्व ए॒षां॒ कश॒ा हस्ते॑षु॒ यद्वदा॑न्।

नि याम॑ञ्चि॒त्रमृ॒ञ्जते ॥

स्वर सहित पद पाठ

इ॒हऽइ॑व । शृ॒ण्व॒ । ए॒षा॑म् । क॒शाः॑ । हस्ते॑षु । यत् । वदा॑न् । नि । याम॑न् । चि॒त्रम् । ऋ॒ञ्ज॒ते॒ ॥

विषय(भाषा)- फिर वे विद्वान् लोग इन पवनों से क्या-क्या उपकार लेवें, इस विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिच्छेदसहितोऽन्वयः- अहं यत् एषां वायूनां कशाः हस्तेषु सन्ति प्राणिनः वदान् वदेयुः तत् इह इव शृण्वे सर्वः प्राण्यप्राणी यत् यामन् यामनि चित्रं कर्म नि ऋञ्जते तत् अहम् अपि कर्तुं शक्नोमि ॥३॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- (अहम्) मैं **(यत्)** जैसे **(एषाम्)** वायु के **(कशाः)** रज्जु के समान प्रयास के साधन नियमों को प्राप्त करानेवाली क्रियायें, **(हस्तेषु)** हाथ के अङ्गों में **(सन्ति)** हैं। **(प्राणिनः)** प्राणी **(वदान्)** [जैसे] बोलें **(तत्)** उसको **(इहेव)** इस स्थान में स्थित होकर, वैसे ही **(शृण्वे)** सुनता हूँ। **(सर्वः)** समस्त **(प्राण्यप्राणी)** प्राणी और अप्राणी **(यत्)** व्यावहारिक वाणी **(यामन्)** जिसमे सुख के हेतुपदार्थ प्राप्त होते हैं, उस मार्ग में **(चित्रम्)** अद्भुत कर्म **(नि)** अधिकता से **(ऋञ्जते)** निष्पादित करता है। **(तत्)** उस [कर्म] को **(अहम्)** में **(अपि)** भी **(कर्तुम्)** कर **(शक्नोमि)** सकता हूँ।

भावार्थः(महर्षिकृतः)- अत्रोपमालङ्कारः। पदार्थविद्यामभीप्सुभिर्विद्वद्भिर्यानि कर्माणि जडचेतनाः पदार्थाः कुर्वन्ति तद्धेतवो वायवः सन्ति। यदि वायुर्न स्यात्तर्हि कश्चित् किंचिदपि कर्म कर्त्तुं न शक्नुयात्। दूरस्थेनोच्चारिताञ्छब्दान् समीपस्थानिव वायुचेष्टामंतरेण कश्चिदपि श्रोतुं वक्तुं च न प्रभवेत्। वीरा युद्धादिकार्येषु यावन्तौ बलपराक्रमौ कुर्वन्ती तावन्तौ सर्वौ वायुयोगादेव भवतः। नह्येतेन विना नेत्रस्पन्दनमपि कर्त्तुं शक्यमतोऽस्य सर्वदैव शुभगुणाः सर्वैः सदान्वेष्टव्याः।

टिप्पणी (महर्षिकृतः)- मोक्षमूलरोक्तिः। अहं सारथिना कशाशब्दाञ् च्छृणोमि। अतिनिकटे हस्तेषु तान् प्रहरन्ति ते स्वमार्गेष्वतिशोभां प्राप्नुवन्ति। यामन्निति मार्गस्य नाम येन मार्गेण देवा गच्छन्ति यस्मान् मार्गाद्बलिदानानि प्राप्नुवन्ति। यथा स्माकं प्रकरणे मेघावयवानामपि ग्रहणं भवतीत्यशुद्धास्ति। कुतः। अत्र कशाशब्देन वायुहेतुक नां क्रियाणां ग्रहणाद्यामन्निति शब्देन सर्वव्यवहारसुखप्रापिकस्य कर्मणो ग्रहणाच्च॥३॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- इस मंत्र में उपमालङ्कार है। वायु पदार्थ विद्या की इच्छा करनेवाले विद्वानों को चाहिये कि मनुष्य आदि प्राणी जितने कर्म करते हैं उन सभों के हेतु पवन हैं जो वायु न हों तो कोई मनुष्य कुछ भी कर्म करने को समर्थ न हों सके और दूरस्थित मनुष्य ने उच्चारण किये हुए शब्द निकट के उच्चारण के समान वायु की चेष्टा के विना कोई भी कह वा सुन न सके और मनुष्य मार्ग में चलने आदि जितने बल वा पराक्रमयुक्त कर्म करते हैं वे सब वायु ही के योग से होते हैं इससे यह सिद्ध है कि वायु के विना कोई नेत्र के चलाने को भी समर्थ नहीं हो सकता इसलिये इसके शुभगुणों का खोज सर्वदा किया करें॥३॥

महर्षिकृत टिप्पणी का भाषानुवाद- मोक्षमूलर साहिब कहते हैं कि मैं सारथियों के कशा अर्थात् चावक के शब्दों को सुनता हूँ तथा अति समीप हाथों में उन पवनों को प्रहार करते हैं वे अपने मार्ग में अत्यन्त शोभा को प्राप्त होते हैं और यामन् यह मार्ग का नाम है जिस मार्ग से देव जाते हैं वा जिस मार्ग से बलिदानों को प्राप्त होते हैं जैसे हम लोगों के प्रकरण में मेघ के अवयवों का भी ग्रहण होता हैं। यह सब अशुद्ध हैं क्योंकि इस मंत्र में कशा शब्द से सब क्रिया और यामन् शब्द से मार्ग में सब व्यवहार प्राप्त करनेवाले कर्मों का ग्रहण है॥३॥

(ऋग्वेद ०१.३७.०३)

ऋषि: - कण्वो घौरः देवता - मरूतः छन्दः- गायत्री स्वरः- षड्जः।

प्र वः शर्धाय घृष्वये त्वेषद्युम्नाय शुष्मिणे।

देवत्तं ब्रह्म गायत॥

स्वर सहित पद पाठ

प्र। वः। शर्धाय। घृष्वये। त्वेषऽद्युम्नाय। शुष्मिणे। देवत्तम्। ब्रह्म। गायत॥

विषय(भाषा)- फिर वे विद्वान् लोग वायु से किस-किस प्रयोजन के लिये क्या- क्या करें, इस विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिच्छेदसहितोऽन्वयः- हे विद्वांसो मनुष्याः ये इमे वायवः वः [युष्माकं] शर्धाय घृष्वये शुष्मिणे त्वेषद्युम्नाय सन्ति तन्नियोगेन देवत्तं ब्रह्म यूयं गायत॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(विद्वांसो)** विद्वान् **(मनुष्याः)** मनुष्यों। **(ये)** जो **(इमे)** ये **(वायवः)** वायु हैं, [वे] **(वः)** तुम सबके **(शर्धाय)** बल के लिए, **(घृष्वये)** जिससे परस्पर घर्षण करते हैं, उसमें **(शुष्मिणे)** जिस से बलयुक्त होते हैं, ऐसा व्यवहार जिसमें अधिक है, **(त्वेषद्युम्नाय)** उस प्रकाशमान के लिये यश से या अन्न से प्रकाशित करते **(सन्ति)** हैं। **(तत्)** उसको **(नियोगेन)** निश्चित रूप से **(देवत्तम्)** जो ईश्वर द्वारा दिये गये हैं या विद्वानों अथवा अध्यापकों द्वारा दिये गये हैं, **(यूयम्)** तुम सब **(ब्रह्म)** वेद के [उन] **(गायत)** षड्ज आदि स्वरों का अलाप करो॥४॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- विद्वद्भिर्मनुष्यैरीश्वरोक्तान् वेदानधीत्य वायु गुणान् विदित्वा यशस्वीनि बलकारकाणि कर्माणि नित्यमनुष्ठाय सर्वेभ्यः प्राणिभ्यः सुखानि देयानीति॥४॥

टिप्पणी (महर्षिकृतः)- मोक्षमूलरोक्तिः। येषां गृहेषु वायवो देवता आगच्छन्ति हे कण्वा यूयं तेषामग्रे ता देवता स्तुत। ताः कीदृश्यः संति। उन्मत्ता विजयवत्यो बलवत्यश्च। अत्र। मं० ४। सू० १७। मं० २। इदमत्रप्रमाणमस्तीत्यशुद्धास्ति। यच्चात्र मंत्रप्रमाणंदत्तं तत्रापि तदभीष्टोर्थो नास्तीत्यतः॥४॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- विद्वान् मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर के कहे हुए वेदों को पढ़ वायु के गुणों को जान और यश वा बल के कर्मों का अनुष्ठान करके सब प्राणियों के लिये सुख देवें॥४॥

महर्षिकृत टिप्पणी का भाषानुवाद- मोक्षमूलर साहिब का अर्थ जिनके घरों में वायु देवता आते हैं हे बुद्धिमान् मनुष्यों तुम उन के आगे उन देवताओं की स्तुति करो तथा देवता कैसे हैं कि उन्मत्त विजय करने वा वेगवाले इस में चौथे मंडल सत्रहवें सूक्त दूसरे मंत्र का प्रमाण है। सो यह अशुद्ध है क्योंकि सब जगह पवनों की स्थिति के जाने आनेवाली क्रिया होने वा

उनके सामीप्य के विना वायु के गुणों की स्तुति के संभव होने से और वायु से भिन्न वायु का कोई देवता नहीं है इस से तथा जो मंत्र का प्रमाण दिया है वहां भी उनका अभीष्ट अर्थ इनके अर्थ के साथ नहीं है॥४॥

(ऋग्वेद ०१.३७.०४)

ऋषि: - कण्वो घौरः देवता- मरूतः छन्दः- विराड्गायत्री स्वरः- षड्जः।

प्र शं॑सा॒ गोष्वक़न्यं॑ क्री॒ळं यच्छर्धो॒ मारु॑तम्।

जम्भे॒ रस॑स्य वावृधे॥

स्वर सहित पद पाठ

प्र। शं॒स॒। गोषु॑। अघ्न्य॑म्। क्री॒ळम्। यत्। शर्धः॑। मारु॑तम्। जम्भे॑। रस॑स्य। व॒वृ॒धे॒॥

विषय(भाषा)- फिर इनके योग से क्या-क्या होता है, यह इस मंत्र में उपदेश किया है।

सन्धिच्छेदसहितोऽन्वयः- हे विद्वन त्वं यत् गोषु क्रीडम् अघ्न्यं मारुतं जम्भे रसस्य सकाशात् उत्पद्यमानं शर्धः [बलं] वावृधे तान् मह्यं प्रशंस [नित्यम् अनुशाधि]।

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(विद्वन्)** विद्वान्! **(त्वम्)** तुम **(यत्)** जो **(गोषु)** पृथिवी आदि में, इन्द्रियों में या पशुओं में **(क्रीडम्)** क्रीडा करते हो, वे **(अघ्न्यम्)** मारने योग्य नहीं हैं, **(मारुतम्)** पवनों के विकाररूप को, **(जम्भे)** जिस मुख और शरीर के अङ्गों का संचलन हो, उस मुख में **(रसस्य)** खाये हुए अन्न से उत्पन्न रस के भोग करने से शरीर के बढ़ने से **(सकाशात्)** निकट से **(उत्पद्यमानम्)** उत्पन्न किये जा रहे **(शर्धः)** बल **(वावृधे)** बढ़ते हैं। **(तत्)** इसलिए **(मह्यम्)** मेरे लिये, **(नित्यम्)** नित्य, **(प्र+शंसा)** अच्छा कार्य सम्पादित करो॥५॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- मनुष्यैर्यद्वायुसम्बन्धि शरीरादिषु क्रीड़ाबलवर्धनमस्ति तन्नित्यं वर्धनीयम्। यावद्रसादिज्ञानं तत्सर्वं वायुसन्नियोगेनैव जायते अतः सर्वैः परस्परमेवमनुशासनं कार्य्यं यतः सर्वेषां वायुगुणविद्या विदिता स्यात्॥५॥ मोक्षमूलरोक्तिः। स प्रसिद्धो वृषभो गवां मध्य अर्थात् पवनदलानां मध्य उपाधिवर्द्धितो जातः सन् यथा तेन मेघावयवाः स्वादिताः। कुतः। अनेन मरुतामादरः कृतस्तस्मादित्यशुद्धास्ति कथं। अत्र यद्गवां मध्ये मारुतं बलमस्ति। तस्य प्रशंसाः कार्य्याः। यच्चप्राणिभिर्मुखेनस्वाद्यते तदपि मारुतं बलमस्तीति। अत्र जम्भशब्दार्थे विलसन मोक्षमूलराख्यविवादो निष्फलोस्ति॥५॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- मनुष्यों को योग्य है कि जो वायुसम्बन्धि शरीर आदि में क्रीड़ा और बल का बढ़ना है उसको नित्य उन्नति देवें और जितना रस आदि प्रतीत होता है वह सब वायु के संयोग से होता है इससे परस्पर इस प्रकार सब शिक्षा करनी चाहिये कि जिससे सब लोगों को वायु के गुणों की विद्या विदित हो होवें ॥५॥ मोक्षमूलर साहिब का कथन कि यह प्रसिद्ध वायु पवनों के दलों में उपाधि से बढ़ा हुआ जैसे उस पवन ने मेघावयवों को स्वादयुक्त किया है क्योंकि इसने पवनों का आदर किया इससे। सो यह अशुद्ध है कैसे कि जो इस मंत्र में इन्द्रियों के मध्य में पवनों का बल कहा है उसकी प्रशंसा करनी और जो प्राणि लोग मुख से स्वाद लेते हैं वह भी पवनों का बल है और इस शब्द के अर्थ में विलसन और मोक्षमूलर साहिब का वादविवाद निष्फल है ॥५॥

(ऋग्वेद ०१.३७.०५)

ऋषिः - कण्वो घौरः देवता- मरूतः छन्दः- गायत्री स्वरः- षड्जः।

को वो वर्षिष्ठ आ नरो दिवश्च ग्मश्च धूतयः ।

यत्सीमन्तं न धूनुथ ॥

स्वर सहित पद पाठ

कः । वः । वर्षिष्ठः । आ । नरः । दिवः । च । ग्मः । च । धूतयः । यत् । सीम् । अन्तम् । न । धूनुथ ॥

विषय(भाषा)- फिर इन पवनों से मनुष्यों को क्या-क्या करना वा जानना चाहिये, इस विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिच्छेदसहितोऽन्वयः- हे धूतयः नरः विद्वांसो मनुष्याः यद् यूयं दिवः [सूर्यादि] प्रकाशकान् लोकान् तत् सम्बन्धिनः अन्यान् च ग्मः [पृथिवीः] तत्सम्बन्धिनः इतरान् च सीम् [सर्वतः] तृणवृक्षाद्यवयवान् कम्पयन्तः वायवः न (इव) शत्रुगणानाम् अन्तं यदा धूनुय (समन्तात् कम्पयत) तदा वः (युष्माकम्) मध्ये कः वर्षिष्ठ विद्वान् न जायेत ?

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(धूतयः)** शत्रुओं को कम्पानेवाले वे **(नरः)** जो ले जाते हैं, ऐसे **(विद्वांसो)**=विद्वान्, **(मनुष्याः)** मनुष्य **(यत्)** जो **(यूयम्)** तुम सब **(दिवः)** सूर्यादि प्रकाश लोकों के **(तत्)** उस **(सम्बन्धिनः)** सम्बन्धी से **(अन्यान्)** भिन्न **(च)** और **(ग्मः)** प्रकाशरहित पृथिवी आदि लोक हैं। **(तत्)** उसके **(सम्बन्धिनः)** सम्बन्धी से **(इतरान्)** भिन्न **(च)** भी **(सीम्)** हर ओर से **(तृणवृक्षाद्यवयवान्)** पत्तियों को और वृक्ष आदि के भागों को **(कम्पयन्तः)** कम्पाते हैं। **(वायवः)** पवनों के **(न)** समान **(शत्रुगणानाम्)** शत्रुओं के समूह की **(अन्तम्)** अन्तिम स्थिति आने तक **(यदा)** जब **(धूनुय)** हर ओर से कम्पाते हैं, **(तदा)** तब **(वः)** तुम सबके **(मध्ये)** बीच में **(कः)** कौन **(वर्षिष्ठः)** अतिशय वृद्ध

(विद्वान्) विद्वान् **(न)** न (जायेत) हो जाये ? ॥६॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- अत्रोपमालङ्कारः। विद्वद्भी राजपुरुषैर्यथाकश्चिद्बलवान्मनुष्यो निर्बलं केशान् गृहीत्वा। कम्पयति यथा च वायवः सर्वान् लोकान् धृत्वा कम्पयित्वा चालयित्वा स्वं स्वं परिधिं प्रापयन्ति तथैव सर्वं शत्रुगणं प्रकम्प्य तत्स्थानात्प्रचाल्य प्रजा रक्षणीया ॥६॥

टिप्पणी (महर्षिकृतः)- मोक्षमूलरोक्तिः। हे मनुष्या युष्माकं मध्ये महान् कोस्ति यूयं कंपयितार आकाशपृथिव्योः। यदा यूयं धारितवस्त्रप्रान्तकम्पनवत् तान् कम्पयत। अन्तशब्दार्थं सायणाचार्योक्तं न स्वीकुर्वे किंतु विलसनाख्यादिभिरुक्तमित्यशुद्धमिति। कुतः। अत्रोपमालंकारेण यथा राजपुरुषाः शत्रूनितरे मनुष्यास्तृणकाष्ठादिकं च गृहीत्वा कम्पयन्ति तथा वायवोऽग्निपृथिव्यादिकं गृहीत्वा कम्पयन्तीत्यर्थस्य विदुषां सकाशान्निश्चयः कार्य इत्युक्तत्वात्। यथा सायणाचार्येण कृतोर्थो व्यर्थोस्ति तथैव मोक्षमूलरोक्तोऽस्तीति विजानीमः ॥६॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- इस मंत्र में उपमालङ्कार है। विद्वान् राजपुरुषों को चाहिये कि जैसे कोई बलवान् मनुष्य निर्बल मनुष्य के केशों का ग्रहण करके कम्पाता और जैसे वायु सब लोकों का ग्रहण तथा चलायमान कर के अपनी-अपनी परिधि में प्राप्त करते हैं वैसे ही सब शत्रुओं को कम्पा और उनके स्थानों से चलायमान कर के प्रजा की रक्षा करें ॥६॥

महर्षिकृत टिप्पणी का भाषानुवाद- मोक्षमूलर साहिब का अर्थ कि हे मनुष्यो तुम्हारे बीच में बड़ा कौन है तथा तुम आकाश वा पृथिवी लोक को कम्पानेवाले हो जब तुम धारण किये हुए वस्त्र का प्रान्त भाग कंपने समान उनको कंपित करते हो। सायणाचार्य के कहे हुए अन्त शब्द के अर्थ को मैं स्वीकार नहीं करता किन्तु विलसन आदि के कहे हुए को स्वीकार करता हूँ। यह अशुद्ध और विपरीत है क्योंकि इस मंत्र में उपमालङ्कार है। जैसे राजपुरुष शत्रुओं और अन्य मनुष्य तृणकाष्ठ आदि को ग्रहण करके कम्पाते हैं वैसे वायु भी हैं इस अर्थ का विद्वानों के सकाश से निश्चय करना चाहिये इस प्रकार कहे हुए व्याख्यान से। जैसा सायणाचार्य का किया हुआ अर्थ व्यर्थ है वैसा ही मोक्षमूलर साहिब का किया हुआ अर्थ अनर्थ है ऐसा हम सब सज्जन लोग जानते हैं ॥६॥

(ऋग्वेद ०१.३७.०६)

ऋषिः - कण्वो घौरः देवता- मरूतः छन्दः- गायत्री स्वरः- षड्जः।

नि वो यामा॑य मानु॑षो द॒ध्र उ॒ग्राय॑ म॒न्यवे॑।

जिही॑त॒ पर्व॑तो गि॒रिः ॥

स्वर सहित पद पाठ

नि। वः। यामा॑य। मानु॑षः। द॒ध्रे। उ॒ग्राय॑। म॒न्यवे॑। जिही॑त। पर्व॑तः। गि॒रिः॥

विषय(भाषा)- फिर वे राजा और प्रजाजन कैसे होने चाहियें, इस विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिच्छेदसहितोऽन्वयः- हे प्रजासेनास्था मनुष्याः भवन्तः यस्य सेनापतेः भयाद् वायोः सकाशाद् गिरिः पर्वतः इव शत्रुगणः जिहीत पलायते स मानुषः वः (युष्माकम्) यामाय मन्यवे उग्राय च राज्यं दध्रे इति विजानन्तु॥७॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(प्रजासेनास्था)** प्रजा और सेना में स्थित **(मनुष्याः)** मनुष्यों! **(भवन्तः)** आप (यस्य) जिस **(सेनापतेः)** सेनापति के **(भयाद्)** भय से **(वायोः)** पवन के **(सकाशाद्)** निकट **से (गिरिः)** जो गिरता है और जल आदि को ग्रहण करते हुए बहुत ऊँचे शब्द करता है, **(पर्वतः)** ऐसे बादल के **(इव)** समान **(शत्रुगणः)** शत्रुगण **(जिहीत)** अपने स्थान से चल पड़ते है [और] **(पलायते)** पलायन कर जाते हैं। **(सः)** वह **(मानुषः)** सभापति मनुष्य **(वः)** तुम सबको **(यामाय)** यथार्थ व्यवहार की प्राप्ति के लिए **(मन्यवे)** क्रोधरूपी **(उग्राय)** तीव्र दण्ड के लिए **(च)** भी **(राज्यम्)** राज्य को **(दध्रे)** धारण करता है, **(इति)** ऐसा **(विजानन्तु)** विशेषरूप से जानो॥७॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- अत्र लुप्तोलंकारः। हे प्रजासेनास्था मनुष्याः युष्माकं सर्वे व्यवहारा राज्यव्यवस्थयैव वायुवद्व्यवस्थाप्यन्ते। स्वनियमविचलितेभ्यश्च युष्मभ्यं वायुरिवसभाध्यक्षो भृशं दण्डं दद्यात् यस्य भयाच्छत्रवश्च वायोर्मेघाइव प्रचलिता भवेयुस्तं पितृवन्मन्यध्वम्॥७॥

टिप्पणी (महर्षिकृतः)- मोक्षमूलरोक्तिः। हे वायवो युष्माकमागमनेन मनुष्यस्य पुत्रः स्वयमेव नम्रो भवति युष्माकं क्रोधात् पलायत, इति व्यर्थास्ति कुतोऽत्र गिरिपर्वतशब्दाभ्यां मेघो गृहीतोस्ति मानुषशब्दोर्थो निदध्रे इति क्रियायाः कर्त्तास्त्यतो नात्र बालकशिरो नमनस्य ग्रहणं यथा सायणाचार्यस्य व्यर्थोर्थः तथैव मोक्षमूलरस्यापीति वेद्यम्। यदि वेदकर्त्तेश्वर एव नैव मनुष्याः सन्तीत्येतावत्यपि मोक्षमूलरेण न स्वीकृतं तर्हि वेदार्थज्ञानस्य तु का कथा॥७॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे प्रजा सेनास्थ मनुष्यों तुम लोगों के सब व्यवहार वायु के समान राजव्यवस्था ही से ठीक-ठीक चल सकते हैं और जब तुम लोग अपने नियमोपनियमों पर नहीं चलते हो तब तुम को सभाध्यक्ष राजा वायु के समान शीघ्र दण्ड देता है और जिसके भय से वायु से मेघों के समान शत्रुजन पलायमान होते हैं उसको तुम लोग पिता के समान जानो॥७॥

महर्षिकृत टिप्पणी का भाषानुवाद- मोक्षमूलर कहते हैं कि हे पवनों आपके आने से मनुष्य का पुत्र अपने आपही नम्र होता है तथा तुम्हारे क्रोध से डर के भागता है। यह उनका कथन व्यर्थ हैं, क्योंकि इस मंत्र में गिरि और पर्वत शब्द से मेघ का ग्रहण किया है। तथा मानुष शब्द का अर्थ धारण क्रिया का कर्त्ता है और न इस मंत्र में बालक के शिर के नमन होने का ग्रहण

है। जैसा कि सायणाचार्य का अर्थ व्यर्थ है वैसा ही मोक्षमूलर का भी जानना चाहिये। वेद का करनेवाला ईश्वर ही है मनुष्य नहीं इतनी भी परीक्षा मोक्षमूलर साहिब ने नहीं की पुनः वेदार्थज्ञान की तो क्या ही कथा है ॥७॥

अनुवादक की टिप्पणी- मन्त्र में "शत्रुगण" शब्द जल को रोकने, गर्जन करनेवाले मेघ रूपी पर्वतों के लिये प्रयोग किया गया है।

(ऋग्वेद ०१.३७.०७)

ऋषिः - कण्वो घौरः देवता- मरूतः छन्दः- गायत्री स्वरः- षड्जः।

येषामज्मेषु पृथिवी जुजुर्वाँइव विश्पतिः।

भिया यामेषु रेजते॥

स्वर सहित पद पाठ

येषाम्। अज्मेषु। पृथिवी। जुजुर्वान्ऽइव। विश्पतिः। भिया। यामेषु। रेजते॥

विषय (भाषा)- फिर उन पवनों के योग से क्या होता है, इस विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिच्छेदसहितोऽन्वयः- हे विद्वांसः येषां मरुताम् अज्मेषु सत्सु भिया जुजुर्वान् इव वृद्धः विश्पतिः पृथिव्यादिलोकसमूहः यामेषु रेजते कम्पते-चलति तान् कार्येषु संप्रयुङ्ध्वम् ॥८॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(विद्वांसः)** विद्वान् लोगों ! **(येषाम्)** बडे, **(मरुताम्)** पवनों को **(अज्मेषु)** प्राप्त करने और फेंकने आदि के गुणों में और **(सत्सु)** जीवों में **(भिया)** भय से **(जुजुर्वान् इव)** जैसे वृद्ध अवस्था को प्राप्त मनुष्य **(वृद्धः)** वृद्ध **(विश्पतिः)** प्रजाओं का पालक राजा, **(पृथिव्यादिलोकसमूहः)** और पृथिवी आदि लोक के समूह **(यामेषु)** अपने जाने के मार्गों में **(रेजते)** चलते हैं, **(तान्)** उनको **(कार्येषु)** कार्यों में **(संप्रयुङ्ध्वम्)** अच्छी तरह से प्रयोग करो ॥८॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- अत्रोपमालङ्कारः। यथा जीर्णावस्थां प्राप्तः कश्चिद्राजा रोगैः शत्रूणां भयेन वा कम्पते तथा वायुभिः सर्वतो धारितः पृथिवीलोकः स्वपरिधौ प्रतिक्षणं भ्रमति एवं सर्वे लोकाश्च। नहि सूत्रवद्वेष्टनेन वायुना विना कस्यचिल्लोकस्य स्थितर्भ्रमणं च संभवतीति ॥८॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- इस मंत्र में उपमालङ्कार है। जैसे कोई राजा जीर्ण अवस्था को प्राप्त हुआ रोग वा शत्रुओं के भय से कम्पता है वैसे पवनों से सब प्रकार धारण किये हुए पृथिवी आदि लोक घूमते हैं। और सूत्र के समान बंधे

हुए वायु के विना किसी लोक की स्थिति वा भ्रमण का संभव कभी नहीं हो सकता ॥८॥

टिप्पणी (महर्षिकृतः)- मोक्षमूलरोक्तिः 'येषां मरुतां धावने पृथिवी निर्बलराजवद्भयेन मार्गेषु कम्पते, संस्कृतरीत्यायं महान् दोषो यत् स्त्रीलिङ्गोपमेयेन सह पुंल्लिङ्गोपमा न दीयत' इत्यलीकास्ति कुतो वायोर्योगेनैव पृथिव्या धारणभ्रमणे संभूय तद्भीषणेनैव पृथिव्यादीनां लोकानां स्वरूपस्थितिर्भवति नायं लिङ्गव्यत्ययेनोपमालङ्कारे दोषो भवितुमर्हति। मनोवद्वायुर्गच्छति। वायुरिव मनो गच्छति। श्येनवन्मेना गच्छति। स्त्रीवत् पुरुषः पुरुषवत् स्त्री। हस्तीवन्महिषी हस्तिनीवद्वा। चन्द्रवन्मुखम्। सूर्यप्रकाश इव राजनीतिरित्यादिनास्य शोभनत्वात् ॥८॥

महर्षिकृत टिप्पणी का भाषानुवाद- मोक्षमूलर साहिब का कथन कि जिन पवनों के दौड़नें में पृथिवी निर्बल राजा के समान भय से मार्गों में कम्पित होती है। संस्कृत की रीति से यह बड़ा दोष है कि जो स्त्रीलिङ्ग उपमेय के साथ पुल्लिङ्ग वाची उपमान दिया है। सो यह मौक्षमू० का कथन मिथ्या है क्योंकि वायु के योग ही से पृथिवी के धारण वा भ्रमण का संभव होकर वायु के भीषण ही से पृथिवी आदि लोकों के स्वरूप की स्थिति होती है तथा यह लिङ्ग व्यत्यय से उपमालङ्कार में दोष नहीं हो सकता, जैसे मनुष्य के तुल्य वायु और वायु के समान मन चलता है, श्येनपक्षी के समान मेना, स्त्री के समान पुरुष वा पुरुष के समान स्त्री, हाथी के समान भैंसी वा हथिनी के समान, चंद्रमा के समान मुख, सूर्य प्रकाश के समान राजनीति, इस प्रकार उपमालङ्कार में लिङ्ग भेद से कोई भी दोष नहीं आ-सकता ॥८॥

(ऋग्वेद ०१.३७.०८)

ऋषिः - कण्वो घौरः देवता- मरूतः छन्दः- निचृद्गायत्री स्वरः- षड्जः।

स्थिरं हि जानमेषां वयो मातुर्निरेतवे।

यत्सीमनु द्विता शवः॥

स्वर सहित पद पाठ

स्थिरम्। हि। जानम्। एषाम्। वयः। मातुः। निःऽएतवे। यत्। सीम्। अनु। द्विता। शवः॥

विषय(भाषा)- फिर वे वायु कैसे गुणवाले हैं, इस विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिच्छेदसहितोऽन्वयः- हे मनुष्याः एषां यत् स्थिरं जानं शवः बलं द्विता वर्तते यत् आश्रित्य वय: (पक्षिणः) (मातुः) अन्तरिक्षस्य मध्ये सीं निरेतवे शक्नुवन्ति तान् भवन्तः अनुविजानन्तु॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(मनुष्याः)** मनुष्यों! **(एषाम्)** पवनों के **(यत्)** जो **(स्थिरम्)** स्थिर स्थान हैं, **(जानम्)** जहाँ खाली स्थान पैदा होता है, **(शवः)** बल [वायु न होने से दबावरहित स्थान] से **(द्विता)** शब्द और स्पर्श दोनों गुणों का योग **(वर्तते)** होता है। **(यत्)** जो **(आश्रित्य)** आश्रय में रह रहे **(वयः)** पक्षी **(मातुः)** अन्तरिक्ष में **(सीम्)** हर ओर से **(निरेतवे)** निरन्तर जा **(शक्नुवन्ति)** सकते है, **(तान्)** उनको **(भवन्तः)** आप सब **(अनु)** एक-एक करके **(विजानन्तु)** अच्छी तरह से जानो॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- य इमे कार्यवायव आकाशादुत्पद्येतस्ततो गच्छन्त्यागच्छन्ति यत्र यत्रावकाशस्तत्र तत्र येषां सर्वतो गमनं संभवति। सर्वे प्राणिनो याननुजीवनं प्राप्य बलवन्तो भवन्ति तान् युक्त्या यूयं सेवध्वम्॥९॥

टिप्पणी (महर्षिकृतः)- मोक्षमूलरोक्तिः। सत्यमेव वायूनामुत्पत्तिस्तेषां सामर्थ्यं मातुः सकाशादागच्छत्येतेषां सामर्थ्यं द्विगुणं चास्तीति निष्प्रयोजनास्येयं व्याख्याऽस्ति। कुतः सर्वेषां द्रव्याणामुत्पत्तिः स्वस्वकारणानुकूलत्वेन बलवती जायते तेषां कार्याणां मध्ये कारणगुणा आगच्छन्त्येव वयःशब्देन किल पक्षिणो ग्रहणमस्तीत्यतः॥९॥

महर्षिकृत भावार्थ काभाषानुवाद- ये कार्यरूप पवन आकाश में उत्पन्न होकर इधर उधर जाते-आते हैं, जहां अवकाश है वहां जिनके सब प्रकार गमन का संभव होता और जिनकी अनुकूलता से सब प्राणी जीवन को प्राप्त होकर बलवाले होते हैं उन को युक्ति के साथ तुम लोग सेवन किया करो॥९॥

महर्षिकृत टिप्पणी का भाषानुवाद- मोक्षमूलर की उक्ति है कि सत्य ही है कि पवनों की उत्पत्ति बलवाली तथा उनका सामर्थ्य आकाश से आता है उनका सामर्थ्य द्विगुण वा पुष्कल है। सो यह निष्प्रयोजन है क्योंकि सब द्रव्यों की उत्पत्ति अपने-२ कारण के अनुकूल बलवाली होती है उनके कार्यों में कारण के गुण आते ही हैं और वयः शब्द से पक्षियों का ग्रहण है॥९॥

(ऋग्वेद ०१.३७.०९)

ऋषिः - कण्वो घौरः देवता- मरूतः छन्दःपिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री

स्वरः - षड्जः।

उदु॒ त्ये सू॒नवो॒ गिरः॒ काष्ठा॒ अज्मे॑ष्वत्नत।

वा॒श्रा अ॑भि॒ज्ञु यात॑वे॥

स्वर सहित पद पाठ

उत्। ऊँ॒ इति॑। त्ये। सू॒नवः॑। गिरः॑। काष्ठाः॑। अज्मे॑षु। अ॒त्न॒त। वा॒श्राः। अ॒भि॒ऽज्ञु। यात॑वे॥

विषय(भाषा)- फिर वे कैसे काम करें, इस विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिच्छेदसहितोऽन्वयः- हे राजप्रजाजनाः भवन्तः त्ये ते अन्तरिक्षस्थाः सूनवः (वायवः) अभिज्ञु वाश्राः इव गिरः काष्ठाः अज्मेषु उ यातवे (यातुं) तन्वन्ति इव सुखम् उत् अत्नत (तन्वन्तु)।

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(राजप्रजाजनाः)** राज्य के प्रजाजनों! **(भवन्तः)** आप सब, **(त्ये)** परोक्ष, **(ते)** वे [जो] **(अन्तरिक्षस्थाः)** अन्तरिक्ष में स्थित **(सूनवः)** प्राणयों के गर्भ छुड़ानेवाले हैं, **(वायवः)** ऐसे पवन **(अभिज्ञु)** घुटनों पर झुकती हुई गायों के समान, वे **(वाश्राः)** जैसे शब्द करती हुई गाय बछड़े के चारों ओर से जाती हुई **(इव)** के समान **(गिरः)** वाणी की **(काष्ठाः)** दिशा से **(अज्मेषु)** जाने के मार्गों में **(उ)** या **(यातवे)** यात्रा करने के लिए **(तन्वन्ति)** फैलते हैं, [इसके] **(इव)** जैसे **(सुखम्)** सुख को **(उत्)** उत्कृष्टता से **(अत्नत)** विस्तारित करो॥१०॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। राजप्रजाजनैर्यथेमे वायव एव वाचो जलानि च चालयित्वा विस्तार्य शब्दानाश्रावयन्तो गमनागमनजन्मवृद्धिक्षयहेतवः सन्ति तथैतैः शुभकर्माण्यनुष्ठेयानि॥१०॥

टिप्पणी (महर्षिकृतः)- मोक्षमूलरोक्तिः। ये गायनाः पुत्राः स्वगतौ गोष्ठानानि विस्तीर्णानि लम्बीभूतानि कुर्वन्ति गावो जानुबलेनागच्छन्निति व्यर्थास्ति कुतः। अत्र सूनुशब्देन प्रियां वाचमुच्चारयन्तो बालका गृह्यन्ते। यथा गावो वत्सलेहनार्थं पृथिव्यां जानुनी स्थापयित्वा सुखयन्ति तथा वायवोऽपीति विवक्षितत्वात्॥१०॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- इस मंत्र में लुप्तोपमालङ्कार है। राजा और प्रजा के मनुष्यों को चाहिये कि जैसे ये वायु ही वाणी और जलों को चलाकर विस्तृत करके अच्छे प्रकार शब्दों को श्रवण कराते हुए जाना-आना जन्म वृद्धि और नाश के हेतु हैं वैसे ही शुभाशुभ कर्मों का अनुष्ठान सुख-दुःख का निमित्त है॥१०॥

महर्षिकृत टिप्पणी- मोक्षमूलर की उक्ति है कि जो गान करनेवाले पुत्र अपनी गति में गौओं के स्थानों को विस्तारयुक्त लम्बे करते हैं तथा गौ जांघ के बल से आती हैं। सो यह व्यर्थ है क्योंकि इस मंत्र में सूनु शब्द से प्रिय वाणी को उच्चारण करते हुए बालक ग्रहण किये हैं जैसे गौ बछड़ों को चाटने के लिये पृथिवी में जंघाओं को स्थापन करके सुखयुक्त होती है इस प्रकार विवक्षा के होने से॥१०॥

(ऋग्वेद ०१.३७.१०)

ऋषिः - कण्वो घौरः देवता- मरूतः छन्दः-निचृद्गायत्री स्वरः-षड्जः।

त्यं चि॑द्धा दी॒र्घं पृ॒थुं मि॒हो नपा॑त॒मम॑ृध्रम्।

प्र च्या॑वयन्ति॒ याम॑भिः॥

स्वर सहित पद पाठ

त्यम् । चि॒त् । घ॒ । दी॒र्घम् । पृ॒थुम् । मि॒हः । नपा॑तम् । अमृ॑ध्रम् । प्र । च्य॒व॒य॒न्ति॒ । याम॑ऽभिः ॥

विषय(भाषा)- फिर ये राजपुरुष क्या करें, इस विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिच्छेदसहितोऽन्वयः- हे राजपुरुषा यूयं यथा मिहः वृष्ट्या सेचनकर्त्तारः मरुतः यामभिः घ एव नपातम् अमृध्रं पृथुं दीर्घं त्यं चित् अपि प्र च्यावयन्ति तथा शत्रून् प्रच्याव्य प्रजा आनन्दयत ॥११॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(राजपुरुषा)** राजपुरुषों! **(यूयम्)** तुम सब **(यथा)** जैसे **(मिहः)** सिंचाई करनेवाली **(वृष्ट्या)** वर्षा से **(मरुतः)** पवन **(यामभिः)** अपने आवागमन से जाते आते हैं, [वह] **(घ)** ही, **(नपातम्)** जो जल को नहीं बहाते हैं, [उस मेघ को] **(अमृध्रम्)** जो गीला नहीं करता है, **(पृथुम्)** विस्तृत और **(दीर्घम्)** स्थूल **(त्यम्)** [उस] बादल को **(चित्)** भी **(प्र)** अच्छी तरह से **(च्यावयन्ति)** गिराते हैं, **(तथा)** वैसे ही **(शत्रून्)** शत्रुओं को **(प्र)** अच्छी तरह से **(च्याव्य)** गिराना चाहिए और **(प्रजा)** प्रजा को **(आनन्दयत)** आनन्दित करना चाहिए ॥११॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। राजपुरुषैर्यथा मरुत एव मेघनिमित्तं पुष्कलं ज्वलमुपरि गमयित्वा परस्परं घर्षणेन विद्युतमुत्पाद्य तत्समूहमपतनशीलमतुन्दनीयं दीर्घावयवं मेघं भूमौ निपातयन्ति तथैव धर्मविरोधिनः सर्वव्यवहाराः प्रच्यावनीयाः ॥११॥

टिप्पणी (महर्षिकृतः)- मोक्षमूलरोक्तिः। ते वायवोऽस्य दीर्घकालं वर्षतोऽप्रतिबद्धस्य मेघस्य निमित्तं सन्ति पातनाय मार्गस्योपरि। इति किंचिच्छुद्धास्ति। कुतः। मिह इति मरुतां विशेषणमस्त्यनेन मेघविशेषणं कृतमस्त्यतः ॥११॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। राजपुरुषों को चाहिये कि जैसे पवन ही मेघ के निमित्त बहुत जल को ऊपर पहुंचा कर परस्पर घिसने से बिजुली को उत्पन्न कर उसे न गिरने योग्य तथा न गीला करने और बड़े आकारवाले मेघ को भूमि में गिराते हैं वैसे ही धर्म विरोधी सब व्यवहारों को छोड़ें और छुड़ावें ॥११॥

महर्षिकृत टिप्पणी का भाषानुवाद- मोक्षमूलर की उक्ति है कि वे पवन इस बहुत काल वर्षा कराते हुए अप्रतिबद्ध मेघ के निमित्त और मार्ग के ऊपर गिराने के लिये हैं यह कुछेक अशुद्ध हैं। क्योंकि (मिहः) यह पद पवनों का विशेषण है और इन्होंने मेघ का विशेषण किया है ॥११॥

(ऋग्वेद ०१.३७.११)

ऋषि: - कण्वो घौरः देवता-मरूतः छन्दः-गायत्री स्वरः- षड्जः।

मरुतो यद्ध वो बलं जनाँ अचुच्यवीतन।

गिरीँरचुच्यवीतन॥

स्वर सहित पद पाठ

मरुतः। यत्। ह। वः। बलम्। जनान्। अचुच्यवीतन। गिरीन्। अचुच्यवीतन॥

विषय(भाषा)- फिर वे राजप्रजाजन वायु के समान कर्म करें, इस विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिच्छेदसहितोऽन्वयः- हे मरुतः इव वर्त्तमानाः सेनापति आदयः यूयं यत् वः युष्माकं ह बलम् अस्ति तेन वायवः गिरीन् अचुच्यवीतन् इव जनान् अचुच्यवीतन स्वस्वव्यवहारेषु प्रेरयत॥१२॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(मरुतः)** पवनों के समान सेनाध्यक्ष आदि! **(इव)** जैसे **(वर्त्तमानाः)** विद्यमान **(सेनापति)** सेनापति **(आदयः)** आदि **(यूयम्)** तुम सब और **(यत्)** क्योंकि **(वः)** तुम सबकी **(ह)** प्रसिद्ध **(बलम्)** सेना आदि **(अस्ति)** है। **(तेन)** उनके द्वारा **(वायवः)** पवनों को **(गिरीन्)** पर्वतों पर **(अचुच्यवीतन्)** चलने के लिये प्रेरित करते हुए **(इव)** जैसे **(जनान्)** प्रजा में स्थित मनुष्यों को **(अचुच्यवीतन)** प्रेरित करते हैं, [वैसे ही उन्हें] **(स्वस्वव्यवहारेषु)** अपने-अपने व्यवहारों में **(प्रेरयत)** प्रेरित करो॥१२॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- अत्र लुप्तोपमालङ्कारः। सभाध्यक्षादिराजपुरुषैर्यथा वायवो मेघानितस्ततः प्रेरयन्ति तथैव सर्वे प्रजाजनाः स्वस्वकर्मसु न्यायव्यवस्थया सदैव निरालस्ये प्रेरणीयाः॥१२॥

टिप्पणी (महर्षिकृतः)- मोक्षमूलरोक्तिः। हे मरुत ईदृग्बलेन सह यादृशी शक्तिर्युष्माकमस्ति यूयं पुरुषाणां पातननिमित्तं स्थ पर्वतानां चेत्यशुद्धास्ति। कुतः। गिरिशब्देनात्र मेघस्य ग्रहणं न शैलानां जनशब्देन सामान्यगतिमतो ग्रहणं नतु पतनमात्रस्यातः॥१२॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। सभाध्यक्षादि राजपुरुषों को चाहिये कि जैसे वायु मेघों को इधर-उधर घुमा के वर्षाते हैं वैसे ही प्रजा के सब मनुष्यों को न्याय की व्यवस्था से अपने-२ कर्मों में आलस्य छोड़ के सदा नियुक्त करते रहें॥१२॥

महर्षिकृत टिप्पणी का भाषानुवाद- मोक्षमूलर की उक्ति है। हे पवनो ऐसे बल के साथ जैसी आपकी शक्ति है और तुम पुरुष वा पर्वतों को पतन कराने के निमित्त हो सो यह अशुद्ध है, क्योंकि गिरि शब्द से इस मन्त्र में मेघ का ग्रहण है और जन* शब्द से सामान्य गतिवाले का ग्रहण है पतनमात्र का नहीं है॥१२॥

(ऋग्वेद ०१.३७.१२)

ऋषि: - कण्वो घौरः देवता- मरूतः छन्दः-पादनिचृद्गायत्री स्वरः- षड्जः।

यद्ध यान्ति॑ म॒रुत॒: सं ह॑ ब्रुव॒तेऽध्व॒न्ना।

शृ॒णोति॒ कश्चि॑देषाम्॥

स्वर सहित पद पाठ

यत्। ह॒। यान्ति॑। म॒रुतः॑। सम्। ह॒। ब्रु॒व॒ते। अध्व॑न्। आ। शृ॒णोति॑। कः। चि॒त्। ए॒षा॒म्॥

विषय(भाषा)- फिर वे वायुओं से क्या-क्या उपकार लेवें, इस विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिच्छेदसहितोऽन्वयः- यथा यदि एते इमे मरुतः इतस्ततः ह यान्ति आयान्ति तथा अध्वन् विद्यामार्गे शिल्पिनः विद्वांसः ह सम् आ ब्रुवते एषां मरुतां विद्यां कश्चित् एव शृणोति विजानाति च न तु सर्वे॥१३॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- **(यथा)** जैसै **(यदि)** यदि **(एते)** ये निकटस्थ और **(इमे)** ये प्रत्यक्ष **(मरुतः)** पवन **(इतस्ततः)** इधर से उधर **(ह)** निश्चित रूप से **(यान्ति)** जाते हैं और **(आयान्ति)** आते हैं, **(तथा)** वैसे ही **(अध्वन्)** विद्यामार्ग में **(शिल्पिनः)** शिल्पी और **(विद्वांसः)** विद्वान् लोग, **(ह)** निश्चित रूप से **(सम्)** संगति में **(आ)** हर ओर से **(ब्रुवते)** परस्पर उपदेश करते हैं। **(एषाम्)** इन पवन की **(विद्याम्)** शब्दविद्या को **(कश्चित्)** कोई **(एव)** ही **(शृणोति)** ग्रहण करता है और **(विजानाति)** अच्छी तरह से जानता है। **(च)** और **(न)** न **(तु)** तो **(सर्वे)** सब [सुनते हैं और जानते हैं]॥१३॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- अस्य वायोर्विद्यां कश्चिद्विद्याक्रियाकुशल एव ज्ञातुं शक्नोति नेतरो जड़धीः॥१३॥

टिप्पणी (महर्षिकृतः)- मोक्षमूलरोक्तिः। यदा खलु मरुतः सह गच्छन्ति स्वमार्गाणामुपरि परस्परं वदन्ति। कश्चिन्मनुष्यः शृणोति किमित्यशुद्धास्ति। कुतः। मरुतां जडत्वेन परस्परं वार्त्ताकरणाऽसंभवात्। वक्तॄणां चेतनानां जीवानां वचनश्रवणहेतुत्वाश्च॥१३॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- इस वायु विद्या को कोई विद्वान् ही ठीक-ठीक जान सकता है जड़बुद्धि नहीं जान सकता॥१३॥

महर्षिकृत टिप्पणी का भाषानुवाद- मोक्षमूलर की उक्ति है कि जब निश्चय करके पवन परस्पर साथ- साथ जाते वा अपने मार्गों के ऊपर बोलते हैं तब कोई मनुष्य क्या श्रवण करता है अर्थात् नहीं, यह अशुद्ध हैं क्योंकि पवनों का जड़त्व होने से वार्त्ता करना असम्भव है और कहनेवाले चेतन जीवों के बोलने में हेतु तो होते हैं॥१३॥

(ऋग्वेद ०१.३७.१३)

ऋषि: - कण्वो घौरः देवता- मरूतः छन्दः-निचृद्गायत्री स्वरः-षड्जः।

प्र या॑त शीभ॑मा॒शुभि॑ः सन्ति॒ कण्वे॑षु वो॒ दुव॑ः।

तत्रो॒ षु मा॑दयाध्वै ॥

स्वर सहित पद पाठ

प्र। या॒त। शीभ॑म्। आ॒शुभि॑ः। स॒न्ति॒। कण्वे॑षु। व॒ः। दुव॑ः। तत्रो॒ इति॑। सु। मा॒द॒या॒ध्वै॒॥

विषय (भाषा) - फिर मनुष्यों को वायुओं से क्या-क्या कार्य्य लेना चाहिये, इस विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिच्छेदसहितोऽन्वयः- हे राजप्रजाजना यूयम् आशुभिः शीभं वायुवत् प्र यात। येषु कण्वेषु वः दुवः सन्ति तत्रो सु मादयाध्वै॥१४॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(राजप्रजाजना)** राज्य के प्रजाजनों ! **(यूयम्)** तुम सब **(आशुभिः)** शीघ्र आवागमन करनेवाले विमान आदि यानों से **(शीभम्)** शीघ्र **(वायुवत्)** वायु के समान, **(प्र)** अच्छी तरह से **(यात)** अभीष्ट स्थान को पहुँचो। **(येषु)** जिन **(कण्वेषु)** मेधावियों में **(वः)** तुम्हारे **(दुवः)** सेवक **(सन्ति)** हैं, **(तत्रो)** उनमें निश्चित रूप से ही **(सु)** शोभनरूप से **(मादयाध्वै)** प्रसन्न रहो॥१४॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- राजप्रजास्थैर्विद्वद्भिर्जनैरभीष्टस्थानेषु वायुवच्छीघ्रगमनाय यानान्युत्पाद्य स्वकार्याणि सततं साधनीयानि। धर्मात्मनां सेवनेऽधर्मात्मनां च ताड़ने सदैवानन्दितव्यश्च॥१४॥

टिप्पणी (महर्षिकृतः)- मोक्षमूलरोक्तिः यूयं तीव्रगतीनामश्वानामुपरि स्थित्वा शीघ्रमागच्छत तत्र युष्माकं पूजारयः कण्वानां मध्ये सन्ति यूयं तेषां मध्ये आनन्दं कुरुतेत्यशुद्धास्ति। कुतः। महान्तो वेगादयो गुणा एवाश्वास्ते वायौ समवायसम्बन्धेन वर्त्तन्ते। तेषामुपरि वायूनां स्थितेरसंभवात्। कण्वशब्देन विदुषां ग्रहणं तत्र निवासेनानन्दस्योद्भवाच्चेति॥१४॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- राजा और प्रजा के विद्वानों को चाहिये कि वायु के समान अभीष्ट स्थानों को शीघ्र जाने आने के लिये विमानादि यान बना के अपने कार्यों को निरन्तर सिद्ध करें और धर्मात्माओं की सेवा तथा दुष्टों को ताड़ने में सदैव आनन्दित रहें॥१४॥

महर्षिकृत टिप्पणी का भाषानुवाद- मोक्षमूलर की उक्ति है कि तुम तीव्र गतिवाले घोड़ों के ऊपर स्थित होकर जल्दी आओ वहां आपके पुजारी कण्वों के मध्य में हैं तुम उनमें आनन्दित होओ सो यह अशुद्ध है क्योंकि बड़े-बड़े वेग आदि गुण ही वायु के हैं, वे गुण उनमें समवाय सम्बन्ध से रहते हैं, उनके ऊपर इन पवनों की स्थिति होने का ही संभव नहीं और कण्व

शब्द से विद्वानों का ग्रहण है उनमें निवास करने से विद्या की प्राप्ति और आनन्द का प्रकाश होता है॥१४॥

(ऋग्वेद ०१.३७.१४)

ऋषिः - कण्वो घौरः देवता- मरूतः छन्दः- पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री स्वरः - षड्जः।

अस्ति हि ष्मा मदा॑य वः॒ स्मसि॑ ष्मा व॒यमे॑षाम्।

विश्वं॑ चि॒दायु॑र्जी॒वसे॑॥

स्वर सहित पद पाठ

अस्ति॑। हि। स्म॒। मदा॑य। वः॒। स्मसि॑। स्म॒। व॒यम्। ए॒षा॒म्। विश्व॑म्। चि॒त्। आयुः॑। जी॒वसे॑॥

विषय - फिर वे वायु किस-किस प्रयोजन के लिये हैं, इस विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिच्छेदसहितोऽन्वयः- हे विद्वांसः मनुष्या एषां हि स्म वः युष्माकं मदाय जीवसे विश्वम् आयुः अस्ति तथाभूता वयं चित् स्मसि स्म॥१५॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(विद्वांसः)** विद्वान् **(मनुष्या)** मनुष्यों! **(हि)** क्योंकि **(एषाम्)** ज्ञातविद्या से पवनों को समीप से, **(स्म)** निश्चित रूप से **(वः)** तुम सब **(मदाय)** आनन्द के लिए **(जीवसे)** जीवित रहने के लिए **(विश्वम्)** सब **(आयुः)** प्राण धारण करते **(अस्ति)** हैं। **(तथाभूता)** ऐसे ही होकर **(वयम्)** जिनको उपदेशित किया जा रहा है, वे लोग **(चित्)** भी, **(स्म)** निरन्तरता से आनन्दपूर्वक **(स्मसि)** होवें॥१५॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- यथा योगाभ्यासेन प्राणविद्याविदो वायुविकारज्ञाः पथ्यकारिणो जनाश्चानन्देन सर्वमायुर्भुञ्जते तथैवेतरैर्जनैस्तत्सकाशात्तद्विद्यां ज्ञात्वा सर्वमायुर्भोक्तव्यम्॥१५॥

सूक्तस्य भावार्थः- यथा योगाभ्यासेन प्राणविद्याविदो वायुविकारज्ञाः पथ्यकारिणो जनाश्चानन्देन सर्वमायुर्भुञ्जते तथैवेतरैर्जनैस्तत्सकाशात्तद्विद्यां ज्ञात्वा सर्वमायुर्भोक्तव्यम्॥१५॥

टिप्पणी (महर्षिकृतः)- मोक्षमूलरोक्तिः निश्चयेन तत्र युष्माकं प्रसन्नता पुष्कलास्ति वयं सदा युष्माकं भृत्याः स्मः। यद्यपि वयं सर्वमायुर्जीवेमेत्यशुद्धास्ति कुतः। अत्र प्रमाणरूपेण वायुना जीवनं भवतीति वयमेतद्विद्यां विजानीमेत्युक्तत्वादिति। एवमेव यथात्र मोक्षमूलरेण कपोलकल्पनया मन्त्रार्था विरुद्धा वर्णितास्तघेवाग्रेप्येतदुक्तिरन्यथास्तीति वेदितव्यम्। यदा पक्षपातविरहा विद्वांसो मद्रचितस्य मंत्रार्थ भाष्यस्य मोक्षमूलरोक्तादेश्च सम्यक् परीक्ष्य विवेचनं करिष्यन्ति तदैतेषां

कृतावशुद्धिर्विदिता भविष्यतीत्यलमिति विस्तरेणा अत्राग्निप्रकाशकस्य सर्वचेष्टाबलायुर्निमित्तस्य वायोस्तद्विद्याविदां राजप्रजाश्वविदुषां च गुणवर्णनादेतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति वेद्यम्॥ इति चतुर्दशो वर्गः सप्तत्रिंशं सूक्तश्च समाप्तम्॥३७॥

सूक्त के भावार्थ का भाषानुवाद- जैसे योगाभ्यास करके प्राणविद्या और वायु के विकारों को ठीक-ठीक जाननेवाले पथ्यकारी विद्वान् लोग आनन्दपूर्वक सब आयु भोगते हैं वैसे अन्य मनुष्यों को भी करनी चाहिये कि उन विद्वानों के सकाश से उस वायु विद्या को जानके संपूर्ण आयु भोगें॥१५॥

महर्षिकृत टिप्पणी का भाषानुवाद- मोक्षमूलर की उक्ति है कि निश्चय करके यहां तुम्हारी प्रसन्नता पुष्कल है हम लोग सब दिन तुम्हारे भृत्य हैं जो भी हम संपूर्ण आयु भर जीते हैं- यह अशुद्ध है। क्योंकि यहां प्राणरूप वायु से जीवन होता है हम लोग इस विद्या को जानते हैं इस प्रकार इस मन्त्र का अर्थ है। इसी प्रकार कि जैसे यहां मोक्षमूलर साहेब ने अपनी कपोल कल्पना से मंत्रो के अर्थ विरुद्ध वर्णन किये हैं वैसे आगे भी इनकी उक्ति अन्यथा ही है ऐसा सबको जानना चाहिये। जब पक्षपात को छोड़ कर मेरे रचे हुए मन्त्रार्थ भाष्य वा मोक्षमूलरादिकों के कहे हुए की परीक्षा करके विवेचन करेंगे तब इनके किये हुए ग्रन्थों की अशुद्धि जान पड़ेगी बहुत को थोड़े ही लिखने से जान लेवें आगे। आगे अब बहुत लिखने से क्या है। इस सूक्त में अग्नि के प्रकाश करनेवाले सब चेष्टा बल और आयु के निमित्त वायु और उस वायु विद्या को जाननेवाले राज* प्रजा के विद्वानों के गुण वर्णन से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिये। यह चौदहवां वर्ग और सैंतीसवां सूक्त समाप्त हुआ॥३७॥सं० उ० के अनुसार जाने। सं०* सं० वा० के अनुसार राजा, प्रजा, अश्वों और विद्वानों। सं०

(ऋग्वेद ०१.३७.१५)

अथ प्रथमं मण्डलम्

[३८] अष्टात्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः - कण्वो घौरः देवता - मरूतः छन्दः - गायत्री स्वरः -षड्जः।

कद्ध॑ नू॒नं क॑धप्रियः पि॒ता पु॒त्रं न हस्त॑योः।

द॒धि॒ध्वे वृ॑क्तबर्हिषः॥

स्वर सहित पद पाठ

कत्। ह। नू॒नम्। क॒ध॒ऽप्रि॒यः॒। पि॒ता। पु॒त्रम्। न। हस्त॑योः। द॒धि॒ध्वे। वृ॒क्त॒ऽब॒र्हि॒षः॒॥

विषय (भाषा)- अब अड़तीसवें सूक्त का आरम्भ है। उसके पहले मंत्र में वायु के समान मनुष्यों को होना चाहिये, इस विषय का वर्णन अगले मंत्र में किया है।

सन्धिच्छेदसहितोऽन्वयः- हे कधप्रिया वृक्तबर्हिषः विद्वांसः पिता हस्तयोः पुत्रं न मरुतः लोकान् इव कत् ह नूनं यज्ञकर्म दधिध्वे॥१॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(कधप्रियः)** प्रत्येक कथाओं से प्रीति करानेवाले **(वृक्तबर्हिषः)** ऋत्विज विद्वानों! **(पिता)** उत्पन्न करनेवाला पिता **(पुत्रम्)** पुत्र को **(न)** जैसे **(हस्तयोः)** हाथों में [धारण करता है और] **(मरुतः)** पवन **(लोकान्)** लोकों को [धारण कर रहे हैं], **(इव)** ऐसे ही **(नूनम्)** निश्चित रूप से **(कत्)** कब **(ह)** प्रसिद्ध **(यज्ञकर्म)** यज्ञकर्म **(दधिध्वे)** तुम धारण करोगे॥१॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यथा पिता हस्ताभ्यां स्वपुत्रं गृहीत्वा शिक्षित्वा पालयित्वा सत्कार्येषु नियोज्य सुखी भवति तथैव ये मनुष्या मरुतो लोकानिव विद्यया यज्ञं गृहीत्वा युक्त्या संसेवन्ते त एव सुखिनो भवन्तीति॥१॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- इस मंत्र में उपमा और वाचक लुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे पिता हाथों से अपने पुत्र को ग्रहण कर शिक्षापूर्वक पालना तथा अच्छे कार्यों में नियुक्त करके सुखी होता और जैसे पवन सब लोकों को धारण करते हैं वैसे* विद्या से यज्ञ का ग्रहण कर युक्ति से अच्छे प्रकार सेवन करते हैं वे ही सुखी होते हैं॥१॥

(ऋग्वेद ०१. ३८.०१)

ऋषिः - कण्वो घौरः देवता - मरूतः छन्दः - निचृद्गायत्रीस्वरः - षड्जः।

क्व॑ नू॒नं कद्वो॒ अर्थं॒ गन्ता॑ दि॒वो न पृ॑थि॒व्याः।

क्व॑ वो॒ गावो॒ न र॑ण्यन्ति॥

स्वर सहित पद पाठ

क्व॑। नू॒नम्। कत्। व॒ः। अर्थ॑म्। गन्ता॑। दि॒वः। न। पृ॒थि॒व्याः। क्व॑। व॒ः। गावः॑। न। र॒ण्य॒न्ति॒॥

विषय(भाषा)- फिर मनुष्यों को परस्पर किस प्रकार प्रश्नोत्तर करना चाहिये, इस विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिच्छेदसहितोऽन्वयः- मनुष्या यूयं पृथिव्या कत् नूनं दिवो गावः अर्थं गन्त, क्व वः युष्माकम् अर्थं गन्त तथा वः युष्माकं गावः रण्यन्ति न इव मरुतः क्व रणन्ति॥२॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- **(मनुष्या)** हे मनुष्यों! **(यूयम्)** तुम सब **(पृथिव्याः)** भूमि के ऊपर **(कत्)** कब **(नूनम्)** निश्चित रूप से **(दिवः)** प्रकाश करनेवाले सूर्य की **(गावः)** किरणें **(अर्थम्)** पदार्थों को **(गन्त)** प्राप्त होती हैं। **(वः)** तुम्हारे **(अर्थम्)** पदार्थ **(क्व)** कहाँ **(गन्त)** प्राप्त होते हैं! **(तथा)** वैसे ही **(वः)** तुम्हारे **(गावः)** पशुओं की इन्द्रियां **(रण्यन्ति)** शब्द करती हैं। **(न)** ऐसे ही **(मरुतः)** वायु **(क्व)** कहाँ **(रण्यन्ति)** शब्द करते हैं!॥२॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- अत्रोपमालंकारौ। यथा सूर्यस्य किरणाः पृथिव्यां स्थितान् पदार्थान् प्रकाशयन्ति। तथा यूयमपि विदुषां समीपं प्राप्य क्व वायूनां नियोगः कर्त्तव्य इति तान् पृष्ट्वाऽर्थान् प्रकाशयत। यथा गावः स्ववत्सान् प्रति शब्दयित्वा धावन्ति तथा यूयमपि विदुषां संगं कर्त्तुं शीघ्रं गच्छत गत्वा शब्दयित्वाऽस्माकमिन्द्रियाणि वायुवत् क्व स्थित्वाऽर्थान् प्रति गच्छन्तीति पृष्ट्वा युष्माभिर्निश्चेतव्यम्॥२॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- इस मंत्र में दो उपमालङ्कार हैं। हे मनुष्यो जैसे सूर्य की किरणें पृथिवी में स्थित हुए पदार्थों को प्रकाश करती हैं वैसे तुम भी विद्वानों के समीप जाकर, कहाँ पवनों का नियोग करना चाहिये ऐसा पूछ कर अर्थों को प्रकाश करो और जैसे गौ अपने बछड़ों के प्रति शब्द करके दौड़ती हैं वैसे तुम भी विद्वानों के सङ्ग करने को प्राप्त हो तथा हम लोगों की इन्द्रियाँ वायु के समान कहाँ स्थित होकर अर्थों को प्राप्त होती हैं ऐसा पूछ कर निश्चय करो॥२॥

(ऋग्वेद ०१. ३८.०२)

ऋषिः - कण्वो घौरः देवता - मरूतः छन्दः - पादनिचृद्गायत्री स्वरः - षड्जः।

क्व॑ वः सु॒म्ना नव्याँ॑सि॒ मरु॑तः॒ क्व॑ सु॒वि॒ता।

क्वो॒३ विश्वा॑नि॒ सौभ॑गा॥

स्वर सहित पद पाठ

क्व॑। वः॒। सु॒म्ना। नव्याँ॑सि। मरु॑तः। क्व॑। सु॒वि॒ता। क्वो॒ इति॑। विश्वा॑नि। सौभ॑गा॥

विषय (भाषा)- फिर भी उक्त विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिच्छेदसहितोऽन्वयः- हे मरुतः मनुष्या यूयं विदुषां संदेशं प्राप्य वः युष्माकं क्व विश्वानि नव्यांसि सुम्ना क्व सुविता सौभगाः सन्ति इति पृच्छत॥३॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(मरुतः)** वायु के समान शीघ्र गमनकारी **(मनुष्या)** मनुष्यों! **(यूयम्)** तुम सब **(विदुषाम्)** विद्वानों का **(संदेशम्)** संदेश **(प्राप्य)** प्राप्त करके, **(वः)** तुम सब विद्वानों का **(क्व)** किन्हीं **(विश्वानि)** समस्त **(नव्यांसि)** नवीन **(सुम्ना)** सुखों की **(सुविता)** प्रेरणा **और (सौभगा)** सौभाग्य प्राप्ति करानेवाले कर्म **(क्व)** कहाँ **(सन्ति)** हैं, **(इति)** ऐसा **(पृच्छत)** पूछो॥३॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- अत्र लुप्तोपमालङ्कारः। हे शुभे कर्म्माणि वायुवत् क्षिप्रं गन्तारो मनुष्या युष्माभिर्विदुषः प्रति पृष्ट्वा यथा नवीनानि क्रियासिद्धिनिमित्तानि कर्म्माणि नित्यं प्राप्येरंस्तथा प्रयतितव्यम्॥३॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- इस मंत्र में लुप्तोपमालङ्कार है। हे शुभ कर्मों में वायु के समान शीघ्र चलनेवाले मनुष्यों ! तुम लोगों को चाहिये कि विद्वानों के प्रति पूछ कर जिस प्रकार नवीन क्रिया की सिद्धि के निमित्त कर्म प्राप्त होवें वैसा अच्छे प्रकार निरन्तर यत्न किया करो॥३॥

(ऋग्वेद ०१. ३८.०३)

ऋषिः - कण्वो घौरः देवता – मरूतः छन्दः - निचृद्गायत्री स्वरः - षड्जः।

यद्यू॒यं पृ॑श्निमातरो॒ मर्ता॑सः॒ स्यात॑न।

स्तो॒ता वो॑ अ॒मृतः॑ स्यात्॥

स्वर सहित पद पाठ

यत्। यूयम्। पृश्निऽमातरः। मर्तासः। स्यातन। स्तोता। वः। अमृतः। स्यात्॥

विषय (भाषा)- फिर वे राजपुरुष कैसे होने चाहियें, इस विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिच्छेदसहितोऽन्वयः:- हे पृश्निमातर इव वर्त्तमाना मर्त्तासः यूयं यत् यदि पुनषार्थिनः स्यातन तर्हि वः स्तोता अमृतः स्यात्॥४॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(पृश्निमातरः)** जिन वायुओं का आकाश माता है, उनके सदृश **(वर्त्तमाना)** विद्यमान **(मर्त्तासः)** मरणधर्मवाले राजा और प्रजा के लोगों ! **(यूयम्)** तुम सब **(यत्)** यदि **(पुरुषार्थिनः)** पुरुषार्थी **(स्यातन)** हो जाओ **(तर्हि)** तो **(वः)** तुम सब **(स्तोता)** स्तुतिकर्त्ता सभाध्यक्ष राजा **(अमृतः)** शत्रुओं से अप्रभावित **(स्यात्)** हो जाओगे, अर्थात् शत्रु तुम्हें मार नहीं पायेंगे ॥४॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- राजप्रजापुरुषैरालस्यं त्यक्त्वा वायव इव स्वकर्मसु नियुक्तैर्भवितव्यम्। यत एतेषां रक्षकः सभाध्यक्षो राजा शत्रुभिर्हन्तुमशक्यो भवेत्॥४॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- राजा और प्रजा के पुरुषों को उचित है कि आलस्य छोड़ वायु के समान अपने-अपने कामों में नियुक्त होवें, जिससे सब का रक्षक सभाध्यक्ष राजा शत्रुओं से मारा नहीं जा सकता॥४॥

(ऋग्वेद ०१.३८.०४)

ऋषिः - कण्वो घौरः देवता - मरूतः छन्दः - पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री स्वरः - षड्जः।

मा वो मृगो न यवसे जरिता भूदजोष्यः।
पथा यमस्य गादुप॥

स्वर सहित पद पाठ

मा। वः। मृगः। न। यवसे। जरिता। भूत्। अजोष्यः। पथा। यमस्य। गात्। उप॥

विषय(भाषा)- उन वायुओं के संबंध से जीव को क्या होता है, इस विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिच्छेदसहितोऽन्वयः:- हे राजप्रजाजना यूयं यवसे मृगः न इव वः जरिता अजोष्यः मा भूत् यमस्य पथा च मा उप गात् एवं विधत्ते॥५॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(राजप्रजाजना)** राज्य के प्रजाजनों! **(यूयम्)** तुम सब **(यवसे)** खाने योग्य घास में [हिरन जैसे खाता है], **(मृगः)** हिरन **(न)** जैसे **(वः)** इन प्राण वायुओं को **(जरिता)** स्तुति करनेवाले लोग **(अजोष्यः)** प्रयोग करने योग्य नहीं **(भूत्)** होवें। **(यमस्य)** वह वायु जो रोकी गई हो, **(पथा)** वह श्वास प्रश्वासरूपी मार्ग में **(च)** भी **(उप)** निकटता से **(मा)** न **(गात्)** जाए। **(एवम्)** इसी प्रकार से **(विधत्त)** [श्वास प्रश्वास को] विभाजित करो ॥५॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- अत्रोपमालङ्कारः। यथा हरिणा निरन्तरं घासं भक्षयित्वा सुखिनो भवन्ति तथा प्राणविद्याविन्मनुष्यो युक्त्याऽऽहारविहारं कृत्वा यमस्य मार्गं मृत्युं नोपगच्छेत् पूर्णमायुर्भुक्त्वा शरीरं सुखेन त्यजेत् ॥५॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- इस मंत्र में उपमालङ्कार है। जैसे हिरन युक्ति से निरन्तर घास खा-कर सुखी होते हैं वैसे प्राण वायु की विद्या को जाननेवाला मनुष्य युक्ति के साथ अहार-विहार कर वायु के मार्ग से अर्थात् मृत्यु को प्राप्त नहीं होता और संपूर्ण अवस्था को भोग के सुख से शरीर को छोड़ता है अर्थात् सदा विद्या पढ़ें पढ़ावें कभी विद्यार्थी और आचार्य वियुक्त न हों और प्रमाद करके अल्पायु में न मर जायें ॥५॥

(ऋग्वेद ०१. ३८.०५)

ऋषिः - कण्वो घौरः देवता - मरूतः छन्दः - निचृद्गायत्री स्वरः - षड्जः।

मो षु णः परा॑परा निर्ऋ॑तिर्दु॒र्हणा॑ वधीत्।

प॒दी॒ष्ट तृष्ण॑या स॒ह ॥

स्वर सहित पद पाठ

मो इति॑। सु। नः॒। परा॑ऽपरा। निःऽऋ॑तिः। दुः॒ऽहना॑। व॒धी॒त्। प॒दी॒ष्ट। तृष्ण॑या। स॒ह ॥

विषय(भाषा)- फिर भी पूर्वोक्त विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिच्छेदसहितोऽन्वयः- हे अध्यापका यूयं यथा पराऽपरा दुर्हणा निर्ऋतिः मरुतां प्रतिकूला गतिः तृष्णया सह नः अस्मान् मा उपदिष्ट मा उप वधीत् च किंतु एतेषां या सुष्ठु सुखप्रदा गतिः सा अस्मान् नित्यं प्राप्ता भवेत् एवं प्रयतध्वम् ॥६॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(अध्यापका)** अध्यापकों**!** **(यथा)** जैसे **(यूयम्)** तुम सब **(पराऽपरा)** उत्कृष्ट और निकृष्ट **(दुर्हणा)** दुःख से नष्ट करने योग्य, **(निर्ऋतिः)** वायु की रोग करनेवाली और दुःख देनेवाली गतियां और **(मरुताम्)** वायु की **(प्रतिकूला)** प्रतिकूल **(गतिः)** गतियां [होती हैं]। **(तृष्णया)** प्यास से प्यासा या उसके लोभ में पड़े हुए का **(सह)** संयोग **(नः)** हमारे लिये **(उपदिष्ट)** नियत **(मा)** न करो। **(उप)** समीप से **(वधीत्+च)** नष्ट भी करो। **(किंतु)** किंतु

(एतेषाम्) इनको, **(या)** जो **(सुष्ठ)** शोभनीय और **(सुखप्रदा)** सुख प्रदान करनेवाली [वायु की] **(गतिः)** गतियां हैं, **(सा)** वह **(अस्मान्)** हमें **(नित्यम्)** नित्य **(प्राप्ता)** प्राप्त **(भवेत्)** होवें। **(एवम्)** ऐसे ही **(प्रयतध्वम्)** तुम प्रयत्न करो॥६॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- मरुतां द्विविधा गतिरेका सुखकारिणी द्वितीया दुःखकारिणी च, तत्र या सुनियमैः सेविता रोगान् हन्त्री सती शरीरादिसुखहेतुर्भवति साऽऽद्या। या च कुनियमैः प्रमादेनोत्पादिता कृच्छ्रदुःखरोगप्रदा साऽपरा। एतयोर्मध्यान्मनुष्यैः परमैश्वराऽनुग्रहेण विद्वत्संगेन स्वपुरुषार्थैश्चप्रथमामुत्पाद्य द्वितीयां निहत्य सुखमुन्नेयम्। यः पिपासादिधर्मः स वायुनिमित्तेनैव यश्च लोभवेगः सोऽज्ञानेनैव जायत इति वेद्यम्॥६॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- पवनों की दो प्रकार की गति होती है एक सुख कारक और दूसरी दुःख करनेवाली उनमें से जो उत्तम नियमों से सेवन की हुई रोगों का हनन करती हुई शरीर आदि के सुख का हेतु है वह प्रथम और जो खोटे नियम और प्रमाद से उत्पन्न हुई क्लेश दुःख और रोगों की देनेवाली वह दूसरी इन्हों के मध्य में से मनुष्यों को अति उचित है कि परमेश्वर के अनुग्रह और अपने पुरुषार्थों से पहिली गति को उत्पन्न करके दूसरी गति का नाश करके सुख की उन्नति करनी चाहिये और जो पिपासा आदि धर्म हैं वह वायु के निमित्त से तथा जो लोभ का वेग है वह अज्ञान से ही उत्पन्न होता है॥६॥

(ऋग्वेद ०१. ३८.०६)

ऋषिः - कण्वो घौरः देवता -मरूतः छन्दः - निचृद्गायत्री स्वरः -षड्जः।

स॒त्यं त्वे॒षा अम॑वन्तो॒ धन्व॑ञ्चि॒दा रु॒द्रिया॑सः।

मिहं॑ कृण्वन्त्यवा॒ताम्॥

स्वर सहित पद पाठ

स॒त्यम्। त्वे॒षाः। अम॑ऽवन्तः। धन्व॑म्। चि॒त्। आ। रु॒द्रिया॑सः। मिह॑म्। कृ॒ण्व॒न्ति॒। अ॒वा॒ताम्॥

विषय(भाषा)- फिर वे कैसे हों, इस विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिच्छेदसहितोऽन्वयः- हे मनुष्या यूयं धन्वन् अन्तरिक्षे त्वेषा अमवन्तः रुद्रियासः मरुतः वर्त्तन्ते अवातां मिहं वृष्टिम् आकृण्वंति तेषां मरुतां सत्यकर्म अस्ति चित् इव अनुतिष्ठत॥७॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(मनुष्या)** मनुष्यों! **(यूयम्)** तुम सब **(धन्वन्)** अन्तरिक्ष या मरुस्थल में **(त्वेषाः)** बाह्य और

आन्तरिक घर्षण से उत्पन्न विद्युत् की ऊर्जा से प्रदीप्त, **(अमवन्तः)** जिनका रोगों और गमनागमन रूप वालों के साथ सम्बन्ध है, **(रुद्रियासः) वे** प्राणियों के जीवन के निमित्त वायु **(मरुतः)** वायु **(वर्त्तन्ते)** हैं। **(अवाताम्)** जिनमें वायु अविद्यमान हैं, उनमें**(आ)** हर ओर से **(मिहम्)** वर्षा **(कृण्वन्ति)** करती हैं। **(तेषाम्)** उन **(मरुताम्)** पवनों का **(सत्यकर्म)** [यह] सत्यकर्म **(अस्ति)** है, **(चित्)** ऐसे ही **(अनुतिष्ठत)** [तुम सत्यकर्मों को] निष्पादित करो ॥७॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- मनुष्यैर्यथा येन्तरिक्षस्थाःसत्यगुणस्वभावा वायवो वृष्टिहेतवः सन्ति त एव युक्त्या परिचरिता अनुकूला सन्तः सुखयन्ति। अयुक्त्या सेविताः प्रतिकूलाः सन्तश्च दुःखयन्ति तथा युक्त्या धर्माऽनुकूलानि कर्माणि सेव्यानि ॥७॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- मनुष्यों को चाहिये कि जैसे अन्तरिक्ष में रहने तथा सत्यगुण और स्वभाववाले पवन वृष्टि के हेतु हैं वे ही युक्ति से सेवन किये हुए अनुकूल होकर सुख देते और युक्ति रहित सेवन किये प्रतिकूल होकर दुःखदायक होते हैं वैसे युक्ति से धर्मानुकूल कर्मों का सेवन करें ॥७॥

(ऋग्वेद ०१. ३८.०७)

ऋषिः - कण्वो घौरः देवता - मरूतः छन्दः - गायत्री स्वरः - षड्जः।

वा॒श्रेव॑ वि॒द्युन्मि॑माति व॒त्सं न मा॒ता सि॑षक्ति।

यदे॑षां वृ॒ष्टिरस॑र्जि ॥

स्वर सहित पद पाठ

वा॒श्राऽइ॑व। वि॒ऽद्युत्। मि॒मा॒ति॒। व॒त्सम्। न। मा॒ता। सि॒ष॒क्ति॒। य॒त्। ए॒षा॒म्। वृ॒ष्टिः। अस॑र्जि ॥

विषय(भाषा)- ये मनुष्य किसके समान क्या करें, इस विषय का उपदेश इस मन्त्र में किया है।

सन्धिच्छेदसहितोऽन्वयः- हे मनुष्या यूयं यत् येषां विद्युत् वत्सं वा वाश्रेव मिहं मिमाति कामयमाना माता पयसा पुत्रं सिषक्ति न इव यया वृष्टिः असर्जि सृज्यते तथा एव परस्परं शुभगुणवर्षणेन सुखकारका भवत ॥८॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(मनुष्या)** मनुष्यों! **(यूयम्)** तुम सब **(यत्)** जो **(एषाम्)** पवनों के योग द्वारा **(विद्युत्)** बिजली [उत्पन्न होती है], **(वा)** अथवा **(वाश्रेव)** जैसे इच्छा करती हुई गाय **(वत्सम्)** अपने बछड़े को [देखते हुए] **(मिमाति)** शब्द करती है, [वैसे ही] **(कामयमाना)** इच्छा करती हुई **(माता)** मान्यता देनेवाली माता [गाय] **(पयसा)**

दूध का **(पुत्रम्)** पुत्र को **(सिषक्ति)** उपभोग कराती है। **(न)** जैसे (यया) जिसके द्वारा **(वृष्टिः)** अन्तरिक्ष का जल नीचे गिराया जाता है [और] **(असर्जि)** [वर्षा का] निर्माण किया जाता है, **(तथा)** वैसे **(एव)** ही **(परस्परम्)** परस्पर **(शुभगुणवर्षणेन)** शुभगुणों की वर्षा **(सुखकारका)** सुख प्रदान करनेवाली **(भवत)** होवे॥८॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- अत्रोपमालंकारौ। यथा स्वस्ववत्सान् सेवितुं कामयमाना धेनवो मातरः स्वपुत्रान् प्रत्युश्चैः शब्दानुच्चार्य धावन्ति तथैव विद्युन्महाशब्दं कुर्वन्ती मेघावयवान्सेवितुं धावति॥८॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- इस मंत्र में दो उपमालङ्कार है। हे विद्वान् मनुष्यो ! तुम लोगों को उचित है कि जैसे अपने-अपने बछड़ों को सेवन करने के लिये इच्छा करती हुई गौ और अपने छोटे बालक को सेवने हारी माता ऊंचे स्वर से शब्द करके उनकी ओर दौड़ती हैं वैसे ही बिजुली बड़े-बड़े शब्दों को करती हुई मेघ के अवयवों के सेवन करने के लिये दौड़ती है॥८॥

(ऋग्वेद ०१. ३८.०८)

ऋषिः - कण्वो घौरः देवता - मरूतः छन्दः - निचृद्गायत्री स्वरः - षड्जः।

दिवा॑ चि॒त्तमः॑ कृण्वन्ति प॒र्जन्ये॑नोदवा॒हेन॑।

यत्पृ॑थि॒वीं व्यु॒न्दन्ति॑॥

स्वर सहित पद पाठ

दिवा॑। चि॒त्। तमः॑। कृ॒ण्व॒न्ति॒। प॒र्जन्ये॑न। उ॒द॒ऽवा॒हेन॑। यत्। पृ॒थि॒वीम्। वि॒ऽउ॒न्दन्ति॑॥

विषय(भाषा)- फिर वे वायु क्या करते हैं, इस विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिच्छेदसहितोऽन्वयः- हे मनुष्या यत् ये वायव उद्वाहेन पर्जन्येन दिवा तमः चित् कृण्वन्ति पृथिवीं व्युन्दन्ति तान् युक्त्या उपकुरुत॥९॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(मनुष्या)** मनुष्यों! **(यत्)** जो **(वायवः)** वायु **(उद्वाहेन)** जलों को ले जाते है [और] **(पर्जन्येन)** वर्षा से **(दिवा)** दिन में, **(तमः)** अन्धकार **(चित्)** जैसा **(कृण्वन्ति)** कर देते हैं [और] **(पृथिवीम्)** विस्तारित भूमि को **(व्युन्दन्ति)** विविध प्रकार से गीला कर देते हैं। **(तान्)** उनका **(युक्त्या)** कुशलता से **(उपकुरुत)** उपकार करो॥९॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- अत्रोपमालङ्कारः। वायव एव जलावयवान् कठिनीकृत्य घनाकारं मेघं† दिवसेप्यंधकारं जनित्वा पुनर्विद्युतमुत्पाद्य तया तान् छित्वा पृथिवीं प्रति निपात्य जलैः स्निग्धां कृत्वानेकानोषध्यादिसमूहान् जनयन्तीति

विद्वांसोऽन्यानुपदिशन्तु॥९॥ †[उत्पाद्य।]

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- इस मंत्र में उपमालङ्कार है। पवन ही जलों के अवयवों को कठिन सघनाकार मेघ को उत्पन्न उस बिजुली में उन मेघों के अवयवों को छिन्न-भिन्न और पृथिवी में गेर कर जलों से स्निग्ध करके अनेक औषधी आदि समूहों को उत्पन्न करते हैं उनका उपदेश विद्वान् लोग अन्य मनुष्यों को सदा किया करें॥९॥ सं० भा० के अनुसार- कठिन कर, सघनाकार मेघ को उत्पन्न करके फिर बिजली को पैदा कर उस०। सं०

(ऋग्वेद ०१. ३८.०९)

ऋषि: - कण्वो घौरः देवता - मरूतः छन्दः - निचृद्गायत्रीस्वरः - षड्जः।

अध॑ स्व॒नान्म॒रुतां॒ विश्व॒मा सद्म॒ पार्थि॑वम्।

अरे॑जन्त॒ प्र मानु॑षाः॥

स्वर सहित पद पाठ

अध॑। स्व॒नात्। म॒रुताम्। विश्व॑म्। आ। सद्म॑। पार्थि॑वम्। अरे॑जन्त। प्र। मानु॑षाः॥

विषय(भाषा)- फिर इन पवनों के योग से क्या होता है, इस विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिच्छेदसहितोऽन्वयः- हे मानुषा यूयं येषां मरुतां स्वनात् अध विश्वं पार्थिवं सद्म कम्पते प्राणिनः प्र अरेजन्त प्र कम्पन्ते चलन्तीति तान् विजानीत॥१०॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(मानुषाः)** मनुष्यों! **(यूयम्)** तुम सब **(येषाम्)** जिन **(मरुताम्)** वायु और विद्युत् के निकट से **(स्वनात्)** उत्पन्न शब्दों के द्वारा **(अध)** अंतराल की अनुपस्थिति में **(विश्वम्)** समस्त **(पार्थिवम्)** पृथिवी की जानी हुई वस्तुएँ **(सद्म)** जिस घर में रहती हैं, [वह स्थान] **(कम्पते)** कम्पन करता है [और] **(प्राणिनः)** प्राणी **(प्र)** अलग-अलग **(अरेजन्त)** कम्पन्ते हैं। **(तान्)** उनको [जो] **(चलन्तीति)** कम्पन करते हैं, ऐसे ही, **(विजानीत)** विशेष रूप से जानो॥१०॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- हे ज्योतिर्विदो विपश्चितो भवन्तो मरुतां योगेनैव सर्वं मर्तिमद्द्रव्यं चेष्टते प्राणिनो भयंकराद्विद्युच्छब्दाद्भीत्वा कम्पते पृथिव्यादिकं प्रतिक्षणं भ्रमतीति निश्चिन्वन्तु॥१०॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- हे ज्योतिष्य शास्त्र के विद्वान लोगो ! आप पवनों के योग ही के सब मूर्त्तिमान् द्रव्य

चेष्टा को प्राप्त होते प्राणी लोग बिजुली के भयंकर शब्द में भय को प्राप्त होकर कंपित होते और भूगोल आदि प्रतिक्षण भ्रमण किया करते हैं ऐसा निश्चित समझो ॥१०॥

(ऋग्वेद ०१. ३८.१०)

ऋषिः - कण्वो घौरः देवता - मरूतः छन्दः - गायत्री स्वरः - षड्जः।

मरु॑तो वीळुपा॒णिभि॑श्चि॒त्रा रोध॑स्वती॒रनु॑।

या॒तेमखि॑द्रयामभिः ॥

स्वर सहित पद पाठ

मरु॑तः। वी॒ळु॒पा॒णिऽभिः॑। चि॒त्राः। रोध॑स्वतीः। अनु॑। या॒त। ई॒म्। अखि॑द्रयामऽभिः ॥

विषय(भाषा)- फिर वे मनुष्य पवनों से क्या करते हैं, इस विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिच्छेदसहितोऽन्वयः- हे मरुतः यूयम् अखिद्रयामभिः वीळुपाणिभिः पवनैः सह रोधस्वतीः चित्रा ईम् अनुयात ॥११॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(मरुतः)** योग व्यवहार के साधक पुरुषो! **(यूयम्)** तुम सब, **(अखिद्रयामभिः)** जिनके पास अच्छिन्न और निरन्तर रहनेवाले वेद हैं। **(वीळुपाणिभिः)** जिनके हाथ और ग्रहण करने के साधन व्यवहार में मजबूत बलवाले हैं, **(पवनैः)** ऐसे पवनों के **(सह)** साथ **(रोधस्वतीः)** बहुत प्रकार के बांध जिन नदियों या नाडियों में हैं, उनके **(चित्राः)** अद्भुत गुणों के **(अनु)** अनुकूल **(ईम्)** ही **(यात)** [उपकार] प्राप्त हों ॥११॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- वायुषु गमनबलव्यवहारहेतूनि कर्माणि स्वाभाविकानि सन्ति। एते खलु नदीनां गमयितारो नाडींनां मध्ये गच्छन्तो रुधिररसादिकं शरीराऽवयवेषु प्रापयन्ति तस्माद्योगिभिर्योगाभ्यासेनेतरैर्जनैश्च बलादिसाधनाय वायुभ्यो महोपकारा ग्राह्याः ॥११॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- पवनों में गमन बल और व्यवहार होने के हेतु स्वाभाविक धर्म हैं और ये निश्चय करके नदियों को चलानेवाले नाड़ियों के मध्य में गमन करते हुए रुधिर रसादि को शरीर के अवयवों में प्राप्त करते हैं इस कारण योगी लोग योगाभ्यास और अन्य मनुष्य बल आदि के साधनरूप वायुओं से बड़े- बड़े उपकार ग्रहण करें ॥११॥

(ऋग्वेद ०१. ३८.११)

ऋषिः- कण्वो घौरःदेवता - मरूतःछन्दः- पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्रीस्वरः - षड्जः।

स्थि॒रा व॑: सन्तु ने॒मयो॒ रथा॒ अश्वा॑स एषाम्।

सुसं॑स्कृता अ॒भीश॑वः॥

स्वर सहित पद पाठ

स्थि॒राः। व॒ः। स॒न्तु॒। ने॒मय॑ः। रथा॑ः। अश्वा॑सः। ए॒षा॒म्। सुऽसं॑स्कृताः। अ॒भीश॑वः॥

विषय(भाषा)- फिर भी उक्त विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिच्छेदसहितोऽन्वयः- हे विद्वांसः मनुष्या वः युष्माकम् एषां मरुतां सकाशात् सुसंस्कृता नेमयः रथा अभीशवः अश्वासः च स्थिराः सन्तु॥१२॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(विद्वांसः)** विद्वान् **(मनुष्या)** मनुष्यों! **(वः)** तुम सब **(एषाम्)** इन **(मरुताम्)** पवनों को **(सकाशात्)** निकट से **(सुसंस्कृता)** खूबसूरती से सजाये गये **(नेमयः)** कलाचक्रवाले [पहियेवाले] **(रथाः)** विमान आदि यानों **(अभीशवः)** जो हर ओर से मार्गों को व्याप्त करनेवाली किरणों या घोड़ियों के सदृश हैं। **(अश्वासः)** अग्नि आदि या घोड़ों के सदृश **(स्थिराः)** दृढ़ बलयुक्त **(च)** भी **(सन्तु)** होवें॥१२॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- ईश्वर उपदिशति। हे मनुष्या युष्माभिर्विविधकलाचक्राणि यानानि रचयित्वा तेष्वग्निजलादीनां शीघ्रं यातॄणां संप्रयोगेण वायूनां योगात्सुखेन सर्वतो गमनागमनानि शत्रुविजयादयः सर्वे व्यवहाराः संसाधनीया इति॥१२॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- ईश्वर उपदेश करता है। हे मनुष्यो ! तुमको चाहिये कि अनेक प्रकार के कलाचक्र युक्त विमान आदि यानों को रच कर उनमें जल्दी चलनेवाले अग्नि जल के सम्प्रयोग वा पवनों के योग से सुख पूर्वक जाने-आने और शत्रुओं को जीतने आदि सब व्यवहारों को सिद्ध करो॥१२॥

(ऋग्वेद ०१.३८.१२)

ऋषिः - कण्वो घौरःदेवता - मरूतःछन्दः - गायत्रीस्वरः -षड्जः।

अच्छा॑ वदा॒ तना॑ गि॒रा ज॒राये॒ ब्रह्म॑ण॒स्पति॑म्।

अ॒ग्निं मि॒त्रं न द॑र्श॒तम्॥

स्वर सहित पद पाठ

अच्छ॑। व॒द॒। तना॑। गि॒रा। ज॒रायै॑। ब्रह्म॑णः। पति॑म्। अ॒ग्निम्। मि॒त्रम्। न। द॒र्श॒तम्॥

विषय(भाषा)- फिर इस विमानादि विद्या का उपदेशक विद्वान् कैसा होवे, इस विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिच्छेदसहितोऽन्वयः- हे सर्व विद्याविद् विद्वन् त्वं ब्रह्मणः पतिं दर्शतम् अग्निं मित्रं न जरायै तना गिरा विमानादियानविद्याम् अच्छ आ वद॥१३॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(सर्व)** समस्त **(विद्याविद्)** विद्याओं के ज्ञाता **(विद्वन्)** विद्वान्! **(त्वम्)** तुम **(ब्रह्मणः)** वेद के अध्यापन और उपदेश से **(पतिम्)** पालक **(दर्शतम्)** दिखाई पड़ते हो। **(अग्निम्)** वेद के अध्यापन की शक्ति या गुणवाले और **(मित्रम्)** मित्र के **(न)** समान **(जरायै)** स्तुति के लिये **(तना)** गुणों का प्रकाश और विस्तार करनेवाले हो। **(गिरा)** अपनी वेदयुक्त वाणी से **(विमानादियानविद्याम्)** विमान आदि यानों के बनाने और चलाने की विद्या को **(अच्छ)** ठीक-ठीक रीति से **(आ)** हर ओर से **(वद)** उपदेश करो॥१३॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- अत्रोपमालङ्कारः। हे विद्वांसो मनुष्या यथा प्रियः सखा प्रीतं तेजस्विनं वेदोपदेशकं सुहृदं सेवागुणस्तुतिभ्यां प्रीणाति तथा सर्वविद्याविस्तारिकया वेदवाण्या विमानादियानरचनविद्यां तद्गुणज्ञानया सम्यगुपदिशत॥१३॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- इस मंत्र में उपमालङ्कार है। हे विद्वान् मनुष्यों ! तुम लोगों को चाहिये कि जैसे प्रिय मित्र अपने प्रिय तेजस्वी वेदोपदेशक मित्र को सेवा और गुणों की स्तुति से तृप्त करता है वैसे सब विद्याओं का विस्तार करनेवाली वेद वाणी से विमानादि यानों के रचने की विद्या का उसके गुण ज्ञान के लिये निरंतर उपदेश करो॥१३॥

(ऋग्वेद ०१.३८.१३)

ऋषिः - कण्वो घौरः देवता - मरूतः छन्दः - यवमध्याविराड्गायत्री

स्वरः - षड्जः।

मि॒मी॒हि श्लोक॑मा॒स्ये॑ प॒र्जन्य॑इव ततनः।

गाय॑ गाय॒त्रमु॒क्थ्य॑म्॥

स्वर सहित पद पाठ

मिमीहि। श्लोकम्। आस्ये। पर्जन्यःऽइव। ततनः। गाय। गायत्रम्। उक्थ्यम्॥

विषय (भाषा)- फिर उस विद्वान् का पढ़ाया शिष्य कैसा होना चाहिये, इसका उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिच्छेदसहितोऽन्वयः- हे विद्वन् मनुष्य त्वम् आस्ये श्लोकं मिमीहि तं च पर्जन्य इव ततनः। उक्थ्यं गायत्रं च गाय ॥१४॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(विद्वन्)** विद्वान् **(मनुष्य)** मनुष्य! **(त्वम्)** तुम **(आस्ये)** मुख में **(श्लोकम्)** वेद की शिक्षा से युक्त वाणी को **(मिमीहि)** निश्चित रूप से वाणी के रूप में बोलो। **(च)** और **(तम्)** उस [वाणी को] **(पर्जन्य इव)** जैसे मेघ गर्जन करते हुए वर्षा को विस्तारित करते हैं, ऐसे ही **(ततनः)** विस्तारित करो। **(उक्थ्यम्)** गाने और बोलने के योग्य **(गायत्रम्)** गायत्री छन्द छन्द के मन्त्रों को **(च)** भी **(गाय)** पढ़ो और पढ़ाओ॥१४॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- अत्रोपमालङ्कारः। हे विद्वद्भ्योधीतविद्या मनुष्या युष्माभिः सर्वथा प्रयत्नेन स्वकीयां वाणीं वेदविद्यासुशिक्षितां कृत्वा वाचस्पत्यं संपाद्य परमेश्वरस्य वाय्वादीनां च गुणाः स्तोतव्याः श्रोतव्या उपदेशनीयाश्च॥१४॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- इस मंत्र में उपमालङ्कार है। हे विद्वानों से विद्या पढ़े हुए मनुष्यों ! तुम लोगों को उचित है कि सब प्रकार प्रयत्न के साथ वेद विद्या से शिक्षा की हुई वेदवाणी से वाणी के वेत्ता के समान वक्ता होकर वायु आदि पदार्थों के गुणों की स्तुति तथा उपदेश किया करो॥१४॥

(ऋग्वेद ०१.३८.१४)

ऋषिः - कण्वो घौरःदेवता - मरूतःछन्दः - गायत्रीस्वरः - षड्जः।

वन्दस्व मारुतं गणं त्वेषं पनस्युमर्किणम्।

अस्मे वृद्धा असन्निह॥

स्वर सहित पद पाठ

वन्दस्व। मारुतम्। गणम्। त्वेषम्। पनस्युम्। अर्किणम्। अस्मे इति। वृद्धाः। असन्। इह॥

विषय(भाषा)- फिर वह विद्वान् क्या करे, इस विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिच्छेदसहितोऽन्वयः- हे विद्वंन् त्वं यथा इह अस्मे वृद्धा असन् तथा अर्किणम् त्वेषं पनस्युं मारुतं गणं वन्दस्व॥१५॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(विद्वंन्)** विद्वान्! **(त्वम्)** तुम **(यथा)** जैसे, **(इह)** इस सब व्यवहार में **(अस्मे)** हम लोगों के

बीच में, **(वृद्धाः)** अधिक विद्या से युक्त वृद्ध **(असन्)** होवें। **(तथा)** वैसे ही **(अर्किणम्)** प्रशंसनीय स्तुतियां जिनमें हैं, ऐसे **(त्वेषम्)** अग्नि आदि के प्रकाश के समान द्रव्य से युक्त **(पनस्युम्)** जिससे व्यवहार करता है, उसकी अपनी इच्छा के लिये **(मारुतम्)** इस पवन के **(गणम्)** समूह की **(वन्दस्व)** कामना करो॥१५॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्यथा वायवः कार्याणि साधकत्वेन सुखप्रदा भवेयुस्तथा विद्यापुरुषार्थाभ्यां प्रयतितव्यम्॥१५॥

सूक्तस्य भावार्थः- अथास्मिन् वायु दृष्टान्तेन विद्वद्गुणवर्णितेनातीतेन सूक्तेन सहास्य संगतिरस्तीति बोध्यम्। इति सप्तदशो वर्गोऽष्टात्रिशं सूक्तं च समाप्तम्॥३८॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- इस मंत्र में लुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जैसे पवन कार्यों को सिद्ध करने के साधन होने से सुख देनेवाले होते हैं वैसे विद्या और अपने पुरुषार्थ से सुख किया करें॥१५॥

सूक्त का भावार्थ- इस सूक्त में वायु के दृष्टान्त से विद्वानों के गुण वर्णन करने से पूर्व सूक्त के साथ इस सूक्त की संगति जाननी चाहिये यह सत्रहवां वर्ग और अड़तीसवां सूक्त समाप्त हुआ॥३८॥

(ऋग्वेद ०१. ३८.१५)

अथ प्रथमं मण्डलम्

[३९] एकोनचत्वारिशं सूक्तम्

ऋषिः - कण्वो घौरः देवता – मरूतः छन्दः - पथ्यावृहती स्वरः- मध्यमः।

प्र यदि॒त्था प॑रा॒वतः॑ शो॒चिर्न मान॒मस्य॑थ।

कस्य॒ क्रत्वा॑ मरुत॒ः कस्य॒ वर्प॑सा॒ कं या॑थ॒ कं ह॑ धूतयः॥

स्वर सहित पद पाठ

प्र। यत्। इ॒त्था। प॒रा॒ऽवतः॑। शो॒चिः। न। मान॑म्। अस्य॑थ। कस्य॑। क्रत्वा॑। मरुतः॑। कस्य॑। वर्प॑सा। कम्। या॒थ॒। कम्। ह॒। धू॒त॒य॒ः॥

विषय(भाषा)- अब उनतालिसवें सूक्त का आरंभ है। फिर वे विद्वान् लोग परस्पर किस-किस प्रकार संवाद करें, इस विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिच्छेदसहितोऽन्वयः- हे मरुतः यूयं यत् ये धूतयः वायवः इव शोचिः न परावतः कस्य मानम् अमस्यथ। इत्था ह कस्य क्रत्वा वर्पसा च कं याथ च इति समाधानानि ब्रूत॥१॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(मरुतः)** विद्वान् लोगो! **(यूयम्)** तुम सब **(यत्)** जो **(धूतयः)** कम्पाते हैं, और **(वायवः)** वायु **(इव)** के समान **(शोचिः)** सूर्य की रश्मियां पृथिवी पर फेंकते हैं, **(न)** ऐसे ही **(परावतः)** दूर से [कार्य करनेवाले] **(कस्य)** सुखस्वरूप परमात्मा का, **(मानम्)** [की जो सामर्थ्य रूपी] परिधि है, उस पर **(अस्यथ)** छोड़ देते हैं, अर्थात् परमात्मा के सामर्थ्य से विस्तारित कर देते है। **(इत्था)** इसी कारण से **(ह)** निश्चित रूप से **(कस्य)** सुखस्वरूप परमात्मा के **(क्रत्वा)** कर्मों या ज्ञान **(वर्पसा)** रूपी सामर्थ्य के साथ **(च)** भी **(कम्)** सुख प्रदान करनेवाले [स्थान में] **(याथ)** पहुँच जाते हो **(च)** और **(इति)** ऐसे ही **(समाधानानि)** समाधानों [के बारे में] **(ब्रूत)** बोलो॥१॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। सुखमभीप्सुभिर्विद्वद्भिर्जनैर्यथा सूर्यस्य रश्मयो दूरदेशाद्भूमिं प्राप्य पदार्थान् प्रकाशयन्ति तथैव सर्वसुखदातुः परमात्मनो भाग्यशालिनः परभविदुषश्च सकाशाद्वायोगुणकर्मस्वभावान्याथातथ्यतो विज्ञाय तेष्वेव रमणीयं वायवः कारणमानं कारणस्वरूपेण यान्तीति विजानी॥१॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- इस मंत्र में उपमालङ्कार है। सुख की इच्छा करनेवाले विद्वान् पुरुषों को चाहिये कि जैसे सूर्य की किरणें दूर देश से भूमि को प्राप्त होकर पदार्थों को प्रकाश करती हैं वैसे ही अभिमान को दूर से त्याग के सब सुख देनेवाले परमात्मा और भाग्यशाली परमविद्वान्* के गुण, कर्म, स्वभाव और मार्ग को ठीक-ठीक जानके उन्हीमें रमण करें ये वायु कारण से आते कारणस्वरूप से स्थित और कारण में लीन भी हो जाते हैं॥१॥

(ऋग्वेद ०१. ३९.०२)

ऋषि:- कण्वो घौरःदेवता-मरूतःछन्दः विराट्सतःपङ्क्ति स्वरः- पञ्चमः।

स्थि॒रा वः॑ स॒न्त्वायु॑धा परा॒णुदे॑ वी॒ळू उ॒त प्र॑ति॒ष्कभे॑।

यु॒ष्माक॑मस्तु॒ तवि॑षी॒ पनी॑यसी॒ मा मर्त्य॑स्य मा॒यिनः॑॥

स्वर सहित पद पाठ

स्थि॒रा। व॒ः। स॒न्तु॒। आयु॑धा। प॒रा॒ऽनुदे॑। वी॒ळु। उ॒त। प्र॒ति॒ऽस्कभे॑। यु॒ष्माक॑म्। अ॒स्तु॒। तवि॑षी। पनी॑यसी। मा। मर्त्य॑स्य। मा॒यिनः॑॥

विषय (भाषा)- अब ईश्वर इनको उपदेश और आशीर्वाद देकर सबसे कहता है, कि तुमको क्या-क्या सिद्ध करना चाहिये, इस विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिच्छेदसहितोऽन्वयः- हे धार्मिक मनुष्या वः आयुधा शत्रूणां पराणुद उत प्रतिष्कभे स्थिरा वीळू सन्तु। युष्माकं तविषी सेना पनीयसी अस्तु मायिनः मर्त्यस्य मा सन्तु॥२॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(धार्मिक)** धार्मिक **(मनुष्या)** मनुष्यों! **(वः)** तुम्हारे **(आयुधा)** आग्नेय आदि अस्त्र, तलवार, धनुष् बाण, बन्दूक [भुसुंडी] और तोप[शतघ्नी] आदि अस्त्र **(शत्रूणाम्)** शत्रुओं को **(पराणुदे)** जिस युद्ध में दूर भेज देते हैं, **(उत)** ऐसे भी **(प्रतिष्कभे)** रोकने, बांधने और मारने रूप कर्मों के लिये **(स्थिरा)** चिरस्थायी होने योग्य **(वीळू)** दृढ़ बल से युक्त **(सन्तु)** हों। **(युष्माकम्)** तुम धार्मिक वीरों की (तविषी) प्रशंसनीय बल और विद्या से युक्त सेना **(पनीयसी)** अत्यधिक स्तुति करने योग्य व व्यवहार को सिद्ध करनेवाली **(अस्तु)** होवे। **(मायिनः)** कपटी और अधर्माचरण से युक्त **(मर्त्यस्य)** मनुष्य **(मा)** [कभी] न **(सन्तु)** होवें॥२॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- धार्मिका मनुष्या एवेश्वरानुग्रहविजयौ प्राप्नुवन्ति ईश्वरोपि धर्मात्मभ्य एवाशीर्ददाति नेतरेभ्यः एतैः प्रशस्तानि शस्त्रास्त्राणि रचयित्वा तत्प्रक्षेपाभ्यासं कृत्वा प्रशस्तां सेना शिक्षित्वा दुष्टानां शत्रूणां

बधनिरोधपराजयान्कृत्वा न्यायेन नित्यं प्रजारक्ष्या नेदं मायावी प्राप्तुं कर्त्तुं शक्नोति॥२॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- धार्मिक मनुष्य ही परमात्मा के कृपा पात्र होकर सदा विजय को प्राप्त होते हैं दुष्ट नहीं। परमात्मा भी धार्मिक मनुष्यों ही को आशीर्वाद देता है पापियों को नहीं। पुण्यात्मा मनुष्यों को उचित है कि उत्तम-उत्तम शस्त्र-अस्त्र रचकर उनके फेंकने का अभ्यास करके सेना को उत्तम शिक्षा देकर शत्रुओं का निरोध वा पराजय करके न्याय से मनुष्यों की निरन्तर रक्षा करनी चाहिये॥२॥

(ऋग्वेद ०१.३९.०२)

ऋषिः - कण्वो घौरः देवता – मरूतः छन्दः - अनुष्टुप् स्वरः - गान्धारः।

परा॑ ह॒ यत्स्थि॒रं ह॒थ नरो॑ व॒र्तय॑था गु॒रु।

वि या॑थन व॒निनः॑ पृथि॒व्या व्याशाः॒ पर्व॑तानाम्॥

स्वर सहित पद पाठ

परा॑। ह॒। यत्। स्थि॒रम्। ह॒थ। नरः॑। व॒र्तय॑थ। गु॒रु। वि। या॒थ॒न। व॒निनः॑। पृ॒थि॒व्याः। वि। आशाः॑। पर्व॑तानाम्॥

विषय(भाषा)- अब इस मंत्र में विद्वान् मनुष्यों के कार्य का उपदेश किया है।

सन्धिच्छेदसहितोऽन्वयः- हे नरः नायका यूयं यथा वनिनः वायवः यत् पर्वतानां पृथिव्याः च वि आशाः सन्तः स्थिरं गुरु हत्वा नयन्ति तथा तत् स्थिरं गुरु बलं संपाद्य शत्रून् परा हथ ह किल एतान् विवर्त्तयथ विजयाय वायुवत् शत्रुसेनाः शत्रु पुराणि वा वियाथन॥३॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(नरः)** मार्ग दर्शक मनुष्यों! **(यूयम्)** तुम सब **(यथा)** जैसे **(नायका)** नायक हो। **(वनिनः)** जिनमें वन और किरणों का सम्बन्ध विद्यमान है, ऐसे वायु **(यत्)** जो **(पर्वतानाम्)** पर्वतों के और **(पृथिव्याः)** पृथिवी या अन्तरिक्ष के **(च)** भी **(वि)** विशेष द्रव्य होते हुए **(आशाः)** दिशाओं में **(स्थिरम्)** स्थिर **(गुरु)** आकर्षण शक्ति के न्याययुक्त पालन से या पृथिवी आदि द्रव्यों से **(हत्वा)** नष्ट करके **(नयन्ति)** ले जाते हैं। **(तथा)** ऐसे ही **(तत्)** उस **(स्थिरम्)** दृढ बल को **(संपाद्य)** लगाकर **(शत्रून्)** शत्रुओं को **(परा)** दूर से **(हथ)** मार दो। **(ह)** निश्चित रूप से ही **(एतान्)** इन **(वि)** विविध शत्रुओं को **(वर्तयथ)** समाप्त कर दो। **(विजयाय)** विजय के लिए **(वायुवत्)** वायु के समान **(शत्रुसेनाः)** शत्रुओं की सेना को **(वा)** और **(शत्रु)** शत्रुओं के **(पुराणि)** किलों पर **(वियाथन)** विविध प्रकार से आक्रमण कर दो॥३॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा वेगयुक्ता वायवो वृक्षादीन् भंजते पृथिव्यादिकं धरन्ति तथा धार्मिका न्यायाधीशा अधर्म्माचरणानि भङ्त्वा धर्म्येण न्यायेन प्रजा धरेयुः सेनापतयश्च महत्सैन्यं धृत्वा शत्रन् हत्वा पृथिव्यां चक्रवर्त्तिराज्यं संसेव्य सर्वासु दिक्षु सत्कीर्त्तिं प्रचारयन्तु यथा सर्वेषां प्राणाः प्रियाः सन्ति तथैते विनयशीलाभ्यां प्रजासु† स्युः ॥३॥ †[प्रियाः। सं०]

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- इस मंत्र में वाचक लुप्तोपमालङ्कार है। जैसे वेगयुक्त वायु वृक्षादि को उखाड़ तोड़-झंझोड़ देते और पृथिव्यादि को धरते हैं वैसे धार्मिक न्यायाधीश अधर्माचारों को रोक के धर्मयुक्त न्याय से प्रजा को धारण करें और सेनापति दृढ़ बल युक्त हो उत्तम सेना का धारण शत्रुओं को मार पृथिवी पर चक्रवर्त्ति राज्य का सेवन कर सब दिशाओं में अपनी उत्तम कीर्त्ति का प्रचार करें और जैसे प्राण सबसे अधिक प्रिय होते हैं वैसे राज पुरुष प्रजा को प्रिय हों ॥३॥

(ऋग्वेद ०१.३९.०३)

ऋषिः - कण्वो घौरः देवता- मरूतः छन्दः - निचृत्पङ्क्ति स्वरः- पञ्चमः।

नहि वः शत्रुर्विविदे अधि द्यवि न भूम्यां रिशादसः ।
युष्माकमस्तु तविषी तना युजा रुद्रासो नू चिदाधृषे ॥

स्वर सहित पद पाठ

नहि । वः । शत्रुः । विविदे । अधि । द्यवि । न । भूम्याम् । रिशादसः । युष्माकम् । अस्तु । तविषी । तना । युजा । रुद्रासः । नु । चित् । आऽधृषे ॥

विषय(भाषा)- फिर वे विद्वान् किस प्रकार के हों, इस विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिच्छेदसहितोऽन्वयः- हे रिशादसः रुद्रासः वीरा चित् यदि युष्माकम् आधृषे तना युजा तविषी अस्तु स्यात् तर्हि अधि द्यवि न्यायप्रकाशे वः युष्मान् शत्रुः नु नहि विविदे कदाचित् न प्राप्नुयात् न भूम्यां भूमिराज्ये कश्चित् शत्रूः उत्पद्येत ॥४॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(रिशादसः)** शत्रुओं या रोगों के नाश कारक! **(रुद्रासः)** जो अन्यायकारी मनुष्यों को रुलानेवाले **(वीरा)** वीर पुरुष हैं। **(चित्)** यदि **(युष्माकम्)** तुम मनुष्यों के **(आधृषे)** जिनमें हर ओर से प्रगल्भ व्यवहार है, उनमें **(तना)** विस्तृत और **(युजा)** जिनसे जुड़े हैं, उनकी **(तविषी)** प्रशस्त बल से युक्त सेना **(अस्तु)** होवे। **(तर्हि)** इसलिये **(अधि)** ऊपर **(द्यवि)** प्रकाश में अर्थात् **(न्यायप्रकाशे)** न्याय के प्रकाश में **(वः)** तुम्हारा **(शत्रुः)** विरोधी **(नु)** शीघ्रता से

(नहि) न **(विविदे)** जान पाये, **(कदाचित्)** कदाचित् **(न)** न **(प्राप्नुयात्)** उपलब्ध होवे और **(न)** न **(भूम्याम्)** पृथिवी में **(कश्चित्)** कोई **(शत्रूः)** शत्रु **(उत्पद्येत)** उत्पन्न होवे॥४॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- यथा पवना अजातशत्रवः सन्ति तथा मनुष्या विद्याधर्मबलपराक्रमवन्तो न्यायाधीशा भूत्वा सर्वान्प्रशास्य दुष्टाञ्च्छत्रून् निवार्याऽदृष्टशत्रवः स्युः॥४॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- जैसे पवन आकाश में शत्रु रहित विचरते हैं वैसे मनुष्य विद्या, धर्म, बल, पराक्रमवाले न्यायाधीश हो सबको शिक्षा दे और दुष्ट शत्रुओं को दण्ड देके शत्रुओं से रहित होकर धर्म में वर्त्ते॥४॥

(ऋग्वेद ०१. ३९.०४)

ऋषिः - कण्वो घौरः देवता - मरूतः छन्दः - पथ्यावृहतीस्वरः - मध्यमः।

प्र वे॑पयन्ति॒ पर्व॑ता॒न्वि वि॑ञ्चन्ति॒ व॒नस्पती॑न्।

प्रो आ॑रत मरुतो दु॒र्मदा॑इव॒ देवा॑सः॒ सर्व॑या वि॒शा॥

स्वर सहित पद पाठ

प्र। वे॒प॒य॒न्ति॒। पर्व॑तान्। वि। वि॒ञ्च॒न्ति॒। व॒नस्पती॑न्। प्रो इति॑। आ॒र॒त। म॒रु॒तः॒। दु॒र्मदाः॑ऽइव। देवा॑सः। सर्व॑या। वि॒शा॥

विषय- फिर वे कैसे कर्म्म करें, इस विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिच्छेदसहितोऽन्वयः- हे मरुतः देवासः यूयं यथा वायवः वनस्पतीन् प्र वेपयन्ति पर्वतान् विञ्चन्ति तथा दुर्मदा इव वर्त्तमानान् अरीन् युद्धेन प्रो आरत सर्वया प्रजया सह सुखेन वर्त्तध्वम्॥५॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(मरुतः)** वायु के समान बलवान्, **(देवासः)** न्यायधीश, सेनापति, सभासद और विद्वानों! **(यूयम्)** तुम सब **(यथा)** जैसे **(वायवः)** वायु **(वनस्पतीन्)** वड और पीपल आदि वनस्पतियों को **(प्र)** अच्छी तरह से **(वेपयन्ति)** हिलाते हो, [वैसे ही] **(पर्वतान्)** मेघों को **(विञ्चन्ति)** [टुकड़ों मे] पृथक-पृथक कर देते हैं। **(तथा)** वैसे ही **(दुर्मदा इव)** पागल जैसे लोग **(वर्त्तमानान्)** विद्यमान **(अरीन्)** शत्रुओं को **(युद्धेन)** युद्ध के द्वारा **(प्रो)** प्रवेश करने के लिये **(आरत)** पहुँचते हैं। [ऐसे ही] **(सर्वया)** समस्त **(प्रजया)** प्रजा के **(सह)** साथ **(सुखेन)** सुख से **(वर्त्तध्वम्)** व्यवहार करें॥५॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- अत्रोपमालङ्कारः। यथा राजधर्मनिष्ठा विद्वांसो दण्डेनोन्मत्तान्दस्यून् वशं नीत्वा धार्मिकीः प्रजाः

पालयन्ति तथा यूयमप्येताः पालयत यथा वायवो भूगोलस्याऽभितो विचरन्ति तथा भवन्तोपि विचरन्तु ॥५॥ अष्टादशो वर्गः समाप्तः ॥१८॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- इस मंत्र में उपमालङ्कार है। जैसे राजधर्म में वर्त्तनेवाले विद्वान् लोग दंड से घमंडी डाकुओं को वश में करके धर्मात्मा प्रजाओं का पालन करते हैं वैसे तुम भी अपनी प्रजा का पालन करो और जैसे पवन भूगोल के चारों ओर विचरते हैं वैसे आप लोग सर्वत्र जाओ-आओ। यह अठारवां वर्ग समाप्त हुआ ॥५॥

(ऋग्वेद ०१.३९.०५)

ऋषि: कण्वो घौरःदेवता - मरूतःछन्दः - विराट्सतःपङ्क्तिस्वरः- पञ्चमः।

उपो रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं प्रष्टिर्वहति रोहितः।
आ वो यामाय पृथिवी चिदश्रोदबीभयन्त मानुषाः ॥

स्वर सहित पद पाठ

उपो इति। रथेषु। पृषतीः। अयुग्ध्वम्। प्रष्टिः। वहति। रोहितः। आ। वः। यामाय। पृथिवी। चित्। अश्रोत्। अबीभयन्त। मानुषाः ॥

विषय(भाषा)- फिर मनुष्यों को किसके साथ इनको युक्त करके कार्यों को सिद्ध करने चाहिये, इस विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिच्छेदसहितोऽन्वयः- हे मानुषा ! यूयं वः युष्माकं यामाय प्रष्टी रोहितः अग्निः पृथिवी भूमौ अन्तरिक्षे गमनाय यान् वहति यस्य शब्दान् अश्रोत् अबीभयन्त तेषु उपो रथेषु तं पृषतीः च अयुग्ध्वम् ॥६॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(मानुषाः)** विद्वान् लोगों ! **(यूयम्)** तुम सब **(वः)** अपने **(यामाय)** जाने के लिये **(प्रष्टिः)** जिनके द्वारा जानने की इच्छा से प्रश्न किये जाते हैं, **(रोहितः)** [ऐसे] लाल रंग के वेग, अग्नि आदि वाले गुणों के समूह वाली विशेष **(अग्निः)** अग्नि को **(पृथिवी)** पृथिवी, **(भूमौ)** भूमि और (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में **(गमनाय)** जाने के लिए, **(यान्)** जिनको, **(वहति)** प्राप्त करती है। **(यस्य)** जिसके **(शब्दान्)** शब्दों को **(अश्रोत्)** सुनते हैं और **(अबीभयन्त)** भय को प्राप्त होते हैं। **(तेषु)** उनकी **(उपो)** समीपता से **(रथेषु)** स्थल, जल और अन्तरिक्ष के **(तम्)** उन [जलों से] **(पृषतीः)** जिनसे सींचते हैं, ऐसी वेग आदि अश्वों के गुणोंवाली वायु को **(च)** भी **(अयुग्ध्वम्)** अच्छी तरह से प्रयोग करो ॥६॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- यदि मनुष्या यानेषु जलाग्निवायुप्रयोगान् कृत्वा तत्र स्थित्वा गमनागमने कुर्युस्तर्हि सुखेनैव सर्वत्र गन्तुमागन्तुं च शक्नुयुः ॥६॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- जो मनुष्य यानों में जल अग्नि और वायु को युक्त कर उनमें बैठ गमनागमन करें तो सुख ही से सर्वत्र जाने-आने को समर्थ हों ॥६॥

(ऋग्वेद ०१.३९.०६)

ऋषिः- कण्वो घौरः देवता- मरूतः छन्दः-उपरिष्टाद्विराड् बृहतीस्वरः- मध्यमः।

आ वो॑ म॒क्षू तना॑य॒ कं रुद्रा॒ अवो॑ वृणीमहे।
गन्ता॑ नू॒नं नोऽव॑सा॒ यथा॑ पु॒रेत्था कण्वा॑य बि॒भ्युषे॑॥

स्वर सहित पद पाठ

आ। व॒ः। म॒क्षु। तना॑य। कम्। रुद्राः॑। अवः॑। वृ॒णी॒म॒हे॒। गन्त॑। नू॒नम्। न॒ः। अव॑स् यथा॑। पु॒रा। इ॒त्था। कण्वा॑य। बि॒भ्युषे॑॥

विषय(भाषा)- फिर वे कैसे हों, इस विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिच्छेदसहितोऽन्वयः- हे रुद्रा यथा वयं वः अवसा मक्षु नूनं कं वृणीमह इत्था यूयं नःअवः गन्त यथा च ईश्वरः विभ्युषे तनाय कण्वाय रक्षां विधत्ते तथा यूयं वयं च मिलित्वा अखिलप्रजायाः पालनं सततं विदध्याम ॥७॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(रुद्राः)** दुष्टों के रोदन करानेवाले चवालीस वर्ष पर्यन्त अखण्डित ब्रह्मचर्य सेवन से सकल विद्याओं को प्राप्त विद्वान लोगो ! **(यथा)** जैसे हम लोग **(वः)** आप लोगों के लिये **(अवसा)** रक्षादि से **(मक्षु)** शीघ्र **(नूनम्)** निश्चित **(कम्)** सुख को **(वृणीमहे)** स्वीकार करते हैं **(इत्था)** ऐसे तुम भी **(नः)** हमारे लिये **(अवः)** सुख वर्द्धक रक्षादि कर्म **(गन्त)** किया करो और जैसे ईश्वर **(बिभ्युपे)** दुष्टप्राणी वा दुःखों से भयभीत **(तनाय)** सबको सद्विद्या और धर्म के उपदेश देता है, ऐसे ही सुखकारक **(कण्वाय)** बुद्धिमान व्यक्तियों में, **(रक्षाम्)** रक्षा के लिए **(विधत्ते)** विशेष रूप से विधान कीजिये। **(तथा)** वैसे ही **(यूयम्)** तुम सब **(च)** और **(वयम्)** हम **(मिलित्वा)** मिलकर **(अखिलप्रजायाः)** समस्त प्रजा का **(पालनम्)** पालन **(सततम्)** निरन्तर **(विदध्याम)**[करने का] विधान करें ॥७॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- अत्रोपमालङ्कारः। यथा मेधाविनो वाय्वादिद्रव्यगुणसंप्रयोगेण भयं निवार्य सद्यः सुखिनो भवन्ति तथाऽस्माभिरप्यनुष्ठेयमिति ॥७॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- इस मंत्र में उपमालङ्कार है। जैसे मेधावी विद्वान् लोग वायु आदि के द्रव्य और गुणों के योग से भय को निवारण करके तुरन्त सुखी होते हैं। वैसे हम लोगों को भी होना चाहिये ॥७॥

(ऋग्वेद ०१. ३९.०७)

ऋषिः - कण्वो घौरः देवता - मरूतः छन्दः - विराट्सतः पङ्क्तिस्वरः - पञ्चमः।

युष्मेषितो मरुतो मर्त्येषित आ यो नो अभ्व ईषते।

वि तं युयोत शवसा व्योजसा वि युष्माकाभिरूतिभिः ॥

स्वर सहित पद पाठ

युष्माऽइंषितः । मरुतः । मर्त्यऽइषितः । आ । यः । नः । अभ्वः । ईषते । वि । तम् । युयोत । शवसा । वि । ओजसा । वि । युष्माकाभिः । ऊतिऽभिः ॥

विषय(भाषा)- फिर तुमको उनसे क्या सिद्ध करना चाहिये, इस विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिच्छेदसहितोऽन्वयः- हे मरुतः ! यूयं यःअभ्वः युष्मेषितः मर्त्येषितः शत्रुः नःअस्मान् ईषते तं शवसा वि ओजसा युष्माकाभिः ऊतिभिः वियुयोत ॥८॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(मरुतः)** ऋत्विज ! **(यूयम्)** तुम सब **(यः)** जो (अभ्वः) विरोधी मित्र नहीं होता है, वह **(युष्मेषितः)** जो तुम लोगों को जीतने की कामना करता है, **(मर्त्येषितः)** और मनुष्यों की सेना को मारकर विजयी होने की इच्छा करनेवाला है। **(शत्रुः) [जो]** शत्रु **(नः)** हमें **(ईषते)** मारता है, **(तम्)** उस शत्रु को **(शवसा)** बलयुक्त सेना के द्वारा **(वि)** मारता है। **(ओजसा)** बल से **(युष्माकाभिः)** तुम्हारे द्वारा दया दिखाई गई सेना के द्वारा **(ऊतिभिः)** और रक्षा, प्रीति, तृप्ति और ज्ञान में प्रवेश करनेवालों के द्वारा **(वि)** विविध प्रकार से **(युयोत)** पृथक्-पृथक् करो॥८॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- मनुष्यैर्ये स्वार्थिनः परोपकारविरहाः परपीडारता अरयः सन्ति तान् विद्याशिक्षाभ्यां दुष्कर्मभ्यो निवर्त्याऽथवा परमे सेनाबले संपाद्य युद्धेन विजित्य निवार्य सर्वहितं सुखं विस्तारणीयम् ॥८॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- मनुष्यों को उचित है कि जो स्वार्थी परोपकार से रहित दूसरे को पीड़ा देने में अत्यन्त प्रसन्न शत्रु हैं उनको विद्या वा शिक्षा के द्वारा खोटे कर्मों से निवृत्त कर वा उत्तम सेना बल को संपादन युद्ध से जीत निवारण करके सबके हित का विस्तार करना चाहिये ॥८॥

(ऋग्वेद ०१.३९.०८)

ऋषि: - कण्वो घौरः देवता - मरूतः छन्दः - पथ्यावृहतीस्वरः - मध्यमः।

असा॑मि हि प्र॑यज्यवः कण्वं॑ दद प्र॑चेतसः।

असा॑मिभिर्मरुत आ न॑ ऊतिभिर्गन्ता॑ वृष्टिं न वि॒द्युतः॑॥

स्वर सहित पद पाठ

असा॑मि। हि। प्र॒ऽय॒ज्य॒वः॒। कण्व॑म्। द॒द। प्र॒ऽचे॒त॒सः॒। असा॑मिऽभिः। म॒रु॒तः॒। आ। नः॒। ऊ॒तिऽभिः॑। गन्त॑। वृ॒ष्टिम्। न। वि॒ऽद्युतः॑॥

विषय(भाषा)- फिर उनसे शोधित या प्रेरित किये हुए वे क्या-क्या करें, इस विषय का उपदेश इस मन्त्र में किया है।

सन्धिच्छेदसहितोऽन्वयः- हे प्रयज्यवः प्रचेतसः मरुतः यूयं असामिभि ऊतिभिः न विद्युतः वृष्टिं नःअसामि सुखं दद हि किल शत्रुविजयाय कण्वम् आगन्त॥९॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(प्रयज्यवः)** जिन राजपुरुषों के प्रकृष्ट यज्ञ और परोपकार हैं **(प्रचेतसः)** और जिनके प्रकृष्ट ज्ञान हैं, ऐसे **(मरुतः)** पूर्ण बलशाली ऋत्विज! **(यूयम्)** तुम सब **(असामिभिः)** क्षय रहित रीतियों से **(ऊतिभिः)** रक्षाओं के **(न)** समान **(विद्युतः)** बिजली और **(वृष्टिम्)** वर्षा, **(नः)** हमारे लिये **(असामि)** संपूर्ण **(सुखम्)** सुख के लिये **(दद)** दीजिये। **(हि)** निश्चित रूप से **(शत्रुविजयाय)** शत्रु पर विजय के लिये **(कण्वम्)** मेधावी विद्यार्थी **(आ)** हर ओर से **(गन्त)** जायें॥९॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- अत्रोपमालङ्कारः। यथा मरुतः सूर्यविद्युतश्च वृष्टिं कृत्वा सर्वेषां प्राणिनां सुखाय विविधानि फलपत्रपुष्पादीन्युत्पादयन्ति। तथैव विद्वांसः सर्वेभ्यो मनुष्येभ्यो वेदविद्यां दत्त्वा सुखानि संपादयंत्विति॥९॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- इस मंत्र में उपमालङ्कार है। जैसे पवन सूर्य बिजुली आदि वर्षा करके सब प्राणियों के सुख के लिये अनेक प्रकार के फल, पत्र, पुष्प, अन्न आदि को उत्पन्न करते हैं वैसे विद्वान् लोग भी सब प्राणीमात्र को वेद विद्या देकर उत्तम-उत्तम सुखों को निरन्तर संपादन करें॥९॥

(ऋग्वेद ०१.३९.०९)

ऋषि: - कण्वो घौरः देवता - मरूतः छन्दः - विराट्सतःपङ्क्तिस्वरः- पञ्चमः।

असा॒म्योजो॑ बिभृथा सुदा॒नवोऽसा॑मि धूतयः॒ शवः॑।

ऋ॒षि॒द्विषे॑ मरुतः परिम॒न्यव॒ इषुं॒ न सृ॑जत॒ द्विष॑म्॥

स्वर सहित पद पाठ

असामि । ओजः । बिभृथ । सुऽदानवः । असामि । धूतयः । शवः । ऋषिऽद्विषे । मरुतः । परिऽमन्यवे । इषुम् । न । सृजत । द्विषम् ॥

विषय(भाषा)- फिर वे क्या करें, इस विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिच्छेदसहितोऽन्वयः- हे धूतयः सुदानवः मरुत ऋत्विजः यूयं परिमन्यवः द्विषं शत्रुं प्रति इषुं शस्त्रसमूहं प्रक्षिपन्ति न ऋषिद्विषे असामि ओजः असामि शवः बिभृथ ब्रह्म द्विषं शत्रुं प्रति शस्त्राणि सृजत प्रक्षिपत ॥१०॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(धूतयः)** जो [दुष्टों को] कंपानेवाले है [और] **(सुदानवः)** जिनके शोभनीय दान हैं, **(मरुतः)** ऐसे ऋत्विज **(यूयम्)** तुम सब **(परिमन्यवः)** जिनका क्रोध हर ओर है, ऐसे वीर **(द्विषम्)** शत्रुओं की **(प्रति)** ओर **(इषुम्)** वाण आदि **(शस्त्रसमूहम्)** शस्त्रों के समूह पर **(प्रक्षिपन्ति)** तेजी से फेंकते हैं। **(न)** जैसे **(ऋषिद्विषे)** वेदों के ज्ञाता, ईश्वर के विरोधी दुष्ट मनुष्यों के लिये **(असामि)** समस्त **(ओजः)** विद्या, पराक्रम और **(असामि)** पूर्ण **(शवः)** बल **(बिभृथ)** धारण करते हैं और पनपते हैं। **(ब्रह्म)** ईश्वर के **(द्विषम्)** प्रत्येक शत्रु की **(प्रति)** ओर **(शस्त्राणि)** शस्त्रों को **(सृजत)** फेंको॥१०॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- अत्रोपमालङ्कारः। यथा धार्मिका जातक्रोधाः शूरवीराः शस्त्रप्रहारैः शत्रून् विजित्य निष्कंटकराज्यं प्राप्य प्रजाः सुखयन्ति। तथैव सर्वे मनुष्या वेदविद्याविद्वदीश्वरद्वेष्टॄन् प्रत्यखिलाभ्यां बलपराक्रमाभ्यां शस्त्राऽस्त्राणि प्रक्षिप्यैतान्विजित्य वेदविद्येश्वरप्रकाशयुक्तं राज्यं निष्पादयन्तु ॥१०॥

सूक्तस्य भावार्थः- अत्र वायुविद्वद्गुणवर्णनात्पूर्वसूक्तार्थेन सहास्य संगतिरस्तीति बोध्यम्। इत्येकोनचत्वारिंशं सूक्तमेकोनविंशो वर्गश्च समाप्तः ॥१०॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- इस मंत्र में उपमालङ्कार है। जैसे धार्मिक शूरवीर मनुष्य क्रोध को उत्पन्न शस्त्रों के प्रहारों से शत्रुओं को जीत निष्कंटक राज्य को प्राप्त होकर प्रजा को सुखी करते हैं वैसे ही सब मनुष्य वेद विद्वान् वा ईश्वर के विरोधियों के प्रति सम्पूर्ण बल पराक्रमों से शस्त्र अस्त्रों को छोड़ उन को जीतकर ईश्वर वेद विद्या और विद्वान् युक्त राज्य को संपादन करें ॥१०॥

सूक्त के भावार्थ का भाषानुवाद- इस सूक्त में वायु और विद्वानों के गुण वर्णन करने से पूर्व सूक्तार्थ के साथ इस सूक्त के अर्थ की संगति जाननी चाहिये। ॥३९॥

अनुवादक की टिप्पणी- ऋत्विज्-स्तुतियों को गति प्रदान करनेवाले और समय पर उपस्थित होकर देवताओं के लिये या ऋतु-ऋतु में यज्ञ करनेवाले को ऋत्विज् कहते हैं।

(ऋग्वेद ०१.३९.१०)

अथ प्रथमं मण्डलम्

[४०] चत्वारिशं सूक्तम्

ऋषिः - कण्वो घौरःदेवता - बृहस्पतिःछन्दः - निचृदुपरिष्टाद् बृहतीस्वरः - मध्यमः।

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे।

उप प्र यन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा॥

स्वर सहित पद पाठ

उत्। तिष्ठ। ब्रह्मणः। पते। देवऽयन्तः। त्वा। ईमहे। उप। प्र। यन्तु। मरुतः। सुऽदानवः। इन्द्र। प्रासूः। भव। सचा॥

विषय(भाषा)- फिर मनुष्यों को उचित है, कि वेदविद जनों को कैसे उपदेश करें, इस विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है। फिर मनुष्य वेद के विद्वान् से उपदेश करने के लिए कैसे प्रार्थना करें।

सन्धिच्छेदसहितोऽन्वयः- हे ब्रह्मणः पते इन्द्र ! यथा सचा सह देवयन्तः सुदानवः मरुतः वयं त्वा ईमहे यथा च सर्वे जनाः उप प्र यन्तु तथा त्वं प्राशूः सर्व सुखप्रापकः भव सर्वस्य हिताय उत्तिष्ठ॥१॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(ब्रह्मणः)** वेद के **(पते)** स्वामी [और] **(इन्द्र)** विद्या आदि परम ऐश्वर्यों को प्रदान करनेवाले परमेश्वर ! **(यथा)** जैसे **(सचा)** इकट्ठा किये हुए विशेष ज्ञान के **(सह)** साथ **(देवयन्तः)** सत्यविद्या की कामना करनेवाले **(सुदानवः)** वे जिनके शोभनीय दान हैं [और] **(मरुतः)** यज्ञ करनेवाले पुरोहित के अनुरूप विद्वान् **(वयम्)** हम लोग **(त्वा)** तुमको **(ईमहे)** जानें। **(च)** और **(यथा)** जैसे **(सर्वे)** समस्त **(जनाः)** लोग **(उप)** समीपता से **(प्र)** दृढ निश्चय रूप से **(यन्तु)** प्राप्त होवें। **(तथा)** वैसे ही **(त्वम्)** तुम **(प्राशूः)** जो अच्छी तरह से प्राप्त करता है और व्याप्त होता है, ऐसे **(सर्व)** सब **(सुखप्रापकः)** सुख प्राप्त करनेवाले, **(भव)** होओ। **(सर्वस्य)** सबके **(हिताय)** हित के लिये **(उत्)** उत्कृष्ट **(उत्तिष्ठ)** प्रयास करो॥१॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सब मनुष्य अति पुरुषार्थ से विद्वानों का संग उनकी सेवा विद्या योग धर्म और सबके उपकार करना आदि उपायों से समग्र विद्याओं के अध्येता परमात्मा के विज्ञान और प्राप्ति से सब मनुष्यों को प्राप्त हों और इसीसे अन्य सबको सुखी करें॥१॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- मनुष्या यत्नतो विद्वत्सङ्गसेवाविद्यायोगधर्मसर्वोपकाराद्युपायैः सर्वविद्याधीशस्य परमेश्वरस्य विज्ञानेन प्राप्तानि सर्वाणि सुखानि प्राप्तव्यानि प्रापयितव्यानि च॥१॥

(ऋग्वेद ०१.४०.०१)

ऋषि: - कण्वो घौरःदेवता - बृहस्पतिःछन्दः - निचृदुपरिष्टाद् बृहतीस्वरः - मध्यमः।

त्वामिद्धि सहसस्पुत्र मर्त्यं उपब्रूते धने हिते।

सुवीर्यं मरुत आ स्वश्व्यं दधीत यो व आचके॥

स्वर सहित पद पाठ

त्वाम्। इत्। हि। सहसः। पुत्र। मर्त्यः। उपऽब्रूते। धने। हिते। सुऽवीर्यम्। मरुतः। आ। सुऽअश्व्यम्। दधीत। यः। वः। आऽचक्रे॥

विषय(भाषा)- फिर ये लोग आपस में कैसे वर्त्ते, इस विषय का उपदेश इस मन्त्र में किया है।

सन्धिच्छेदसहितोऽन्वयः- हे (सहसः) शरीर आत्मबलयुक्तस्य विदुषः पुत्र! यः मर्त्यः विद्वान् त्वाम् उपब्रूते हे मरुतः! यूयं यः वः हिते धन आचके तस्मात् एव स्वश्व्यं सु वीर्यं यूयं दधत॥२॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(सहसः)** शरीर और आत्मबलयुक्त **(विदुषः)** विद्वान् के **(पुत्रः)** पुत्र! **(यः)** जो(विद्वान्) विद्वान् **(मर्त्यः)** मनुष्य **(त्वाम्)** तुम को **(उपब्रूते)** समस्त विद्याओं का उपदेश देता है। हे **(मरुतः)** बुद्धिमान लोगों! **(यूयम्)** तुम सब **(यः)** जो **(वः)** तुम्हारे **(हिते)** सुखों के सम्पादन करने के **(धन)** धन **(आचके)** सब ओर से सुखों से तृप्त करते हैं, **(तस्मात्)** इसलिये **(एव)** ही **(स्वश्व्यम्)** शोभन अश्वों में और विद्या व्याप्त विषयों में **(सुवीर्यम्)** उत्तम वीर्य पराक्रम हैं, जिनमें [ऐसे तुम] **(दधत)** धारण करो॥२॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- मनुष्या अध्ययनाऽध्यापनादिव्यवहारेणैव परस्परमुपकृत्य सुखिनः सन्तु॥२॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- मनुष्य लोग पढ़ने-पढ़ाने आदि धर्मयुक्त कर्मों ही से एक दूसरे का उपकार करके सुखी हों॥२॥

(ऋग्वेद ०१.४०.०२)

ऋषि: - कण्वो घौरःदेवता - बृहस्पतिःछन्दः - आर्चीत्रिष्टुप्स्वरः - धैवतः।

प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता।

अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः॥

स्वर सहित पद पाठ

प्र । एतु । ब्रह्मणः । पतिः । प्र । देवी । एतु । सूनृता । अच्छ । वीरम् । नर्यम् । पङ्क्तिऽराधसम् । देवाः । यज्ञम् । नयन्तु । नः ॥

विषयः- पुनस्तैः कथं मिथः वर्त्तितव्यमित्याह।

विषय(भाषा)- फिर ये लोग अन्योऽन्य कैसे वर्तें, इस विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिच्छेदसहितोऽन्वयः- हे विद्वन् ! ब्रह्मणः पतिःभवान् यं पंक्तिराधसम् नर्यम् अच्छा वीरं सुखप्रापकं यज्ञं प्र एतु हे विदुषि ! सूनृता देवी सती भवति एति अपि एतं प्र एतु तं नः देवाः प्र नयन्तु ॥३॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(विद्वन्)** विद्वान्, **(ब्रह्मणः)** चारों वेदों के ज्ञाता [और] **(पतिः)** पालन करनेवाले ! **(भवान्)** आप **(यम्)** जिस **(पंक्तिराधसम्)** धर्मात्मा और वीर पुरुषों के समूह को पंक्तिबद्ध करते हो, अथवा पंक्ति के लिये जिसमें अन्न की कृपा है, **(नर्यम्)** [ऐसे] मनुष्यों में उत्तम हितकारी, **(अच्छा)** शुद्ध, **(वीरम्)** पूर्ण शरीर और आत्मबल प्रदान कर्ता, **(सुखप्रापकम्)** सुख प्राप्त करानेवाले, **(यज्ञम्)** पठन-पाठन, श्रवण और उपदेशों को **(प्र)** प्रकृष्ट रूप से, **(एतु)** प्राप्त करो। हे **(विदुषि)** विदुषि ! **(सूनृता)** प्रिय सत्य आचरण के लक्षणों और वाणी से युक्त, **(देवी)** समस्त शास्त्रों के ज्ञान से प्रकाशित **(सती)** तपस्विनी **(भवति)** होती है। **(एति)** आगमन में **(अपि)** भी **(एतम्)** इसको **(प्र)** प्रयास से **(एतु)** प्राप्त करो। **(तम्)** उसको **(नः)** हमारे **(देवाः)** विद्वान् **(प्र)** स्पष्ट रूप से **(नयंतु)** प्राप्त करते हैं॥३॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- सर्वैर्मनुष्यैरिदं कर्त्तव्यमाकांक्षितव्यं च यतो विद्यावृद्धिः स्यादिति ॥३॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- सब मनुष्यों को ऐसी इच्छा करनी चाहिये कि जिससे विद्या की वृद्धि होती जाय ॥३॥

(ऋग्वेद ०१.४०.०३)

ऋषिः - कण्वो घौरःदेवता - बृहस्पतिःछन्दः - सतःपङ्क्तिस्वरः – पञ्चमः।

यो वाघते ददाति सूनरं वसु स धत्ते अक्षिति श्रवः ।
तस्मा इळां सुवीरा मा यजामहे सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥

स्वर सहित पद पाठ

यः । वाघते । ददाति । सूनरम् । वसु । सः । धत्ते । अक्षिति । श्रवः । तस्मै । इळाम् । सुऽवीराम् । आ । यजामहे । सुऽप्रतूर्तिम् ।

अ॒ने॒हस॑म्॥

विषय(भाषा)- विद्वान् और अन्य मनुष्यों को एक दूसरे के साथ क्या करना चाहिये, इस विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिच्छेदसहितोऽन्वयः- यः मनुष्यः वाघते सूनरं वसु ददाति याम् अनेहसं सुप्रतूर्त्तिं सुवीराम् इडां वयम् आ यजामहे तेन तया च सः अक्षिति श्रवः धत्ते॥४॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- **(यः)** जो मनुष्य **(वाघते)** ऋत्विजों में **(सूनरम्)** उत्तम है, वह **(वसु)** धन को **(ददाति)** देता है। **(याम्)** जिसमें **(अनेहसम्)** हिंसा और रक्षा के योग्य **(सुप्रतूर्त्तिम्)** सुन्दर प्रकृष्ट और शीघ्र होनेवाली प्राप्तियां हैं, **(सुवीराम्)** जिसमें उत्तम वीर हैं, उस **(इडाम्)** पृथिवी या वाणी को **(वयम्)** हम **(आ)** हर ओर से **(यजामहे)** प्राप्त करें **(च)** और **(तेन)** उसके द्वारा **(सः)** मनुष्य **(अक्षिति)** जिसका अविनाशी स्वभाव है [और] **(श्रवः)** जिससे सब विद्यायें सुनते हैं, वह **(धत्ते)** [समस्त चर और अचर जगत् को] धारण करता है॥४॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- यो मनुष्यः शरीरवाङ्मनोभिर्विदुषः सेवते स एवाक्षयां विद्यां प्राप्य पृथिवीराज्यं भुक्त्वा मुक्तिमाप्नोति। ये वाग्विद्यां प्राप्नुवंति ते विद्वांसोऽन्यान् विदुषः कर्त्तुं शक्नुवंति नेतरे॥४॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- जो मनुष्य शरीर, वाणी, मन और धन से विद्वानों का सेवन करता है वही अक्षय विद्या को प्राप्त हो और पृथिवी के राज्य को भोग कर मुक्ति को प्राप्त होता है। जो पुरुष वाणी विद्या को प्राप्त होते हैं, वे विद्वान् दूसरे को भी पण्डित कर सकते हैं आलसी अविद्वान् पुरुष नहीं॥४॥

(ऋग्वेद ०१. ४०.०४)

ऋषिः - कण्वो घौरः देवता बृहस्पतिः छन्दः पथ्यावृहती स्वरः - मध्यमः।

प्र नू॒नं ब्रह्म॒ण॒स्पति॒र्मन्त्रं॑ वदत्यु॒क्थ्य॑म्।

यस्मि॒न्निन्द्रो॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॑र्य॒मा दे॒वा ओका॑ंसि चक्रिरे॥

स्वर सहित पद पाठ

प्र। नू॒नम्। ब्रह्म॑णः। पतिः॑। मन्त्र॑म्। व॒द॒ति॒। उ॒क्थ्य॑म्। यस्मि॑न्। इन्द्रः॑। वरु॑णः। मि॒त्रः। अ॒र्य॒मा। दे॒वाः। ओका॑ंसि। च॒क्रि॒रे॥

विषय(भाषा)- अब ईश्वर कैसा है, उसका उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिच्छेदसहितोऽन्वयः- यः ब्रह्मणः पतिः ईश्वरः नूनम् उक्थ्यं मन्त्रं प्रवदति यस्मिन् इन्द्रः वरुणः मित्रः अर्य्यमा देवाः च ओकांसि चक्रिरे तम् एव वयं यजामहे ॥५॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- **(यः)** जो **(ब्रह्मणः)** महान् जगत् या वेद का **(पतिः)** स्वामी और न्यायाधीश **(ईश्वरः)** ईश्वर है।[वह] **(नूनम्)** निश्चय से ही **(उक्थ्यम्)** स्तुति के साथ **(मन्त्रम्)** वेदमन्त्रों के समूह का **(वदति)** उपदेश करता है। **(यस्मिन्)** ईश्वर में **(इन्द्रः)** विद्युत् **(वरुणः)** चन्द्रमा, समुद्र, तारों आदि का समूह विद्यमान हैं। **(मित्रः)** प्राण, **(अर्य्यमा)** वायु **(च)** और **(देवाः)** पृथिवी आदि लोक या विद्वांन् और **(ओकांसि)** गृह **(चक्रिरे)** बनाये गये हैं। [वे उसी में विद्यमान हैं।] **(तम्)** उस [परमेश्वर का] **(एव)** ही **(वयम्)** हम **(यजामहे)** सत्कार करें ॥५॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- हे मनुष्या येनेश्वरेण वेदा उपदिष्टा यः सर्वजगदभिव्याप्य स्थितोस्ति यस्मिन् सर्वे पृथिव्यादयो लोकास्तिष्ठन्ति मुक्तिसमये विद्वांसश्च निवसन्ति स एव सर्वैर्मनुष्यैरुपास्योस्ति न चास्माद्भिन्नोऽन्यः ॥५॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- मनुष्यों को उचित है कि जिस ईश्वर ने वेदों का उपदेश किया है, जो सब जगत् में व्याप्त होकर स्थित है जिसमें सब पृथिवी आदि लोक रहते और मुक्ति समय में विद्वान् लोग निवास करते हैं उसी परमेश्वर की उपासना करनी चाहिये इससे भिन्न किसी की नहीं ॥५॥

(ऋग्वेद ०१. ४०.०५)

ऋषिः - कण्वो घौरःदेवता - बृहस्पतिःछन्दः - सतःपङ्क्तिस्वरः - पञ्चमः।

तमिद्वो॑चेमा वि॒दथे॑षु शं॒भुवं॒ मन्त्रं॑ देवा अ॒ने॒हस॑म्।

इ॒मां च॒ वाचं॑ प्रति॒हर्य॑था नरो॒ विश्वेद्वा॒मा वो॑ अश्नवत्॥

स्वर सहित पद पाठ

तम्। इत्। वो॒चे॒म। वि॒दथे॑षु। श॒म्भुव॑म्। मन्त्र॑म्। दे॒वाः॒। अ॒ने॒हस॑म्। इ॒माम्। च॒। वाच॑म्। प्र॒ति॒ऽहर्य॑थ। न॒रः॒। विश्वा॑। इत्। वा॒मा। वः॒। अ॒श्न॒व॒त्॥

विषय(भाषा)- अब इस मंत्र में सब मनुष्यों के लिये वेदों के पढ़ने का अधिकार है, इस विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिच्छेदसहितोऽन्वयः- हे देवा विद्वांसः वः युष्मभ्यं वयं विदथेषु यम् अनेहसं शंभुवं मंत्रं वोचेम तम् इत् यूयम् विजानीत। हे नरः यूयम् इत् यदि इमां वाचं प्रतिहर्यथ तर्हि विश्वा सर्वा वामा प्रशस्ता इयं वाक् वः युष्मान् अश्नवत्

व्याप्नुयात्॥६॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- हे **(देवा)** विद्वानों! **(वः)** तुम्हारे लिये **(वयम्)** हम **(विदथेषु)** विशेष ज्ञान के पठन-पाठन के व्यवहारों में लगे रहें। **(यम्)** जो **(अनेहसम्)** अहिंसनीय और सर्वदा रक्षा किये जाने योग्य दोषरहित मन्त्र हैं, **(शंभुवम्)** **[और]** जिनमें कल्याण है, उनसे **(मन्त्रम्)** जिनमें गुप्त विचारों को परिभाषित किया जाता है, उन मन्त्रों के मनन के बाद **(वोचेम)** उपदेश करें। **(तम्)** उस वेद को **(इत्)** ही **(यूयम्)** तुम सब **(विजानीत)** अच्छी तरह से जानो। हे **(नरः)** विद्या के मार्ग के प्रदर्शक लोगों! **(यूयम्)** तुम सब **(इत्)** यदि **(इमाम्)** इस वेद की चतुष्टयी, अर्थात् चारों वेदों-ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद की **(वाचम्)** वाणी को **(प्रतिहर्यथ)** बारम्बार अच्छी तरह से जानते हो **(तर्हि)** तो **(इयम्)** यह **(विश्वा)** समस्त **(वामा)** प्रशंसनीय वाणी **(वः)** तुम्हें **(अश्नवत्)** प्राप्त हो जाती है [और फिर] **(व्याप्नुयात्)** [अन्यों में भी] व्याप्त हो जाती है॥६॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- विद्वद्भिर्विद्याप्रचाराय सर्वेभ्यो मनुष्येभ्यो नित्यं सार्थाः सांगाः सरहस्याः सस्वरहस्तक्रिया वेदा उपदेष्टव्याः। यदि कश्चित्सुखमिच्छेत्संगेन वेदविद्यां प्राप्नुयात्। नैतया विना कस्यचित्सत्यं सुखं भवति। तस्मादध्यापकैरध्येतृभिश्च प्रयत्नेन सकला वेदा ग्राहयितव्या ग्रहीतव्याश्चेति॥६॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- विद्वानों को योग्य है कि विद्या के प्रचार के लिये मनुष्यों को निरन्तर अर्थ अंग उपांग रहस्य स्वर और हस्तक्रिया सहित वेदों को उपदेश करें और ये लोग अर्थात् मनुष्यमात्र इन विद्वानों से सब वेद विद्या को साक्षात् करें जो कोई पुरुष सुख चाहें तो वह विद्वानों के संग से विद्या को प्राप्त करें तथा इस विद्या के विना किसी को सत्य सुख नहीं होता इससे पढ़ने-पढ़ाने वालों को प्रयत्न से सकल विद्याओं को ग्रहण करना वा कराना चाहिये॥६॥

अनुवादक की टिप्पणियाँ- इस मन्त्र में भावार्थ में महर्षि ने अङ्ग-उपाङ्ग, रहस्य, स्वर और हस्तक्रिया का उल्लेख किया है। इनकी व्याख्या निम्न प्रकार से की जा सकती है-

1- अङ्ग- इनके नाम तथा क्रम हैं- (१) शिक्षा, (२) कल्प, (३) व्याकरण, (४) निरुक्त (५) छन्द (६) ज्योतिष। इनमें प्रत्येक का अपना निजी वैशिष्ठय है।

2- उपाङ्- वेद के ६ उपांग न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्वमीमांसा तथा उत्तरमीमांसा हैं।

3- रहस्य- उपनिषदों में निहित अध्यात्म को रहस्य माना गया है।

4- स्वर- स्वर तीन प्रकार के हैं। उदात्त, अनुदात्त और स्वरित।

5- हस्तक्रिया- वेदपाठ में उदात्त, अनुदात्त और स्वरित आदि स्वरों का हस्तक्रिया द्वारा संकेत किया जाता है।

(ऋग्वेद ०१. ४०.०६)

ऋषि: - कण्वो घौरःदेवता - बृहस्पतिःछन्दः - आर्चीत्रिष्टुप्स्वरः - धैवतः।

को दे॑वयन्त॑मश्नवज्जनं को वृक्तब॑र्हिषम्।

प्रप्र॑ दाश्वान्पस्त्या॑भिरस्थितान्तर्वावत्क्षयं॑ दधे॥

स्वर सहित पद पाठ

कः। देवऽयन्त॑म्। अश्नवत्। जन॑म्। कः। वृक्तऽब॑र्हिषम्। प्रऽप्र॑। दाश्वान्। पस्त्या॑भिः। अस्थित। अन्तःऽवाव॑त्। क्षय॑म्। दधे॥

विषय(भाषा)- कोई ही मनुष्य विद्वान् मनुष्य को प्राप्त होकर विद्या को ग्रहण कर सकता है, इस विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिच्छेदसहितोऽन्वयः- कः मनुष्यः देवयन्तं कः च वृक्तबर्हिषं जनम् अश्नवत् प्राप्नुयात् कः दाश्वान् प्रास्थित प्रतिष्ठिते कः विद्वान् पस्त्याभिः अन्तर्वावत् क्षयं गृहं दधे धरेत्॥७॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- **(कः)** कोई ही **(मनुष्यः)** मनुष्य **(देवयन्तं)** देवों की कामना करनेवाला है **(च)** और **(कः)** कोई ही **(वृक्तबर्हिषम्)** समस्त विद्याओं में कुशल ऋत्विज है [और] **(जनम्)** समस्त विद्यायें जिसमें प्रकाशित हैं, वह [देवों, अर्थात् विद्वानों को] **(अश्नवत्)** प्राप्त करता है। **(कः)** कोई ही **(दाश्वान्)** दानशील मनुष्य **(प्र)** प्रकृष्ट रूप से **(अस्थित)** प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। **(कः)** कोई ही **(विद्वान्)** विद्वान् **(पस्त्याभिः)** जिन भूमियों में गृह होते हैं, उनके **(अंतर्वावत्)** बीच में विद्यमान जो वायु चलती है, उनमें **(क्षयम्)** निवास करने योग्य **(गृहम्)** गृह को **(दधे)** धारण करे॥७॥

सूक्तस्य भावार्थः- नैव सर्वे मनुष्या विद्याप्रचारकामं विद्वांसं प्राप्नुवन्ति नहि समस्ता दाश्वांसो भूत्वा सर्वर्तु सुखं गृहं धर्तुं शक्नुवन्ति। किन्तु कश्चिदेव भाग्यशाल्येतत्प्राप्नुमर्हतीति॥७॥

भावार्थ - सब मनुष्य विद्या प्रचार की कामनावाले उत्तम विद्वान् को नहीं प्राप्त होते और न सब दानशील होकर सब ऋतुओं में सुखरूप घर को धारण कर सकते हैं, किन्तु कोई ही भाग्यशाली विद्वान् मनुष्य इन सबको प्राप्त हो सकता है॥७॥

(ऋग्वेद ०१.४०.०७)

ऋषिः - कण्वो घौरःदेवता - बृहस्पतिःछन्दः - निचृत्पङ्क्तिस्वरः -मध्यमः।

उप॑ क्ष॒त्रं पृ॑ञ्ची॒त हन्ति॒ राज॑भिर्भ॒ये चि॑त्सुक्षि॒तिं द॑धे।

नास्य॑ व॒र्ता न त॑रु॒ता म॑हाध॒ने नार्भे॑ अस्ति व॒ज्रिणः॑॥

स्वर सहित पद पाठ

उप॑। क्ष॒त्रम्। पृ॒ञ्ची॒त। हन्ति॑। राज॑ऽभिः। भ॒ये। चि॒त्। सु॒ऽक्षि॒तिम्। द॒धे। न। अ॒स्य॒। व॒र्ता। न। त॒रु॒ता। म॒हा॒ऽध॒ने। न। अर्भे॑। अ॒स्ति॒। व॒ज्रिणः॑॥

विषय(भाषा)- ऐसे विद्वान् का कैसा राज्य होता है, इस विषय का उपदेश इस मंत्र में किया है।

सन्धिच्छेदसहितोऽन्वयः- यः क्षत्रं पृञ्चीत सुक्षितिं दधे अस्य वज्रिणः राजभिः संगे भये स्वकीयान् जनान् शत्रुः न हन्ति महाधने युद्धे वर्त्ता विपरिवर्त्तयिता न अस्ति अर्भे युद्धे चित् अपि तरुता बलस्य उल्लंघयिता न अस्ति॥८॥

पदार्थान्वयः(म.द.स.)- **(यः)** जो मनुष्य **(क्षत्रम्)** राज्य को **(पृञ्चीत)** एक साथ बांधकर संगठित करता है, **(सुक्षिति)** जिस व्यवहार में उत्तम भूमियां, अर्थात् स्थितियां होती हैं, उस व्यवहार को **(दधे)** धारण करता है। **(अस्य)** इसके **(वज्रिणः)** बलशाली **(राजभिः)** राजपुत्रों के साथ में **(भये)** जिनसे किसी कारण से डरता है। **(स्वकीयान्)** अपने **(जनान्)** लोगों को **(शत्रुः)** शत्रु **(न+हन्ति)** नष्ट न करे। **(महाधने)** बहुत सारा धन भूमि आदि प्राप्त करनेवाले का युद्ध में **(वर्त्ता)** पीछे लौटना **(न)** नहीं **(अस्ति)** होता है। **(अर्भे)** छोटे युद्ध में **(चित्)** भी **(तरुता)** गलत व्यवस्था करनेवाले **(बलस्य)** बल का **(उल्लंघयिता)** उल्लंघ करनेवाला **(न)** नहीं **(अस्ति)** होता है॥८॥

भावार्थः(महर्षिकृतः)- ये राजपुरुषा महाधनेऽल्पे वा युद्धे शत्रून् विजित्य बध्वा वा निवारयितुं धर्मेण राज्यं पालयितुं शक्नुवन्ति त इहानन्दं भुक्त्वा प्रेत्यापि महानन्दं भुञ्जते॥८॥

सूक्तस्य भावार्थः- अथैकोनचत्वारिंशत्सूक्तोक्तेन विद्वत्कृत्यार्थेन सह ब्रह्मणस्पत्यादीनामर्थानां संबन्धात्पूर्वेण सूक्तार्थेन सहैतदर्थस्य सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्।॥४०॥

महर्षिकृत भावार्थ का भाषानुवाद- जो राजपूत लोग महाधन की प्राप्ति के निमित्त बड़े युद्ध वा थोड़े युद्ध में शत्रुओं को जीत वा बांध के निवारण करने और धर्म से प्रजा का पालन करने को समर्थ होते हैं वे इस संसार में आनन्द को भोग कर परलोक में भी बड़े भारी आनन्द को भोगते हैं॥८॥

सूक्त के भावार्थ का भाषानुवाद- अब उनतालीसवें सूक्त में कहे हुए विद्वानों के कार्यरूप अर्थ के साथ ब्रह्मणस्पति आदि शब्दों के अर्थों के संबंध से पूर्वसूक्त की संगति जाननी चाहिये॥८॥

(ऋग्वेद ०१.४०.०८)